

विषय-सूची

सुत्तसार-१

भूमिका

दीर्घनिकाय भाग - १

१. ब्रह्मजालसुत्त	१
२. सामञ्जसलसुत्त	२
३. अम्बुद्वसुत्त	४
४. सोणदण्डसुत्त	७
५. कूटदन्तसुत्त	९
६. महालिसुत्त	११
७. जालियसुत्त	१३
८. महासीहनादसुत्त	१४
९. पोट्टपादसुत्त	१५
१०. सुभसुत्त	१८
११. केवट्टसुत्त	१९
१२. लोहिच्चसुत्त	२०
१३. तेविज्जसुत्त	२१

दीर्घनिकाय भाग - २

१. महापदानसुत्त	२४
२. महानिदानसुत्त	२७
३. महापरिनिब्बानसुत्त	२९
४. महासुदस्सनसुत्त	३४

५. जनवसभसुत्त	३६
६. महागोविन्दसुत्त	३९
७. महासमयसुत्त	४२
८. सक्क पञ्चसुत्त	४२
९. महासतिपट्टानसुत्त	४४
१०. पायासिराजञ्जसुत्त	४७

दीघनिकाय भाग - ३

१. पाथिक सुत्त	४८
२. उदुम्बरिक सुत्त	५०
३. चक्क वत्तिसुत्त	५२
४. अग्गञ्जसुत्त	५५
५. सम्पसादनीयसुत्त	५७
६. पासादिक सुत्त	५९
७. लक्खणसुत्त	६१
८. सिङ्गालसुत्त	६२
९. आटानाटियसुत्त	६३
१०. संगीतिसुत्त	६४
११. दसुत्तरसुत्त	६५

मज्झिमनिकाय भाग - १

१. मूलपरियायवग्ग	६६
१. मूलपरियायसुत्त	६६
२. सब्वासवसुत्त	६७
३. धम्मदायादसुत्त	६९
४. भयभेरवसुत्त	७०
५. अनङ्गणसुत्त	७२
६. आक द्वेय्यसुत्त	७४
७. वत्थसुत्त	७४

८. सल्लेखसुत्त	७६
९. सम्मादिट्टिसुत्त	७८
१०. सतिपट्टानसुत्त	८०
२. सीहनादवग्ग	८३
१. चूलसीहनादसुत्त	८३
२. महासीहनादसुत्त	८४
३. महादुक्खक्खन्धसुत्त	८६
४. चूलदुक्खक्खन्धसुत्त	८७
५. अनुमानसुत्त	८८
६. चेतोखिलसुत्त	९०
७. वनपत्थसुत्त	९१
८. मधुपिण्डिक सुत्त	९१
९. द्वेधावितक्क सुत्त	९४
१०. वितक्क सण्ठानसुत्त	९५
३. ओपम्मवग्ग	९७
१. क क चूपमसुत्त	९७
२. अलगदूपमसुत्त	९८
३. वम्मीक सुत्त	१००
४. रथविनीतसुत्त	१००
५. निवापसुत्त	१०१
६. पासरासिसुत्त	१०२
७. चूलहत्थिपदोपमसुत्त	१०४
८. महाहत्थिपदोपमसुत्त	१०६
९. महासारोपमसुत्त	१०७
१०. चूलसारोपमसुत्त	१०८
४. महायमक वग्ग	१०९
१. चूलगोसिङ्गसुत्त	१०९

२. महागोसिङ्गसुत्त	१०९
३. महागोपालक सुत्त	११०
४. चूळगोपालक सुत्त	१११
५. चूळसच्चक सुत्त	११२
६. महासच्चक सुत्त	११४
७. चूळतण्हासङ्घयसुत्त	११६
८. महातण्हासङ्घयसुत्त	११७
९. महाअस्सपुरसुत्त	११८
१०. चूळअस्सपुरसुत्त	११९

५. चूळयमक वग्ग १२१

१. सालेय्यक सुत्त	१२१
२. वेरञ्जक सुत्त	१२२
३. महावेदल्लसुत्त	१२२
४. चूळवेदल्लसुत्त	१२३
५. चूळधम्मसमादानसुत्त	१२३
६. महाधम्मसमादानसुत्त	१२४
७. वीमंसक सुत्त	१२५
८. कोसम्बियसुत्त	१२५
९. ब्रह्मनिमन्तनिक सुत्त	१२६
१०. मारतज्जनीयसुत्त	१२८

मज्झिमनिकाय भाग - २

१. गहपतिवग्ग १३०

१. कन्दरक सुत्त	१३०
२. अट्ठक नागरसुत्त	१३१
३. सेखसुत्त	१३१
४. पोतलियसुत्त	१३२
५. जीवक सुत्त	१३३

६. उपालिसुत्त	१३४
७. कुक्कु रवतिक सुत्त	१३५
८. अभयराजकु मारसुत्त	१३६
९. बहुवेदनीयसुत्त	१३७
१०. अपण्णक सुत्त	१३८
२. भिक्खुवग्ग	१३९
१. अम्बलट्टिक राहुलोवादसुत्त	१३९
२. महाराहुलोवादसुत्त	१३९
३. चूळमालुक्क्यसुत्त	१४०
४. महामालुक्क्यसुत्त	१४०
५. भद्दालिसुत्त	१४१
६. लट्टकि कोपमसुत्त	१४३
७. चातुमसुत्त	१४४
८. नळक पानसुत्त	१४४
९. गोलियानिसुत्त	१४५
१०. कीटागिरिसुत्त	१४५
३. परिब्बाजक वग्ग	१४७
१. तेविज्जवच्छगोत्तसुत्त	१४७
२. अग्गिवच्छसुत्त	१४७
३. महावच्छसुत्त	१४८
४. दीघनखसुत्त	१४९
५. मागण्डियसुत्त	१५०
६. सन्दक सुत्त	१५१
७. महासकु लुदायिसुत्त	१५२
८. समणमुण्डिक सुत्त	१५३
९. चूळसकु लुदायिसुत्त	१५४
१०. वेखनससुत्त	१५५

४. राजवग्ग १५७

१. घटिकारसुत्त १५७
२. रट्टपालसुत्त १५८
३. मघदेवसुत्त १५९
४. मधुरसुत्त १६०
५. बोधिराजकुमारसुत्त १६०
६. अङ्गुलिमालसुत्त १६२
७. पियजातिकसुत्त १६३
८. बाहितिकसुत्त १६४
९. धम्मचेतियसुत्त १६५
१०. कण्णकत्थलसुत्त १६६

५. ब्राह्मणवग्ग १६७

१. ब्रह्मायुसुत्त १६७
२. सेलसुत्त १६८
३. अस्सलायनसुत्त १६९
४. घोटमुखसुत्त १७०
५. चङ्कीसुत्त १७१
६. एसुकारीसुत्त १७१
७. धनञ्जानिसुत्त १७२
८. वासेट्टसुत्त १७३
९. सुभसुत्त १७४
१०. सङ्गारवसुत्त १७५

मज्झिमनिकाय भाग - ३

१. देवदहवग्ग १७६

१. देवदहसुत्त १७६
२. पञ्चत्तयसुत्त १७७
३. किन्तिसुत्त १७८

४. सामगामसुत्त	१७९
५. सुनक्खत्तसुत्त	१८०
६. आनेञ्जसप्पायसुत्त	१८१
७. गणक मोग्गल्लानसुत्त	१८२
८. गोपक मोग्गल्लानसुत्त	१८३
९. महापुण्णमसुत्त	१८४
१०. चूळपुण्णमसुत्त	१८५

२. अनुपदवग्ग १८६

१. अनुपदसुत्त	१८६
२. छब्बिसोधनसुत्त	१८७
३. सप्पुरिसधम्मसुत्त	१८७
४. सेवितब्बासेवितब्बसुत्त	१८८
५. बहुधातुक सुत्त	१८९
६. इसिगिलिसुत्त	१९०
७. महाचत्तारीसक सुत्त	१९०
८. आनापानसत्तिसुत्त	१९१
९. कायगतासत्तिसुत्त	१९२
१०. सङ्घारुपपत्तिसुत्त	१९३

३. सुञ्जतवग्ग १९४

१. चूळसुञ्जतसुत्त	१९४
२. महासुञ्जतसुत्त	१९४
३. अच्छरियअब्भुतसुत्त	१९५
४. बाकु लसुत्त	१९६
५. दन्तभूमिसुत्त	१९६
६. भूमिजसुत्त	१९७
७. अनुरुद्धसुत्त	१९८
८. उपक्कि लेससुत्त	१९९
९. बालपण्डितसुत्त	२००

१०. देवदूतसुत्त	२०१
४. विभङ्गवग्ग	२०३
१. भद्देक रत्तसुत्त	२०३
२. आनन्दभद्देक रत्तसुत्त	२०३
३. महाक च्चानभद्देक रत्तसुत्त	२०३
४. लोमसक झियभद्देक रत्तसुत्त	२०४
५. चूळक म्मविभङ्गसुत्त	२०४
६. महाक म्मविभङ्गसुत्त	२०५
७. सळायतनविभङ्गसुत्त	२०६
८. उद्देसविभङ्गसुत्त	२०८
९. अरणविभङ्गसुत्त	२०८
१०. धातुविभङ्गसुत्त	२०९
११. सच्चविभङ्गसुत्त	२१०
१२. दक्खिणाविभङ्गसुत्त	२११
५. सळायतनवग्ग	२१२
१. अनाथपिण्डिकोवादसुत्त	२१२
२. छन्नोवादसुत्त	२१२
३. पुण्णोवादसुत्त	२१४
४. नन्दकोवादसुत्त	२१४
५. चूळराहुलोवादसुत्त	२१५
६. छळक्क सुत्त	२१५
७. महासळायतनसुत्त	२१७
८. नगरविन्देय्यसुत्त	२१८
९. पिण्डपातपारिसुद्धिसुत्त	२१८
१०. इन्द्रियभावनासुत्त	२१९

भूमिका

‘सुत्तसार’ में ‘सुत्त पिटक’के सुत्तों का सार है।

भगवान बुद्ध की वाणी तीन पिटकों में सुरक्षित है – विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक। ‘विनय पिटक’ में अधिकतर भिक्षुओं-भिक्षुणियों के लिए विनय का विधान है, ‘सुत्त पिटक’ में सामान्य साधकों के लिए दिये गये उपदेशों का संग्रह है और ‘अभिधम्म पिटक’ में विपश्यना साधना में खूब पके हुए साधकों के लिए गूढ़ धर्मोपदेश हैं।

बुद्ध-वाणी में ‘सुत्त पिटक’ का विशेष महत्त्व है क्योंकि सबसे अधिक सामग्री इसी पिटक में है और हर कि सीके लिए उपयोगी भी। विपश्यना साधना सिखाते समय विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी भी इसी पिटक के उद्धरण दे-देकर धर्म समझाते हैं। अभिधम्म पिटक समझने के लिए भी सुत्त पिटक को जानने की जरूरत होती है जैसे छत पर जाने के लिए सीढ़ी की।

सम्यक संबुद्ध की वाणी का एक-एक शब्द सारगर्भित होता है। उसमें से सार निकालना अपने आपको धोखा देना है। अतः किसी भी पाठक के मन में यह भाव कदापि नहीं जागना चाहिए कि सार की बातें छांट-छांट कर यहाँ प्रस्तुत कर दी गयी हैं और बाकी सब कुछ निःसार है।

यह ‘सुत्तसार’ सुत्तों का सार इस मायने में है कि सुत्त पिटक में जो कुछ वर्णित है उसका यह स्थूल रूप में अविकल (बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े-तोड़े) प्रस्तुतीकरण है। इस सार की तुलना उस बयार से की जा सकती है जो रंग-बिरंगे, सुगंधित पुष्पों के बीच में से लांघ कर मात्र उनकी सुगंध अपने साथ हर ले जाती है। यह ‘सुत्तसार’ भी भगवान के चित्र-विचित्र, निर्वाण की गंध से सुवासित उपदेशों का एक हल्का-सा **परिचयमात्र** है।

वस्तुतः यह ग्रंथ कोई नयी कृति नहीं है। विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा मूल रूप में प्रकाशित ‘सुत्त पिटक’ के हर ग्रंथ के साथ उसमें सम्मिलित सुत्तों का सार उनमें दिया गया है। आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का के आदेशानुसार

यह सार इसलिए तैयार किया गया था कि साधक पहले इन्हें पढ़ कर फिर सुक्तों को पढ़ें, तो इससे सुक्त और अधिक अच्छी तरह समझ में आने लगेंगे।

अब आचार्यश्री सत्यनारायणजी गोयन्का ने यह उचित समझा है कि यदि ये सभी सुक्तसार स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये जायँ तो एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि साधक गणजनभाषा के माध्यम से बुद्ध-वाणी को टुकड़ों-टुकड़ों में ही नहीं, बल्कि समग्र रूप से भी सुगमतापूर्वक समझने लगेंगे। आचार्यश्री के इसी चिंतन के फलस्वरूप यह कृति प्रस्तुत की जा रही है।

वर्तमान ग्रंथत्रय केवल सुक्तपिटक के सुक्तों का सार हैं जो कि पाठकों की सुविधा के लिए तीन भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। इसके पहले भाग में दीघ एवं मज्झिम निकायों का, दूसरे में संयुक्त निकाय का और तीसरे में अंगुत्तर एवं खुद्दक निकायों का समावेश है।

जब सुक्तसार तैयार किये जा रहे थे, तब विपश्यना विशोधन विन्यास के उद्भट विद्वान डॉ. अंगराज चौधरी ने इनका निरूपण कर इनमें समुचित सुधार किये थे। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।

हमें विश्वास है कि इस कृति से विपश्यी साधकों को धर्म के अनेक अनजाने पक्षों की जानकारी मिलने के अतिरिक्त बुद्ध-वाणी को मूल रूप में पढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

सभी साधक गण के प्रति मंगल भावों सहित,

स. ना. टंडन

दीर्घनिकाय भाग - १

१. ब्रह्मजालसुत्त

इस सुत्त का आरंभ राजगृह और नाळन्दा के बीच के रास्ते पर भिक्षु-संघ के साथ भगवान बुद्ध की यात्रा के साथ होता है।

सुप्पिय परिव्राजक और उसके शिष्य ब्रह्मदत्त में बुद्ध, धर्म और संघ को लेकर वाद-विवाद चल रहा है। एक इनकी निंदा करता है तो दूसरा प्रशंसा।

इस प्रसंग को लेकर भगवान भिक्षुओं को समझाते हैं कि यदि कोई व्यक्ति बुद्ध, धर्म और संघ की निंदा करे तो उससे न तो वैर, न असंतोष और न चित्त में कोप करे। ऐसा करने से अपनी ही हानि होती है। बल्कि सच्चाई का पता लगाना चाहिए कि जो कुछ कहा जा रहा है वह ठीक है या नहीं। ऐसे ही यदि कोई व्यक्ति बुद्ध, धर्म और संघ की प्रशंसा करे तो उससे न तो आनंदित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल होना चाहिए। ऐसा करने से अपनी ही हानि होती है। बल्कि सच्चाई का पता लगाना चाहिए कि जो कुछ कहा जा रहा है वह ठीक है या नहीं।

तदुपरांत भगवान यह समझाते हैं कि अज्ञानी लोग तथागत की प्रशंसा छोटे या बड़े गौण शीलों के लिए करते हैं जब कि उनकी प्रशंसा उन गूढ़ धर्मों के लिए की जानी चाहिए जिन्हें वे स्वयं जान कर और साक्षात्कार कर प्रज्ञप्त किया करते हैं। इस प्रसंग में वे अपने समय में प्रचलित बासठ प्रकार की मिथ्या धारणाओं (दार्शनिक मतों) पर प्रकाश डालते हैं। इनमें से कुछ तो आत्मा और लोक के 'आदि' को और अन्य इनके 'अंत' को लेकर प्रचलित थीं। इनको उन्होंने क्रमशः 'पूर्वांतकल्पिक' और 'अपरांतकल्पिक' की संज्ञा दी है।

'पूर्वांतकल्पिक' धारणाओं के अंतर्गत ऐसी मान्यताएं बतलायी गयी हैं जैसे आत्मा और लोक नित्य हैं, आत्मा और लोक अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य हैं, लोक अंतवान अथवा अनंत है, आत्मा और लोक बिना कारण उत्पन्न होते हैं,

इत्यादि। इन वादों को प्रज्ञप्त करने वाले लोग इन्हें या तो अपनी अधूरी चित्त-समाधि के बल पर अथवा केवलतर्कोंके आधार पर प्रज्ञप्त किया करते हैं।

‘अपरांतकल्पिक’ धारणाओं के अंतर्गत ऐसी मान्यताएं बतलाई गई हैं जैसे मरने के बाद भी आत्मा संज्ञी (अर्थात्, होश वाली) बनी रहती है, मरने के बाद आत्मा अ-संज्ञी (अर्थात्, बिना होश वाली) हो जाती है, मरने के बाद आत्मा न संज्ञी रहती है न अ-संज्ञी, आत्मा का पूर्ण उच्छेद हो जाता है, इत्यादि।

भगवान ने स्पष्ट किया है कि मिथ्या धारणाओं का पोषण करने वाले व्यक्ति सदा इंद्रिय-क्षेत्र में बने रहते हैं। इनकी छहों इंद्रियों पर उनके विषयों का स्पर्श होते रहने से वे वेदनाओं को अनुभव करते रहते हैं और इन वेदनाओं के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण आसक्ति, आसक्ति के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दीर्घमनस्य और क्षोभ की अवस्थाओं में से गुजरते रहते हैं। ये इंद्रिय-क्षेत्र से परे की बात नहीं जानते।

केवल वही व्यक्ति जो वेदनाओं के उदय-व्यय, आस्वाद, दुष्परिणाम और इनके चंगुल से बाहर निकलने के उपाय को प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानते हैं, निर्वाण-लाभ कर मिथ्या धारणाओं से परे की बात को जान पाते हैं।

यही कारण है कि नाना प्रकार के वाद स्थापित करने वाले लोग वेदनाओं की यथाभूत जानकारी होने से हमेशा इंद्रिय-क्षेत्र में बने रहने के कारण तालाब की मछलियों के समान मानों एक बृहज्जाल (ब्रह्मजाल) में फँसे रहते हैं।

२. सामञ्जस्य लसुत्त

एक समय भगवान जीवक कोमारभच्च के आम्रवन में एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ विहार कर रहे थे। उन्हीं दिनों मगध-नरेश अजातसत्तु ने वहां आकर भगवान से यह प्रश्न किया कि जैसे भिन्न-भिन्न कलाओं से लोग इसी जीवन में प्रत्यक्ष जीविका कमाकर अपने आप को सुखी करते हैं, क्या इसी प्रकार श्रामण्य (अर्थात्, भिक्षु होने) का फल भी प्रत्यक्ष फलदायक बतलाया जा सकता है?

यह सुन कर भगवान ने सर्वप्रथम राजा से ही पूछ लिया कि यदि कोई आपके प्रजा-जन अपनी पुण्य-पारमी बढ़ाने के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाय तो उनके प्रति आपकी धारणा कैसी होगी? इस पर राजा ने कहा कि हम उनका अभिवादन करेंगे, उनकी सेवा करेंगे, उनको आसन देंगे।

यह सुन कर भगवान ने कहा कि श्रामण्य का यह फल तो प्रत्यक्ष हुआ। परंतु इससे भी कहीं सुंदर और उत्तम सांघृष्टिक (अर्थात्, आंखो-देखे) फल हुआ करते हैं।

तब भगवान ने उन्हें विस्तार से समझाया कि संसार में जब कभी कोई तथागत उत्पन्न होता है तब वह अरहंत अवस्था पर पहुँचा हुआ, सम्यक सम्बुद्ध, विद्या और आचरण में संपन्न, अच्छी गति वाला, लोकों का जानकार, श्रेष्ठ, लोगों को रास्ते पर लाने वाला, देवों और मनुष्यों का शास्ता होकर अपने ही प्रयत्नों से सारे लोकों का साक्षात्कार कर ऐसे धर्म का उपदेश देता है जो आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी तथा अंत में कल्याणकारी होता है। ऐसे धर्म को सुन कर कोई भी गृहपति श्रद्धावान हो घर-बार त्याग कर प्रव्रजित हो जाता है और उनके द्वारा उपदिष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने में जुट जाता है। इसमें पुष्ट होने के लिए वह शील पालन करता है, इंद्रियों को वश में करता है, स्मृति और संप्रज्ञान बनाये रखता है और मात्र चीवर तथा पिंडपात से संतुष्ट रहता है। तत्पश्चात् वह किसी निर्जन स्थान पर जा कर पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द जागरूक हो ध्यानावस्थित होने का उपक्रम करता है और ऐसा करता हुआ अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर लेता है। यह नीवरण दूर होते ही उसे अपने भीतर उत्तरोत्तर प्रमोद, प्रीति, प्रश्रद्धि और सुख की अनुभूति होने लगती है। इसके फलस्वरूप उसका चित्त समाहित होने लगता है।

यह स्थिति आने पर नाना प्रकार के श्रामण्य-फल प्रकट होने लगते हैं जो पूर्व में कहे गए श्रामण्य-फल से कहीं बढ़-चढ़ कर होते हैं। इस प्रकार श्रमण प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान को, उत्तरोत्तर, प्राप्त कर इनमें विहार करने लगता है। इस अवस्था पर पहुँच कर उसका चित्त नितांत शुद्ध, निष्पाप, क्लेश-रहित, मृदु, मनोरम और निश्चल हो जाता है। तब यह भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने योग्य हो जाता है जिससे इन ध्यानों से भी बढ़ कर श्रामण्य-फल अनुभव में आने लगते हैं।

चित्त को ज्ञान-दर्शन के लिए नवाने पर प्रज्ञापूर्वक यह जानकारी होने लगती है कि चार महाभूतों से बना हुआ यह शरीर पूरी तरह अनित्यता से ग्रस्त है, यह विज्ञान उससे आबद्ध है। ऐसे ही इसे मनोमय शरीर के निर्माण, ऋद्धियों की प्राप्ति, दिव्य श्रोत्र, परचित्तज्ञान, पूर्वजन्मों की स्मृति तथा प्राणियों की च्युति और उत्पाद को जानने के लिए भी नवाया जा सकता है। परंतु जब इसे आस्रवों

(चित्त-मलों) के क्षय के ज्ञान के लिए नवाया जाता है तब श्रमण यह प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है कि यह दुःख है, यह दुःख कासमुदय है, यह दुःख का निरोध है और यह दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग है। वह यह भी प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है कि ये आस्रव हैं, यह आस्रवों कासमुदय है, यह आस्रवों का निरोध है और यह आस्रवों का निरोध करवाने वाला मार्ग है। इस प्रकार जानते-देखते उसका चित्त कामास्रवों से भी मुक्त हो जाता है, भवास्रवों से भी, अविद्यास्रवों से भी। तब उसे यह प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है - 'मैं मुक्त हो गया! मैं मुक्त हो गया!!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है - 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।'

भगवान ने कहा कि इससे बढ़ कर और कोई श्रामण्य-फल होता नहीं है।

३. अम्बट्टसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल देश के इच्छानंगल ब्राह्मणग्राम में विहार करते थे। उस समय पोक्खरसाति नाम के धनाढ्य ब्राह्मण को यह जानने की इच्छा हुई कि उनके बारे में जो यह ख्याति फैल रही है कि वे अरहंत, सम्यक सम्बुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, अच्छी गति वाले, लोकों के जानकार, सर्वश्रेष्ठ, लोगों को राह पर लाने वाले सारथि, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं, इत्यादि - यह कहां तक सही है।

इस कार्य के लिए पोक्खरसाति ने विद्वत्ता में अपने समान अम्बट्ट नाम के अपने शिष्य को भेजा। शिष्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि मुझे यह कैसे मालूम होगा कि भगवान की ख्याति सही है अथवा नहीं, उसने बतलाया कि मंत्रों के अनुसार महापुरुषों के बत्तीस शरीर लक्षण होते हैं। यदि वे घर में रहते हैं तो चक्रवर्ती राजा बनते हैं और घर त्याग दें तो सम्यक सम्बुद्ध होते हैं।

तब अम्बट्ट अन्य बहुत से माणवकों के साथ जहां भगवान बुद्ध थे वहां गया और वहां पहुँच कर उनसे अशिष्टतापूर्ण बातें करने लगा और शाक्यों पर भी अनुचित आक्षेप करने लगा। जब भगवान ने उसका ध्यान उसके अशिष्ट व्यवहार की ओर आकर्षित किया, तब वह बोला - 'हे गौतम! जो मुंडक, श्रमण, इभ्य (नीच), काले, ब्रह्मा के पैर की संतान हैं, उनके साथ ऐसे ही कथा-संलाप किया जाता है जैसा कि मेरा आप गौतम के साथ हुआ है।'

इस पर भगवान ने अम्बट्ट को उसके अपने गोत्र 'कण्हायन' का इतिहास बतलाते हुए यह सिद्ध कर दिया कि वह शाक्यों के पूर्व-पुरुष राजा ओक्काक के दासी-पुत्र 'कण्ह' का वंशज है। यह जान कर अम्बट्ट के साथ आए हुए माणवक कोलाहल करने लगे - 'अम्बट्ट दुर्जात है, अकुलीन है, शाक्यों का दासी-पुत्र है, शाक्य अम्बट्ट के आर्यपुत्र होते हैं, इत्यादि।

जब भगवान ने देखा कि माणवक अम्बट्ट को 'दासीपुत्र, दासीपुत्र' कह कर बहुत लजा रहे हैं तब उन्होंने उसको इससे छुड़ाने के लिए माणवकों से कहा कि अम्बट्ट को अधिक मत लजाओ, यह 'कण्ह' एक ऋद्धि-संपन्न महान ऋषि थे। उन्होंने उनको इसकी कथा भी सुनायी।

तत्पश्चात् भगवान ने अम्बट्ट को जातिवाद के मिथ्या अभिमान को छोड़ देने का परामर्श देते हुए कहा - "अम्बट्ट! जहां आवाह-विवाह होता है वहीं पर यह कहा जाता है 'तू मेरे योग्य है', 'तू मेरे योग्य नहीं है'। वहीं यह जातिवाद, गोत्रवाद, मानवाद भी चलता है 'तू मेरे योग्य है', 'तू मेरे योग्य नहीं है'। अम्बट्ट! जो कोई जातिवाद में फँसे हैं, गोत्रवाद में फँसे हैं, मानवाद में फँसे हैं, आवाह-विवाह में फँसे हैं, वे अनुपम 'विद्या' और 'चरण' की संपदा से दूर हैं। अम्बट्ट! जातिवाद, गोत्रवाद, मानवाद और आवाह-विवाह के बन्धन छोड़ कर ही अनुपम 'विद्या' और 'चरण' की संपदा का साक्षात्कार किया जाता है।"

अम्बट्ट द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'विद्या' और 'चरण' क्या होते हैं, भगवान ने उसे समझाया कि संसार में जब कभी कोई तथागत उत्पन्न होता है तब उसके द्वारा प्रतिपादित धर्म को सुन कर कोई गृहपति श्रद्धावान हो, घर-बार त्याग, प्रव्रज्या ग्रहण कर, शील-पालन, इंद्रियों के वशीकरण और स्मृति-संप्रज्ञान के सतत अभ्यास में लगा रह कर संतुष्टि को प्राप्त होता है और तत्पश्चात् नीवरणों को दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है तो यह 'चरण' के अंतर्गत आता है। ऐसे ही द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान। इनमें से भी प्रत्येक 'चरण' के अंतर्गत आता है।

फिर जब वह गृहपति समाहित, शुद्ध तथा क्लेश-रहित चित्त से विषयना का ज्ञान प्राप्त करता है, वह 'विद्या' के अंतर्गत आता है। ऐसे ही चित्त से मनोमय शरीर का निर्माण करना, ऋद्धियों को अनुभव करना, दिव्य श्रोत्र प्राप्त करना, परचित्तज्ञान, पूर्वजन्मों की स्मृति, प्राणियों की च्युति और उत्पाद का ज्ञान तथा

आस्रवों के क्षय का ज्ञान – ये सब के सब एक-एक करके 'विद्या' के अंतर्गत आते हैं।

ऐसा भिक्षु 'विद्यासंपन्न' भी कहलाता है, 'चरणसंपन्न' भी, और 'विद्याचरणसंपन्न' भी। इस 'विद्यासंपदा' और 'चरणसंपदा' से बढ़ कर कोई 'विद्या-संपदा' अथवा 'चरण-संपदा' नहीं होती है।

इधर अम्बट्ट माणवक ने भगवान के चंक्रमण करते हुए उनके शरीर पर महापुरुषों के बत्तीसों लक्षण देख लिये। तत्पश्चात् वह भगवान की अनुमति प्राप्त कर अपने आचार्य पोक्खरसाति के पास चला आया।

पोक्खरसाति को उसने भगवान के साथ हुए अपने संलाप का ब्यौरा दिया और यह भी कहा कि भगवान की जो ख्याति फैल रही है वह सही है क्योंकि मैंने उनके शरीर पर विद्यमान बत्तीसों महापुरुष-लक्षण देख लिये हैं।

पोक्खरसाति ने अम्बट्ट माणवक को भगवान के साथ अभद्रतापूर्ण आचरण करने के लिए बुरा-भला कहा और उसे अपने पास से दूर हटाया।

अगले दिन पोक्खरसाति स्वयं भगवान के दर्शनार्थ गया और अम्बट्ट के बाल-व्यवहार के लिए उनसे क्षमा-याचना की। भगवान ने अम्बट्ट के सुखी होने का आशीर्वचन कहा।

पोक्खरसाति ने भी भगवान के शरीर पर बत्तीसों महापुरुष-लक्षण देख लिये। तत्पश्चात् उसने भिक्षु-संघ सहित भगवान को भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन करवा चुकने के पश्चात् वह भगवान के पास एक नीचे आसन पर बैठ गया।

तब भगवान ने उसे आनुपूर्वी कथा कही जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा; भोगों के दुष्परिणाम; अपकार, मलिनकरण; और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकाशित किया। जब भगवान ने पोक्खरसाति को उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त (प्रसन्न-चित्त) जान लिया तब उसे बुद्धों का स्वयं जाना हुआ धर्मोपदेश – दुःख-समुदय-निरोध-मार्ग – प्रकाशित किया। तत्पश्चात् जैसे धवल, निर्मल वस्त्र को रंग अच्छी तरह पकड़ लेता है, वैसे ही पोक्खरसाति को उसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, विमल, धर्मचक्षु – 'जो कुछ उत्पन्न होने वाला (समुदयधर्मा) है, वह सब कुछ नाशवान (निरोधधर्मा) है' – उत्पन्न हुआ।

तदुपरांत पोक्खरसाति ब्राह्मण ने अपने पुत्र, भार्या, परिषद तथा अमात्यों के साथ भगवान की शरण ग्रहण की, और धर्म तथा भिक्षु-संघ की भी।

४. सोणदण्डसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ अङ्ग देश में विचरते हुए चम्पा पहुँचे और वहाँ गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार करने लगे।

उस समय सोणदण्ड नाम का ब्राह्मण मगधराज बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त चम्पा का स्वामी हो कर रहता था। अन्य ब्राह्मणों के साथ भगवान के दर्शनार्थ जाने का उसका मन हुआ परंतु कुछ एक ब्राह्मणों ने उसे वहाँ जाने के लिए हतोत्साहित किया और अनेक प्रकार की युक्तियाँ देते हुए कहा कि श्रमण गौतम को ही उसके दर्शनार्थ आना चाहिए। इस पर सोणदण्ड ने उनकी युक्तियों का खंडन करते हुए, भगवान के कि तने ही अन्य गुणों का बखान करते हुए यह भी कहा कि वे आर्यशीलयुक्त, काम-राग-रहित, महापुरुष के शरीर लक्षणों से युक्त, चारों परिषदों से सम्मानित, अनुपम विद्या और आचरण के कारण यशस्वी और चम्पा में आने के कारण हमारे अतिथि हैं। उनकी जितनी प्रशंसा की जाये, वह कम है। अतः मुझे ही भगवान के दर्शनार्थ जाना चाहिए।

तत्पश्चात् वह ब्राह्मण-जन के साथ गग्गरा पुष्करिणी गया। वहाँ भगवान ने उससे यह प्रश्न पूछा कि ब्राह्मण लोग कि तने अंगों से युक्त पुरुष को 'ब्राह्मण' कहते हैं। इस पर सोणदण्ड ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण लोग पाँच अंगों से युक्त पुरुष को 'ब्राह्मण' कहते हैं। ये अंग हैं - (१) वह माता और पिता - दोनों ओर से सुजात, सात पीढ़ी तक संशुद्ध, और जाति के मामले में सर्वथा दोषरहित हो। (२) वह वेदपाठी; मंत्रधर; निघंटु; कैटभ, शिक्षा, अक्षरप्रभेद एवं इतिहास-सहित तीनों वेदों में पारंगत; पदक; वैयाकरण तथा लोकियत एवं महापुरुष-लक्षणों का जानकार हो। (३) गौर-वर्ण, सुंदर एवं दर्शनीय हो। (४) शील में खूब पुष्ट हो। (५) पंडित, मेधावी, यज्ञ-दक्षिणा ग्रहण करने वालों में प्रथम या द्वितीय हो।

तब भगवान द्वारा यह पूछा गया कि क्या इन पाँच अंगों में से कि नहीं अंगों को छोड़ देने पर भी कोई पुरुष 'ब्राह्मण' कहला सकता है? इस पर सोणदण्ड ने एक-एक करके वर्ण, मंत्र और जाति को नकारते हुए कहा कि शील और मेधा (याने प्रज्ञा) इन दो अंगों से युक्त पुरुष को भी 'ब्राह्मण' कहसकते हैं। अपने इस कथन की पुष्टि में उसने अपने भांजे अंगक का उदाहरण देते हुए कहा कि

वह वर्णवान, मंत्रधर और जाति के मामले में सर्वथा दोषरहित है; परंतु यदि वह हिंसा, चोरी, परस्त्रीगमन, असत्यभाषण और मद्यपान – यह सभी कुछ करता हो तो ऐसे में वर्ण, मंत्र और जाति का क्या महत्व है?

भगवान द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या उपरोक्त दो अंगों में से किसी एक को छोड़ देने पर भी कोई पुरुष 'ब्राह्मण' कहला सकता है, सोणदण्ड ने कहा – नहीं। प्रज्ञा शील से प्रक्षालित है और शील प्रज्ञा से। जहां शील है वहां प्रज्ञा है; जहां प्रज्ञा है वहां शील है। शीलवान को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान को शील। शील और प्रज्ञा को संसार में अगुआ बतलाया जाता है। यह ऐसे ही है जैसे कोई हाथ से हाथ धोए, पैर से पैर।

भगवान ने इसका अनुमोदन कि या पर यह पूछ लिया कि 'शील' क्या होता है और 'प्रज्ञा' क्या होती है। इस पर सोणदण्ड ने कहा कि हम तो इतना भर ही जानते हैं। अच्छा हो यदि भगवान ही इस पर प्रकाश डालें।

तब भगवान ने कहा कि संसार में जब कभी कोई तथागत उत्पन्न होता है और कोई व्यक्ति उसके द्वारा साक्षात्कार कि योग्य धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर तीनों प्रकार के शीलों का पालन करने लगता है, तब वह 'शीलसंपन्न' हो जाता है। फिर इंद्रियों को वश में कर, हर अवस्था में स्मृतिमान और संप्रज्ञानी रह, संतुष्ट हुआ हुआ, अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर समाहित चित्त से उत्तरोत्तर चारों ध्यानो का अभ्यास कर (विपश्यना) ज्ञान के लिए अपने चित्त को नवाता है, तो यह 'प्रज्ञा' होती है। ऐसे ही जब वह चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है और इसके फलस्वरूप यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है', तो यह 'प्रज्ञा' ही है।

यह सुन कर भाव-विभोर हो सोणदण्ड ने भगवान से कहा कि आप मुझे अपना अंजलिबद्ध शरण में आया हुआ उपासक स्वीकार करें और भिक्षु-संघ सहित मेरे यहां कल का भोजन स्वीकार करें।

अगले दिन भोजन हो चुकने पर सोणदण्ड ने भगवान से कहा कि यदि मैं परिषद में बैठे हुए आसन से उठ कर आपका अभिवादन करूं तो परिषद मेरा तिरस्कार करेगी जिससे मेरा यश क्षीण होगा और यश क्षीण होने से भोग क्षीण होगा। हमें यश से ही भोग मिलते हैं। अतः यदि मैं परिषद में बैठे हुए हाथ जोड़ू

तो इसे आप मेरा खड़ा होना जानें। यदि मैं परिषद में बैठा हुआ अपना साफा हटाऊं तो उसे आप मेरा सिर से क़िया गया अभिवादन मानें। ऐसे ही यदि यान में बैठे हुए मैं कोड़ा ऊपर उठाऊं तो उसे आप मेरा यान से उतरना मानें और यदि मैं यान में बैठा हुआ हाथ उठाऊं तो उसे आप मेरा सिर से क़िया गया अभिवादन स्वीकार करें।

५. कू टदन्तसुत्त

एक समय भगवान् भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ मगध देश के खाणुमत ब्राह्मणग्राम में अम्बलट्टिका में विहार करते थे। उस समय कू टदन्त नाम का ब्राह्मण मगधराज बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त खाणुमत का स्वामी होकर रहता था। भगवान् के पास जा कर उसने कहा कि मैं एक महायज्ञ करना चाहता हूँ, मैं सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदा को नहीं जानता, मुझे इसका उपदेश करें।

इस पर भगवान् ने कहा कि पूर्वकाल में महाविजित नाम का एक अत्यंत वैभवशाली राजा था। वह भी पृथ्वीमंडल का शासक होकर एक महायज्ञ करना चाहता था। उसने अपने पुरोहित ब्राह्मण को बुलाया और उसे इस बारे में सीख देने के लिए कहा।

पुरोहित ने राजा से कहा आपके राज्य में बहुत लूटमार होती है। पहले इसे शांत करना चाहिए। इसके लिए आप को कृषि एवं गो-रक्षा में उत्साह रखने वालों को बीज-भोजन, वाणिज्य में उत्साह रखने वालों को पूंजी, राजकार्य में उत्साह रखने वालों को भत्ता-वेतन देना चाहिए। इससे ये लोग अपने-अपने काम में लगे हुए आपके जनपद को सतायेंगे नहीं। आपको भी विपुल राशि प्राप्त होगी। आपका देश कंटक-रहित और क्षेम-युक्त हो जायेगा। राजा ने ऐसा ही किया और कालांतर में पुरोहित को बुला कर कहा कि मेरा देश कंटक-रहित और क्षेम-युक्त हो गया है।

तब पुरोहित ने राजा को यज्ञ-संपदा के सोलह परिष्कारों के बारे में बतलाया –

१. चार अनुमति-पक्ष : यज्ञ करने के बारे में राज्य के क्षत्रियों, अमात्यों, ब्राह्मण महाशालों तथा धनी वैश्यों की अनुमति प्राप्त करना।

२. **राजा के आठ गुण** : सुजात, अभिरूप, शीलवान, सु-संपन्न, चतुरंगिणी सेना से युक्त, दानपति, बहुश्रुत तथा मेधावी होना।

३. **पुरोहित के चार गुण** : सुजात, त्रैविद्य, शीलवान तथा मेधावी होना।

तत्पश्चात् पुरोहित ने राजा को तीन विधियों का उपदेश दिया। उसने कहा कि यज्ञ करने से पहले, यज्ञ करते समय और यज्ञ कर चुकने पर यह ग्लानि नहीं होनी चाहिए कि एक बड़ी धनराशि व्यय हो जायेगी, व्यय हो रही है अथवा व्यय हो गयी।

तदनंतर पुरोहित ने यज्ञ करने से पूर्व ही राजा के हृदय से दान लेने वालों के प्रति उत्पन्न होने वाले दस प्रकार के चित्त-विकारों को दूर किया और यज्ञ करते समय उसके चित्त का सोलह प्रकार से समुत्तेजन-संप्रहर्षण किया।

उस यज्ञ में न तो गायें मारी गयीं, न बकरे-भेड़े, न मुर्गे-सूअर, न नाना प्रकार के प्राणी। न यूप के लिए वृक्ष काटे गये, न वेदी पर बिछाने के लिए दर्भ। जो काम करने वाले नौकर-चाकर थे उन्होंने भी दंड-तर्जित, भय-तर्जित हो, आंसू बहाते, रोते हुए सेवा नहीं की। जिसने जो चाहा वही किया, जो नहीं चाहा वह नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खांड से वह यज्ञ संपन्न हुआ।

भगवान ने यह भी बतलाया कि उस यज्ञ का याजयिता पुरोहित मैं ही था।

कूटदन्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या इस सोलह परिष्कार वाली त्रिविध यज्ञ-संपदा से कम सामग्री और कम क्रिया वाला, किन्तु महाफलदायी, कोई यज्ञ होता है, भगवान ने कहा - हां।

तत्पश्चात् उन्होंने उसे एक-से-एक उत्तम, प्रणीततर यज्ञों के बारे में बतलाया -

१. **दान-यज्ञ** - वे नित्य-दान जो प्रत्येक कुल में सदाचारी प्रव्रजितों को दिये जाते हैं।

२. **त्रिशरण-यज्ञ** - यह जो प्रसन्नचित्त हो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाना है।

३. **शिक्षापद-यज्ञ** - यह जो प्रसन्नचित्त हो शिक्षापदों का ग्रहण करना है (अर्थात्, जीवों की अ-हिंसा, अ-स्तेय, अ-व्यभिचार, अ-मृषावाद, नशे-पते से विरति)।

४. **शील-यज्ञ** – जब संसार में तथागत के उत्पन्न होने पर उनके द्वारा साक्षात्कार कि ये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर कोई व्यक्ति चूळ, मज्झिम और महा इन तीनों प्रकार के शीलें का पालन करके शीलसंपन्न हो जाता है।
५. **समाधि-यज्ञ** – जब कोई व्यक्ति इंद्रियों को वश में कर, हर अवस्था में स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बना रह, संतुष्ट हुआ, अपने चित्त से नीवरणों को दूर कर, समाहित चित्त से उत्तरोत्तर प्रथम से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।
६. **प्रज्ञा-यज्ञ** – जब कोई व्यक्ति अपने समाहित हुए मृदु, निर्मल चित्त को (विपश्यना) ज्ञान के लिए तथा आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है जिससे वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे करने को कुछ रहा नहीं।’ इस यज्ञ-संपदा से बढ़ कर कोई दूसरी यज्ञ-संपदा नहीं है।

यह सुन कर कू टदन्तब्राह्मण ने भगवान से कहा आप मुझे अंजलिबद्ध शरण में आया हुआ उपासक स्वीकार करें। भगवान ने उसे आनुपूर्वी कथा कही जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा; भोगों के दुष्परिणाम, अपकार, मलिनकरण; और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकशित किया। जब उन्होंने उसे उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त जाना तब जो बुद्धों का स्वयं अनुभूत धर्मोपदेश है – दुःख, समुदय, निरोध, मार्ग – उसे प्रकशित किया। जैसे धवल, निर्मल वस्त्र को रंग अच्छी तरह पकड़ लेता है वैसे ही कू टदन्तब्राह्मण को उसी आसन पर, यह विरज, विमल धर्मचक्षु प्राप्त हुआ कि जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशवान है।

६. महालिसुत्त

एक समय वेसाली में महावन की कू टागारशाला में भगवान विहार करते थे। उस समय लिच्छवी सरदार ओट्टुद्ध ने उनसे कहा कि सुनक्खत्त नाम के लिच्छवि-पुत्र ने मुझे बतलाया था कि मैं लगभग तीन वर्ष तक भगवान के पास रहा जिससे मैं मन को लुभाने वाले दिव्य शब्द सुन पाऊं परंतु मैं इन्हें नहीं सुन पाया। तो क्या लिच्छवि-पुत्र ने दिव्य शब्दों के होते हुए भी इन्हें नहीं सुना अथवा इनका अस्तित्व नहीं होने से इन्हें नहीं सुना?

इस पर भगवान ने कहा कि दिव्य शब्दों के होते हुए भी लिच्छवि-पुत्र ने इन्हें नहीं सुना । इसका कारण यह है कि कि सी-कि सीको दिव्य रूपों के दर्शनार्थ एकंश (एक तरफ़ा) समाधि प्राप्त होती है, परंतु दिव्य शब्दों के श्रवणार्थ नहीं। ऐसे ही कि सी-कि सीको दिव्य शब्दों के श्रवणार्थ एकंश समाधि प्राप्त होती है परंतु दिव्य रूपों के दर्शनार्थ नहीं। और कि सी-कि सीको दिव्य रूपों के दर्शनार्थ और दिव्य शब्दों के श्रवणार्थ उभयांश (दोतरफ़ा) समाधि प्राप्त हो जाती है।

भगवान ने ओड्ड के इस संशय को भी दूर किया कि भिक्षुगण उनके पास इन समाधि-भावनाओं के साक्षात्कार हेतु ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि इनसे बढ़-चढ़ कर और इनसे अधिक उत्तम दूसरे ही धर्म हैं जिनके साक्षात्कारके लिए भिक्षुगण उनके पास ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। और वे हैं -

* तीन संयोजनों (बंधनों) का समूल नाश हो जाने से 'सोतापन्न' हो जाना, जिससे उस व्यक्ति का अधःपतन नहीं होता और उसका संबोधि (परम ज्ञान) प्राप्त कर लेना सुनिश्चित हो जाता है;

* तीन संयोजनों (बंधनों) का समूल नाश हो जाने और राग, द्वेष तथा मोह के निर्बल पड़ जाने से 'सक दागामी' हो जाना, जिससे वह व्यक्ति एक ही बार इस संसार में आकर अपने दुःखों का अंत कर लेता है;

* पांच अवरभागीय (यहीं आवागमन में अवरुद्ध रखने वाले) संयोजनों का समूल नाश हो जाने से 'ओपपातिक' अनागामी हो जाना, जिससे वह व्यक्ति इस लोक में लौट कर नहीं आता और उच्च लोक में ही निर्वाण-लाभ कर लेता है; और

* आस्रवों (चित्त-मलों) का नाश हो जाने से इसी संसार में आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा की विमुक्ति का स्वयं साक्षात्कार कर विहार करने लगता है।

भगवान ने यह भी दर्शाया कि इन धर्मों का साक्षात्कार करने के लिए जो मार्ग है वह यही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं, अर्थात् -

सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

७. जालियसुत्त

भगवान के कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते समय मुण्डिय परिव्राजक और दारुपत्तिक के शिष्य जालिय ने भगवान से प्रश्न कि या –‘आवुस! गौतम! जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?’

भगवान ने उन्हें समझाया कि संसार में जब कोई व्यक्ति तथागत के बतलाये हुए मार्ग पर चल कर शील में प्रतिष्ठित हुआ, अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है तब उसके लिए यह प्रश्न अ-प्रासंगिक हो जाता है –‘जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?’

ऐसे ही यह प्रश्न उस व्यक्ति के लिए अ-प्रासंगिक हो जाता है जो द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। ऐसे ही उस व्यक्ति के लिए जो अपने चित्त को ज्ञान-दर्शन के लिए, मनोमय शरीर के निर्माण के लिए, ऋद्धियों के लिए, दिव्य श्रोत्र-धातु प्राप्त करने के लिए, परचित्तज्ञान के लिए, पूर्वजन्मों को स्मरण करने के लिए, प्राणियों की च्युति और उत्पाद को जानने के लिए अथवा आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है। इस अंतिम अवस्था के प्राप्त होने पर तो वह अपनी प्रज्ञा से जानने लगता है कि यह दुःख है, यह दुःख कासमुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग है। वह इसे भी प्रज्ञा से जानने लगता है कि ये आस्रव हैं, यह आस्रवों कासमुदय है, यह आस्रवों का निरोध है, यह आस्रवों का निरोध कराने वाला मार्ग है। उसके इस प्रकार जानते, देखते उसका चित्त कामास्रवों से भी मुक्त हो जाता है, भवास्रवों से भी, अविद्यास्रवों से भी। तब उसे यह ज्ञान होता है –‘मैं मुक्त हो गया! मैं मुक्त हो गया!!’ वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’ जब कोई व्यक्ति इसे इस प्रकार जान लेता है, देख लेता है तब वह ऐसा नहीं कह सकता –‘जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है।’

भगवान ने कहा मैं स्वयं इसे इस प्रकार जानता हूं, देखता हूं और यह नहीं कहता –‘जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है।’

८. महासीहनादसुत्त

एक समय भगवान उरुञ्जा के पास कण्णकत्थलनाम के मृगदाव में विहार करते थे। उस समय अचेल कस्सपने उनके पास जा कर पूछा क्या यह सही है कि आप सभी प्रकार की तपश्चर्या की निंदा करते हैं और कठोर तपस्या को अनुचित बतलाते हैं।

इस पर भगवान ने कहा कि ऐसा कहने वाले मेरे बारे में ठीक से नहीं कहते हैं। मैं कठोर जीवन बिताने वाले और कम कठोर जीवन बिताने वाले – दोनों प्रकार के तपस्वियों की गति को जानता हूँ। शरीर छोड़ने के पश्चात इनमें से नरक में भी पैदा होते हैं, स्वर्ग में भी। अतः मैं सभी की निंदा कैसे कर सकता हूँ? जो कोई आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करेगा वह कहने ही लगेगा कि श्रमण गौतम समयोचित बात बोलने वाला, सच्ची बात बोलने वाला, सार्थक बात बोलने वाला, धर्म की बात बोलने वाला और विनय की बात बोलने वाला है।

तब अचेल कस्सपने कहा कि अनेक श्रमणों और ब्राह्मणों के तप ऐसे होते हैं जैसे नग्न रहना, आचार-विचार छोड़ देना, व्रत करना, भिक्षा वा खान-पान के बारे में तरह-तरह के माप-दंड अपनाना, बाहरी वेषभूषा, उठने-बैठने-सोने के तौर-तरीके, इत्यादि। यह सुन कर भगवान ने कहा कि इस प्रकार का तप करने वाला व्यक्ति शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति और प्रज्ञा-संपत्ति की भावना नहीं कर सकता और न ही इनका साक्षात्कार कर सकता है। वह श्रामण्य और ब्राह्मण्य से दूर रह जाता है। श्रमण अथवा ब्राह्मण तो वही कहलाता है जो वैर और द्रोह-रहित हो कर मैत्री-भावना करता है और चित्त-मलों का क्षय हो जाने से निर्मल चित्त की मुक्ति और प्रज्ञा द्वारा मुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर विहार करता है।

तपश्चात अचेल कस्सप द्वारा शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति और प्रज्ञा-संपत्ति के बारे में जानकारी चाहे जाने पर भगवान ने कहा कि जब संसार में कोई तथागत उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर कोई व्यक्ति हिंसा को छोड़ हिंसा से विरत रहता है, दंड और शस्त्र को छोड़ देता है, संकोच-शील, दयावान और सभी जीवों का हितानुकंपी हो विहार करता है, यह उसकी शील-संपत्ति होती है। बुरी आजीविका से विरत रहना भी

शील-संपत्ति होती है। ऐसा शील-संपन्न हुआ व्यक्ति कहीं से भय नहीं देखता और अपने भीतर निर्दोष सुख को अनुभव करता है। यह होती है 'शील-संपत्ति'।

जब वह व्यक्ति अपनी इंद्रियों को वश में कर, हर अवस्था में स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, संतुष्ट हुआ, चित्त के नीवरणों को दूर कर, समाहित चित्त से प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, यह उसकी चित्त-संपत्ति होती है। इसी प्रकार जब वह द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, यह भी होती है उसकी 'चित्त-संपत्ति'!

इसी प्रकार समाहित-चित्त होकर जब वह व्यक्ति (विपश्यना) ज्ञान के लिए अपने चित्त को नवाता है, यह उसकी प्रज्ञा-संपत्ति होती है। ऐसे ही जब वह अपने चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है जिसके फलस्वरूप यह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है - 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है' - यह भी होती है 'प्रज्ञा-संपत्ति'!

इस 'शील-संपत्ति', 'चित्त-संपत्ति', 'प्रज्ञा-संपत्ति' से बढ़ कर कोई अन्य शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति, प्रज्ञा-संपत्ति नहीं होती है।

भगवान ने अन्य आचार्यों के मन में अपने बारे में होने वाली अनेक भ्रांतियों को भी यह कहकर दूर किया कि याकि श्रमण गौतम सिंह-गर्जना करता है, परिषदों में गर्जना करता है, बड़ी कुशलता के साथ गर्जना करता है, लोग उससे प्रश्न पूछते हैं, वह लोगों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है, प्रश्नों के उत्तर से चित्त प्रसन्न करता है, लोग इसे सुनने योग्य मानते हैं, सुन कर प्रसन्न होते हैं, प्रसन्नता प्रकट करते हैं, सच्चाई का प्रतिपादन करने लगते हैं और इसके प्रतिपादन में लगे हुए उसे प्राप्त कर लेते हैं।

कालांतर में अचेलकस्सपने भगवान के पास प्रव्रज्या पायी, उपसंपदा पायी और साधनाभ्यास करते हुए अरहंतों में से एक हुआ।

९. षोडशपादसुत्त

एक समय सावथी में भिक्षाटन के लिए जाते-जाते भगवान तिन्दुकचीर के वाद-भवन पर चले गये। वहां षोडशपाद नाम का परिव्राजक तीन सौ साधुओं को निरर्थक कथा-कहानियां सुना रहा था। भगवान को आते देख वे सब चुप हो गये।

भगवान का स्वागत कर पोट्टपाद ने उनसे यह जानना चाहा कि अभिसंज्ञा-निरोध कैसे होता है। इस पर उन्होंने कहा कि पुरुष की संज्ञाएं स-कारण, स-प्रत्यय उत्पन्न भी होती हैं और निरुद्ध भी होती हैं। कोई-कोई संज्ञा शिक्षा से उत्पन्न होती है, कोई-कोई शिक्षा से निरुद्ध हो जाती है।

तत्पश्चात् भगवान ने 'शिक्षा' के बारे में समझाया कि जब कोई व्यक्ति तथागत द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर शीलें का पालन करता हुआ; इंद्रिय-संवर, स्मृति-संप्रज्ञान और संतोष का आश्रय लेता हुआ अपने चित्त से नीवरणों को दूर कर, समाहित चित्त से, एक से एक ऊंचा ध्यान करता है तब इन ध्यानों के समय शिक्षा से उत्पन्न और निरुद्ध होने वाली संज्ञाओं की स्थिति इस प्रकार रहती है -

चूंकि साधक अपनी ही संज्ञा ग्रहण करने वाला होता है, अतः वह वहां से वहां, वहां से वहां, क्रमशः श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर संज्ञा को प्राप्त करता जाता है। उसके चिंतन न करने, अभिसंस्करण न करने से सूक्ष्म संज्ञाएं नष्ट हो जाती हैं और स्थूल संज्ञाएं उत्पन्न होती नहीं। इस प्रकार, क्रमशः, अभिसंज्ञा-निरोध की स्थिति आ जाती है।

तब पोट्टपाद ने यह जानना चाहा कि संज्ञा पुरुष की आत्मा होती है, या संज्ञा और आत्मा अलग-अलग होते हैं। इस पर भगवान ने कहा कि तुम जैसे भिन्न दृष्टि वाले, भिन्न चाह वाले, भिन्न रुचि वाले, भिन्न आयोग वाले, भिन्न आचार्य वाले के लिए यह जान लेना दुष्कर है।

तब पोट्टपाद ने एक-एक करके यह जानना चाहा कि क्या लोक शाश्वत है; अशाश्वत है; अंतवान है; अनंत है; जीव ही शरीर है; जीव और शरीर अलग-अलग हैं; मरने के बाद तथागत फिर पैदा होता है, या नहीं होता है, या होता है और नहीं भी होता है, या न होता है न नहीं होता है। इन प्रश्नों को भगवान ने 'अव्याकृत' (अनिर्वचनीय) कहा क्योंकि ये न तो अर्थयुक्त हैं, न धर्मयुक्त, न आदि-ब्रह्मचर्य के उपयुक्त और न ही ये निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी हैं।

तब पोट्टपाद द्वारा यह पूछे जाने पर कि भगवान ने क्या-क्या 'व्याकृत' किया है, उन्होंने कहा -

‘यह दुःख है’; ‘यह दुःख का समुदय है’; ‘यह दुःख का निरोध है’; ‘यह दुःख के निरोध का उपाय है’।

दो तीन दिन बीतने पर चित्त हृत्सिरिपुत्त और षोडशपाद भगवान के पास गये। उस अवसर पर चर्चा के दौरान भगवान ने कहा कि कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण ऐसी दृष्टि रखते हैं कि ‘मरने के बाद आत्मा अ-रोग, एकान्त-सुखी होती है।’ यह पूछे जाने पर ये कहते हैं कि हम न तो इस एकान्तसुख वाले लोक अथवा आत्मा को जानते हैं; न वहां ले जाने वाले मार्ग को जानते हैं और न ही उस लोक में उत्पन्न हुए देवताओं के शब्द सुन पाते हैं कि ऐसे ही मार्ग पर आरूढ़ होकर हम यहां पर पैदा हुए हैं। इससे उनका कथन वैसे ही प्रमाणरहित हो जाता है जैसे कि सी जनपदक ल्याणी की कामना करने वाले व्यक्ति ने न तो उसे देखा हो और न उसके बारे में कुछ जानता हो, या कि सी महल पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाने वाले व्यक्ति ने न तो महल को देखा हो और न उसके बारे में कुछ जानता हो।

तत्पश्चात् भगवान ने तीन प्रकार के आत्म-प्रतिलाभ (जन्म-ग्रहण) की जानकारिणी - स्थूल, मनोमय तथा अ-रूप (अ-भौतिक)। चार महाभूतों से बना हुआ, ग्रास-ग्रास करके आहार करने वाला ‘स्थूल’ जन्म-ग्रहण होता है। रूपी, मनोमय, सब अंग-प्रत्यंग वाला, इंद्रियों से परिपूर्ण ‘मनोमय’ जन्म-ग्रहण होता है। अ-रूप (देवलोक में) संज्ञामय होना ‘अ-रूप’ जन्म-ग्रहण होता है।

भगवान ने कहा मैं तीनों प्रकार के जन्म-ग्रहण से छूटने के लिए धर्मोपदेश करता हूं। इससे चित्त-मल उत्पन्न करने वाले (संक्लेशिक) धर्म छूट जाते हैं, शोधक धर्म बढ़ते हैं, प्रज्ञा की परिपूर्णता वा विपुलता को इसी जीवन में अपनी अभिज्ञा से साक्षात् जान कर, प्राप्त कर, विहार करने लगते हैं। इससे प्रमोद भी होता है और प्रीति, प्रश्रद्धि, स्मृति, संप्रज्ञान तथा सुख-विहार भी होता है।

तत्पश्चात् भगवान ने वर्तमान शरीर की सत्यता को प्रज्ञप्त किया। उन्होंने कहा कि जिस समय जैसा जन्म-ग्रहण होता है - स्थूल, मनोमय अथवा अ-रूप - उस समय उसी को स्वीकार करना होता है, अन्य को नहीं। जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, घी से घी का सार तैयार होता है परन्तु इन पदार्थों में से जिस समय जो पदार्थ विद्यमान होता है, उसी को यथार्थतः स्वीकार करना होता है, अन्य को नहीं।

भगवान के उपदेश से प्रभावित हो षोडशपाद परिव्राजक भगवान का शरणागत

उपासक हुआ और चित्त हथिसारिपुत्त भगवान के पास प्रब्रज्या, उपसंपदा पा अरहंतों में से एक हुआ।

१०. सुभसुत्त

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही दिन बाद आयुष्मान आनन्द सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय तोदेय्यपुत्र सुभ नाम के माणवक ने उन्हें अपने घर पर आमंत्रित कर उनसे कहा –‘आप भगवान गौतम के बहुत दिनों तक सेवक तथा समीपचारी रहे। कृपया यह बतलायें कि भगवान किन धर्मों की प्रशंसा किया करते थे, किन धर्मों को वे जनता को सिखाते और उनमें प्रवेशित-प्रतिष्ठित करते थे?’

इस पर आयुष्मान आनन्द ने उसे भगवान द्वारा प्रशंसित तीन स्कंधों की जानकारी दी –

(१) आर्य शील-स्कंध, (२) आर्य समाधि-स्कंध, तथा (३) आर्य प्रज्ञा-स्कंध।

तत्पश्चात् इनके बारे में विस्तार से समझाया कि संसार में तथागत के उत्पन्न होने पर उनके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर कोई गृहपति कैसे विविध प्रकार के शीलों का पालन क‘शीलसंपन्न’ हो जाता है।

फिर इंद्रियों को वश में करता हुआ, हर अवस्था में स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, संतुष्ट रह कर, पांचों नीवरणों का प्रहाण कर, एक-के-बाद-एकचारों ध्यान करके ‘समाधिसंपन्न’ हो जाता है।

और तदनंतर अपने चित्त में विपश्यना-ज्ञान से लेकर आस्रवक्षय-ज्ञान तक विविध प्रकार के ज्ञान जगा कर ‘प्रज्ञासंपन्न’ हो जाता है। आस्रवक्षय-ज्ञान होने के साथ ही उस व्यक्ति को यह अभिज्ञान हो जाता है – ‘मैं मुक्त हो गया! मैं मुक्त हो गया!’

आर्य प्रज्ञा-स्कंध से परे करने को कुछ शेष नहीं रह जाता है।

सुभ माणवक ने भी ‘आर्य प्रज्ञा-स्कंध’ की परिपूर्णता को जान कर आश्चर्य व्यक्त किया और शरण-त्रय ग्रहण करते हुए आयुष्मान आनन्द से याचना की कि वे उसे जीवन भर के लिए अपनी शरण में आया हुआ उपासक स्वीकार करें।

११. के वट्सुत्त

एक समय भगवान नाळन्दा के निकट पावारिक आम्रवन में विहार कर रहे थे। उस समय गृहपतिपुत्र के वट्ट ने उनसे अनुरोध किया कि आप समृद्ध एवं घनी आबादी वाले नाळन्दा नगर में अपने किसी भिक्षु को भेज कर वहां अलौकिक ऋद्धियों का प्रदर्शन करावें। इससे नाळन्दा-वासी आप के प्रति और अधिक श्रद्धालु हो जायेंगे।

इस पर भगवान ने कहा मैं अपने भिक्षुओं को ऐसा धर्मोपदेश नहीं देता कि तुम गृहस्थों को अपनी ऋद्धियों का प्रदर्शन करो। ऋद्धि-बल तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें मैंने स्वयं जान कर और साक्षात्कार कर बतलाया है। ये हैं - (१) ऋद्धि-प्रातिहार्य, (२) आदेशना-प्रातिहार्य, तथा (३) अनुशासनी-प्रातिहार्य।

तब भगवान ने इन तीनों के गुण-दोष बतलाये। उन्होंने कहा 'ऋद्धि-प्रातिहार्य में भिक्षु अपने ऋद्धि-बल से अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन करता है, परंतु गन्धारी नाम की विद्या द्वारा भी ऐसा किया जा सकता है। ऐसे ही 'आदेशना-प्रातिहार्य' में भिक्षु दूसरों के चित्त को जान लेता है, परंतु मणिकानाम की विद्या द्वारा भी ऐसा किया जाना संभव है। इन दोनों के इन दोषों को देख कर मुझे इनके प्रदर्शन से संकोच होता है।

'अनुशासनी-प्रातिहार्य' में भिक्षु ऐसा अनुशासन करता है - 'ऐसा विचारो, ऐसा मत विचारो; ऐसा मन में करो, ऐसा मन में मत करो; इसे छोड़ दो, इसे स्वीकार कर लो।' और फिर जब इस संसार में कोई तथागत उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर कोई गृहपति शीलसंपन्न हो जाता है और तदुपरांत इंद्रियों को वश में कर, स्मृति और संप्रज्ञान का अभ्यास ही हो, संतुष्ट हुआ, चित्त के नीवरणों को दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहरता है तो यह भी 'अनुशासनी-प्रातिहार्य' है। और इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त होकर विहरना अथवा चित्त को (विपश्यना) ज्ञान से लेकर आस्रवक्षय-ज्ञान तक नवाते जाना 'अनुशासनी-प्रातिहार्य' ही है। आस्रवक्षय-ज्ञान की अंतिम अवस्था पर तो भिक्षु प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।'

एक बार एक भिक्षु के मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि ये चार महाभूत -

पृथ्वीधातु, जलधातु, तेजोधातु तथा वायुधातु - कहां जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। तब उस भिक्षु ने अपने समाहित चित्त से पहले देवलोक और फिर ब्रह्मलोक में जाकर इस प्रश्न का समाधान चाहा परंतु न तो कोई देव और न ही ब्रह्मा स्वयं इसका समाधान कर पाये।

तब उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से यही प्रश्न किया। इस पर उन्होंने कहा कि यह प्रश्न ऐसे पूछना चाहिए - 'कहां पर जल, पृथ्वी, तेज तथा वायु स्थित नहीं रहते हैं? कहां दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, शुभ, अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं?'

उन्होंने इसका उत्तर इस प्रकार दिया - 'अनिदर्शन (अर्थात्, जहां उत्पत्ति, स्थिति और लय की बात नहीं है), अनंत और अत्यंत प्रभायुक्त निर्वाण जहां है, वहां जल, पृथ्वी, तेज और वायु स्थित नहीं रहते। वहां दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, शुभ, अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं। विज्ञान के निरोध से वहां सभी का अवसान हो जाता है।'

१२. लोहिच्चसुत्त

एक समय भगवान कोसलदेश में चारिकाकरते हुए सालवतिका पहुँचे। वहां पर लोहिच्च नाम का ब्राह्मण रहता था। उसके मन में यह पाप-दृष्टि पैदा हुई कि कोई श्रमण या ब्राह्मण कुशल धर्म को जान कर इसे किसी दूसरे को न बताये, क्योंकि कोई किसी दूसरे के लिए कर ही क्या सकता है?

भगवान ने उसकी इस पाप-दृष्टि को दूर करने के लिए उसे कहा कि यदि कोई व्यक्ति अपनी समूची आय का अकेला ही उपभोग करे, किसी को कुछ न दे, तो वह उसके आश्रितों के लिए हानिकारक होगा, अहितकारक होगा, उनके मन में शत्रुता जगाने वाला होगा जिससे मिथ्या-दृष्टि पैदा होगी। और मिथ्या-दृष्टि रखने वाले की दो ही गतियां होती हैं - नरक या नीच योनि में जन्म!

ऐसी पाप-दृष्टि वाला व्यक्ति उन कुलपुत्रों के लिए भी हानिकारक सिद्ध होगा जो भव से निवृत्त होने के लिए तथागत के बताये धर्म में आकर ऐसी विदग्धता हासिल कर लेते हैं जिससे सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी अथवा अरहंत हो जाते हैं अथवा दिव्यगर्भ का परिपाक करते हैं। वह हानिकारक होने से अहितकारक, शत्रुता जगाने वाला और मिथ्या-दृष्टि पैदा करने वाला होगा जिसकी दो ही गतियां होती हैं - नरक या नीच योनि में जन्म!

तत्पश्चात् भगवान् ने उसे समझाया कि तीन प्रकारके गुरु सचमुच आक्षेप के योग्य होते हैं: (१) जो श्रमणभाव को प्राप्त किये बिना ही श्रावकों को धर्म सिखाते हैं और श्रावक उनकी बात सुनते नहीं हैं। (इन गुरुओं का यह कृत्य ऐसा लगता है मानों मुँह फेरे हुए का आलिंगन करना चाहते हों।) (२) जो श्रमणभाव को प्राप्त किये बिना ही श्रावकों को धर्म सिखाते हैं और श्रावक उनकी बात सुनते हैं। (इन गुरुओं का यह कृत्य ऐसा लगता है मानों अपने खेत की सफाई को छोड़ कर दूसरे के खेत की सफाई करना चाहते हों।) (३) जो श्रमणभाव को प्राप्त कर श्रावकों को धर्म सिखाते हैं परंतु श्रावक उनकी बात को नहीं सुनते। (इन गुरुओं का यह कृत्य ऐसा लगता है मानों कि सी पुराने बंधन को काट कर नया बंधन खड़ा करना चाहते हों।)

संसार में ऐसे भी गुरु होते हैं जिन पर आक्षेप नहीं किया जा सकता। जब संसार में कोई तथागत उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान् होकर कोई व्यक्ति शीलसंपन्न हो, समाधि का अभ्यास करता हुआ प्रथम से लेकर चतुर्थ ध्यान को क्रमशः प्राप्त कर इनमें विहार करते हुए इसमें विदग्धता हासिल कर लेता है, ऐसा गुरु आक्षेप के योग्य नहीं होता। ऐसे ही जब कोई व्यक्ति निर्मल किये हुए समाहित चित्त को (विपश्यना) ज्ञान के लिए अथवा आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है जबकि वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है’ – ऐसा गुरु भी आक्षेप के योग्य नहीं होता।

भगवान् का यह धर्मोपदेश सुन लोहिच्च को ऐसे लगा मानों नरक के गड्ढे में गिरते हुए उसे ऊपर खींच कर धरती पर रख दिया गया हो। भाव-विभोर होकर उसने भगवान् से याचना की कि आप मुझे जीवन भर के लिए उपासक स्वीकार करें।

१३. तेविज्जसुत्त

एक समय भगवान् कोसल देश के मनसाकट ग्राम के उत्तर की ओर अचिरवती नदी के तीर पर आम्रवन में विहार कर रहे थे। उस समय वासेट्ट और भारद्वाज नाम के दो ब्राह्मण माणवक उनके पास गये और उनसे अपना यह विवाद सुलझाने के लिए कहा कि ब्रह्मा की सलोकता के लिए सही वा सीधा मार्ग

कौनसा है। ये दोनों ही अपने-अपने आचार्य के बतलाये हुए मार्ग को सही वा सीधा बतला रहे थे।

इस पर भगवान द्वारा अलग-अलग प्रश्न पूछे जाने पर वासेट्टु माणवक ने स्वीकार कि याकि त्रैविद्य ब्राह्मणों में एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं है जिसने ब्रह्मा को अपनी आंख से देखा हो, इनके एक भी आचार्य-प्राचार्य ने सात पीढ़ी तक ब्रह्मा को आंख से नहीं देखा। यही नहीं, जो त्रैविद्य ब्राह्मणों के पूर्वज, मंत्रों के प्रवक्ता ऋषिथे उन्होंने भी कहीं पर यह नहीं कहा – ‘जहां ब्रह्मा है, जिससे ब्रह्मा है, जहां से ब्रह्मा है हम उसे जानते हैं, हम उसे देखते हैं।’

इस पर भगवान ने कहा कि ऐसा होने पर तो त्रैविद्य ब्राह्मणों का यह कथन सर्वथा अ-प्रामाणिक हो जाता है कि ब्रह्मा की सलोकता के लिए ‘अमुक’ मार्ग है क्योंकि उनमें से, पहले-पीछे, न इसे कि सी ने जाना, न देखा – जैसे अंधों की पंक्ति में पहले वाला भी नहीं देखता, बीच वाला भी नहीं देखता, पीछे वाला भी नहीं देखता।

इसके अतिरिक्त जब ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को छोड़ कर और अ-ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को अपना कर त्रैविद्य ब्राह्मण ब्रह्मा-सहित विभिन्न देवताओं का आह्वान करते हैं, तब ऐसा नहीं हो सकता कि वे मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करें – जैसे नदी के इस तीर पर खड़े व्यक्ति के आह्वान करते रहने से नदी का दूसरा तीर इस ओर नहीं आ जाता।

ऐसे ही ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को छोड़ कर और अ-ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को अपना कर पांच कामभोगों में डूबे हुए त्रैविद्य ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करें, ऐसा नहीं हो सकता – जैसे नदी के इस पार दृढ़ सांकल से पीछे बांध करके मजबूत बंधन से बँधा हुआ व्यक्ति नदी के उस पार जाने की इच्छा होने पर भी उस पार नहीं जा सकता। (ये पांच ‘कामभोग’ आर्य-विनय में ‘सांकल’ अथवा ‘बंधन’ कहलाते हैं।)

ऐसे ही ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को छोड़ कर और अ-ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को अपना कर पांच नीवरणों से ढँके हुए त्रैविद्य ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करें, ऐसा नहीं हो सकता – जैसे नदी के इस पार अपने आप को सिर तक ढांपे हुए कोई व्यक्ति नदी के उस पार जाने की इच्छा होने पर भी उस पार नहीं जा सकता। (ये पांच ‘नीवरण’ आर्य-विनय में ‘आवरण’ अथवा ‘अवनाहन’, अर्थात्, बंधन कहलाते हैं।)

तदनंतर भगवान ने यह भी स्पष्ट कि याकि ब्रह्मा और त्रैविद्य ब्राह्मणों के गुण एक दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं। ब्रह्मा अ-परिग्रही, अ-वैरी, अ-द्रोही, संक्लेश-रहित और प्रभावशाली है जबकि ब्राह्मण परिग्रही, वैरी, द्रोही, संक्लेश-युक्त और अप्रभावशाली हैं। उपास्य और उपासक के गुणों में इतना अंतर होने पर कि सी त्रैविद्य ब्राह्मण का मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करना संभव नहीं हो सकता।

तब वासेट्ट माणवक ने भगवान से प्रार्थना की कि आप ही ब्रह्मा की सलोकता के मार्ग का उपदेश करें।

इस पर भगवान ने कहा कि जब संसार में कोई तथागत पैदा होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर कोई व्यक्ति शीलसंपन्न हो जाता है और अपने चित्त से नीवरण दूर कर अपने भीतर उत्तरोत्तर प्रमोद, प्रीति, प्रश्रद्धि और सुख अनुभव करने लगता है, इससे उसका चित्त खूब समाहित हो जाता है। ऐसे समाहित चित्त से जैसे-जैसे मैत्री, करुणा, मुदिता अथवा उपेक्षा को भावित किया जाता है वैसे-वैसे ब्रह्मा की सलोकता का मार्ग खुलता जाता है।

इस प्रकार ब्रह्म-विहार करने वाला व्यक्ति अ-परिग्रही, अ-वैरी, अ-द्रोही, संक्लेश-रहित और प्रभावशाली होता है। ब्रह्मा के भी यही गुण हैं। अतः ब्रह्म-विहार करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा के समान गुणों वाला हो कर मृत्यु के उपरांत ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त कर लेता है।

दीघनिकाय भाग - २

१. महापदानसुत्त

एक समय सावथी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते हुए भगवान ने भिक्षुगण के अनुरोध पर उन्हें पूर्वजन्म-संबंधी धार्मिक कथा कही। उन्होंने बतलाया कि आज से इक्यानवे कल्प पहले भगवान, अरहंत और सम्यक संबुद्ध विपस्सी संसार में उत्पन्न हुए थे। उनके बाद सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप और वे स्वयं सम्यक संबुद्ध हुए हैं।

इन सबका संक्षिप्त परिचय देने के बाद उन्होंने विपस्सी भगवान की जीवनी का विस्तार से उल्लेख करते हुए बतलाया कि उनके पिता राजा बन्धुमान और माता देवी बन्धुमती थी। उनकी राजधानी का नाम भी बन्धुमती था। वे तुसित देव-लोक से च्युत हो कर, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, अपनी माता की कोख में प्रविष्ट हुए थे। उनके उत्पन्न होने पर नैमित्तिक ब्राह्मणों ने बतलाया था कि इनका शरीर महापुरुष के बत्तीस लक्षणों से युक्त है। यदि ये घर में रहे तो चक्रवर्ती राजा होंगे और घर से बे-घर हो प्रव्रजित हुए तो सम्यक संबुद्ध होंगे।

राजा बन्धुमान ने विपस्सी कुमार के लिए सर्व-प्रकार की सुख-सुविधाएं जुटायीं और पांचों कामगुणों का प्रबन्ध कराया। परंतु अलग-अलग अवसरों पर वृद्ध, रोगी, मृत और संन्यासी को देख कर उनके मन में निर्वेद जागने से वे अपने सिर-दाढ़ी मुँड़वा, काषायवस्त्र पहन, घर से बे-घर हो प्रव्रजित हो गये।

तत्पश्चात् एकान्त में ध्यान करते समय उनके मन में यह विचार आया कि यह संसार बहुत कष्ट में पड़ा है। कोई जन्मता है, जीर्ण होता है, मर जाता है। एक स्थिति से च्युत होता है और दूसरी में उत्पन्न हो जाता है। इससे बाहर निकलने का रास्ता कैसे जाना जाये? तब सही चिंतन के द्वारा, अपनी प्रज्ञा जगा कर, उन्होंने यह जान लिया कि नामरूप के कारण विज्ञान, और विज्ञान के कारण नामरूप, नामरूप के कारण छह इन्द्रियां, छह इन्द्रियों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के

कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार इस 'केवल दुःख-समूह' की ही उत्पत्ति होती है।

तदनंतर उन्होंने यह भी जान लिया कि नामरूप के निरोध से विज्ञान, विज्ञान के निरोध से नामरूप, नामरूप के निरोध से छह इन्द्रियां, छह इन्द्रियों के निरोध से स्पर्श, स्पर्श के निरोध से वेदना, वेदना के निरोध से तृष्णा, तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास –सभी निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

इस सारे प्रपंच की उत्पत्ति और निरोध को जानकर बोधिसत्व विपस्सी के चक्षु ऐसे धर्म में खुले जिसके बारे में पहले कभी सुना ही नहीं था। उनमें ज्ञान जाग उठा और जाग उठे – प्रज्ञा, विद्या, आलोक।

तत्पश्चात् बोधिसत्व ने पांच उपादान-स्कंधों में उदय-व्यय को देखा – यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का अस्त हो जाना है; यह वेदना है, यह वेदना का समुदय है, यह वेदना का अस्त हो जाना है; यह संज्ञा है, यह संज्ञा का समुदय है, यह संज्ञा का अस्त हो जाना है; यह संस्कार है, यह संस्कार का समुदय है, यह संस्कार का अस्त हो जाना है; यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है, यह विज्ञान का अस्त हो जाना है। इन पांचों स्कंधों के उत्पत्ति-विनाश को देखकर उनका चित्त शीघ्र ही चित्त-मलों से सर्वथा मुक्त हो गया।

तब सम्यक संबुद्ध हुए विपस्सी भगवान ने अपने बुद्ध-चक्षु से संसार को देखा। इसके फलस्वरूप उन्होंने विविध प्रकार के प्राणियों को देखा – अल्प रज वाले, अधिक रज वाले; तीक्ष्ण इन्द्रिय वाले, मृदु इन्द्रिय वाले; अच्छे आकार वाले, बुरे आकार वाले; बात को जल्दी समझने वाले, बात को देर से समझने वाले; परलोक का भय खाने वाले, परलोक का भय न खाने वाले। तब उनके मन में हुआ कि जो कोई श्रद्धा के साथ मेरी बात सुनेंगे उनके लिए अमृत अर्थात् मोक्ष का द्वार खुल जायेगा।

तदनंतर विपस्सी भगवान ने सर्वप्रथम मेधावी राजपुत्र खण्ड और पुरोहितपुत्र तिस्र की स्वयं अनुभव किये गये धर्म – दुःख, समुदय, निरोध तथा मार्ग – का उपदेश दिया जिससे इन्हें भी विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ – 'जो कुछ समुदयधर्मा

है वह सब निरोधधर्मा है।' इस प्रकार इसी जीवन में धर्म का साक्षात्कार कर, सभी संशयों से मुक्त हो, उन्होंने बुद्ध और धर्म की शरण ग्रहण की और शनैः शनैः उनके चित्त नितांत आस्रव-विहीन हो गये। फिर धर्म के महत्व को भांप कर बहुत बड़ी संख्या में अन्य लोग भी घर से बे-घर हो भगवान के पास धर्म सीखने के लिए आये और इसी प्रकार आस्रव-विहीन हुए।

उन दिनों राजधानी बन्धुमती में अड़सठ लाख भिक्षुओं का महासंघ निवास करता था। भगवान ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा - 'भिक्षुओ! चारिका के लिए जाओ, बहुत लोगों के हित के लिए, बहुत लोगों के सुख के लिए, लोगों पर अनुकंपा करने के लिए, देवों और मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए। एक।कनीहीं, दो-दो होकर जाओ। आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी, अर्थ-युक्त, विशद, केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाशन करो। थोड़े से मैल के कारण धूमिल दृष्टि वाले ऐसे लोग हैं जो धर्म की बात न सुनने के कारण हानि उठा रहे हैं। वे धर्म को समझने वाले हो जायेंगे। और छह-छह वर्षों के अंतराल पर प्रातिमोक्ष के वाचन के लिए राजधानी बन्धुमती में आते रहना।'

यह सुनकर अधिक।शभिक्षु एक ही दिन में चारिका के लिए निकल पड़े और छह वर्ष बाद राजधानी में लौट आये। उस समय भिक्षु-संघ के लिए प्रातिमोक्ष का पाठ करते हुए विपस्सी भगवान ने कहा -

'क्षांति और तितिक्षा परम तप हैं; प्रव्रजित श्रमण दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता, न दूसरों को कष्ट देता है। बुद्ध-जन निर्वाण को सबसे उत्तम बतलाते हैं।'

'सब प्रकार के पापों का न करना, कुशलकर्मों का संचय करना, चित्त को निर्मल करते रहना - यह बुद्धों की शिक्षा है।'

'कठोर वचन, दुर्वचन न कहना, दूसरों की हिंसा न करना, प्रातिमोक्ष में संयम बरतना, भोजन की मात्रा को जानना, एकांत में सोना-बैठना, समाधि का अभ्यास - यह बुद्धों की शिक्षा है।'

अंत में भगवान ने कहा एक समय मुझे सुद्धावास देवों ने कहा था कि आज से इक्यानवे कल्प पहले विपस्सी भगवान ने संसार में जन्म लेकर संबोधि प्राप्त कर धर्मचक्र प्रवर्तित किया था और हम लोग उन्हीं के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन कर, सांसारिक भोग-विलासों से विरक्त हो, यहां उत्पन्न हुए हैं। अन्य

देव-लोकों के देवों ने भी अपने आप को भगवान विपस्सी से लेकर उनके उत्तरवर्ती सम्यक-संबुद्धों सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप तथा मेरा साक्षी होना बतलाया था। तथागत की धर्म-धातु इतनी बंधने वाली होती है कि इससे वह अतीत काल में परिनिर्वाण प्राप्त कि ये हुए, सारे प्रपंच को छिन्न-भिन्न कि ये हुए, सारे दुःखों से विमुक्त हुए, बुद्धों को उनके सारे विवरण सहित उन्हें जान लेते हैं।

२. महानिदानसुत्त

एक समय जब भगवान कु रु-देश में कु रुओं के निगम कम्मासधम्म में विहार कर रहे थे, आयुष्मान आनन्द ने उनसे कहा – ‘आश्चर्य है भंते! अद्भुत है भंते! कि तना गंभीर है और गंभीर-सा दिखता भी है यह प्रतीत्यसमुत्पाद, किन्तु मुझे यह साफ-साफ दिखलाई पड़ता है।’

इस पर भगवान ने उन्हें समझाया – ‘ऐसा मत कहो आनन्द! यह प्रतीत्यसमुत्पाद गंभीर है और गंभीर-सा दिखलाई भी देता है। आनन्द! इस धर्म के न जानने से ही यह प्रजा उलझे सूत-सी, गांठें पड़ी रस्सी-सी, मूंज-बल्वज-सी, अपाय, दुर्गति और पतन को प्राप्त होती है और संसार से पार नहीं हो पाती।’

तत्पश्चात् भगवान ने उन्हें, कारणों के विश्लेषण सहित, प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत समझाया – ‘नाम-रूप के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम-रूप। नाम-रूप के कारण स्पर्श होता है, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार इस ‘केवल दुःख-पुंज’ का समुदय होता है।’

तदनंतर भगवान ने बतलाया कि आत्मा को मानने वाले आत्मा का प्रज्ञापन चार प्रकार से करते हैं – १. यह रूपवान और सूक्ष्म है; २. रूपवान और अनंत है; ३. रूपरहित और सूक्ष्म है; ४. रूपरहित और अनंत है। आत्मा को नहीं मानने वाले इन प्रज्ञप्तियों को नकारते हैं।

आत्म-दर्शी आत्मा को तीन प्रकार से जानता है – १. वेदना मेरी आत्मा है; २. वेदना मेरी आत्मा नहीं, अ-प्रतिसंवेदन मेरी आत्मा है; अथवा ३. न वेदना मेरी

आत्मा है, न अ-प्रतिसंवेदन मेरी आत्मा है, मेरी आत्मा वेदना धर्म वाली है। ये तीनों प्रकार के चिंतन ठीक नहीं हैं।

पहले प्रकार के चिंतन में यह दोष है कि वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद – और इन तीनों में से जिस समय जो प्रकट होती है उस समय वही अनुभव होती है, अन्य दो प्रकार की नहीं; और ये सब अनित्यधर्मा भी हैं; तो जो कोई जिस कि सी वेदना को आत्मा मान लेता है वह थोड़ी ही देर में निरुद्ध हो जाती है और तब ऐसे लगने लगता है कि मेरी आत्मा तो चली गई। दूसरे प्रकार के चिंतन में यह दोष है कि जहां अ-प्रतिसंवेदन है अर्थात्, कुछ भी अनुभव नहीं होता, वहां 'मैं हूँ' – ऐसा नहीं कह सकते। तीसरे प्रकार के चिंतन में यह दोष है कि यदि सारी-की-सारी वेदनाएं सर्व प्रकार से सर्वथा नष्ट हो जाएं तो वेदनाओं के सर्वथा निरुद्ध हो जाने से 'मैं हूँ' – ऐसा कह पाना संभव नहीं रहता।

परंतु जो व्यक्ति न वेदना को आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसंवेदन को, और न ही इसे वेदना-धर्म वाला मानता है, वह लोक में कि सी को 'मैं और मेरा' करके ग्रहण नहीं करता, ग्रहण न करने वाला होने से त्रास नहीं पाता, त्रास न पाने से स्वयं परिनिर्वाण को प्राप्त होता है। तब वह अपनी प्रज्ञा से जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब इससे परे यहां आना नहीं है।' ऐसा व्यक्ति संसार में जितने भी अधिवचन, वचन-व्यवहार, निरुक्ति, भाषा-व्यवहार, प्रज्ञप्ति, प्रज्ञप्ति-व्यवहार, ज्ञान, ज्ञान के जो विषय होते हैं उन्हें जान कर मुक्त होता है। ऐसे व्यक्ति के लिए यह कहना अ-युक्त होता है – 'नहीं जानता है, नहीं देखता है, यह इसका दर्शन है।

तदनंतर भगवान ने यह समझाया कि 'प्रज्ञा-विमुक्त' कौन कहलाता है। प्रज्ञा-विमुक्त वह होता है जो सात प्रकार की विज्ञान की स्थितियों और दो प्रकार के आयतनों के समुदय, अवसान, आस्वाद, परिणाम तथा निस्सरण को यथाभूत जान कर उपादानों को ग्रहण न करते हुए मुक्त होता है। विज्ञान की सात स्थितियां हैं – १. नाना काया – नाना संज्ञा, २. नाना काया – एक संज्ञा, ३. एक काया – नाना संज्ञा, ४. एक काया – एक संज्ञा, ५. आकाश – आयतन, ६. विज्ञान – आयतन, ७. आर्किचन्य – आयतन। दो आयतन हैं – १. असंज्ञि-सत्व-आयतन अर्थात्, संज्ञारहित सत्वों का आवास, और २.

नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन अर्थात्, न तो संज्ञा वाला और न ही अ-संज्ञा वाला आयतन।

भगवान ने आठ विमोक्ष भी गिनवाये हैं। इनमें से आठवें विमोक्ष के अंतर्गत कोई व्यक्ति नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन का अतिक्रमण कर संज्ञा-वेदयित-निरोध की अवस्था, जिसमें संज्ञा और वेदना का पूर्णतया निरोध हो जाने से सर्व प्रकार का लोकीय अनुभव भी निरुद्ध हो जाता है, प्राप्त कर विहरने लगता है। जब आठों विमोक्षों को अनुलोम अर्थात्, १ से ८, प्रतिलोम अर्थात्, ८ से १, तथा अनुलोम प्रतिलोम अर्थात्, १ से ८, फिर ८ से १, जहां चाहता है, जब चाहता है, जितना चाहता है उतनी समाधि प्राप्त कर उठ खड़ा होता है, और आस्रवों के क्षय से इसी जन्म में आस्रव-रहित चित्त की मुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त हो विहरता है, तब वह 'उभयतोभाग-विमुक्त' कहलाता है।

३. महापरिनिब्बानसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में गिज्झकूटपर्वत पर विहार करते थे। उस समय मगध का राजा अजातसत्तु वज्जी पर आक्रमण कर उसे तहस-नहस करना चाहता था। इस बारे में भगवान कामत जानने के लिए उसने अपने ब्राह्मण मंत्री को उनके पास भेजा। भगवान ने उसे बतलाया कि एक समय मैंने वज्जियों को सात अपरिहाणीय धर्म कहे थे। जब तक वे इन धर्मों का पालन करते रहेंगे तब तक उनका उत्कर्ष ही होगा, अपकर्ष नहीं। ब्राह्मण के चले जाने पर भगवान ने भिक्षुओं को भी प्रकार प्रकार से अपरिहाणीय धर्मों की जानकारी दी जिससे उनका भी उत्कर्ष हो, अपकर्ष नहीं।

विहार के समय भगवान प्रायः यही धर्म-कथा कहा करते थे - 'यह शील है, यह समाधि है, यह प्रज्ञा है। शील से परिभावित समाधि महाफलदायी होती है। समाधि से परिभावित प्रज्ञा महाफलदायी होती है। प्रज्ञा से परिभावित चित्त आस्रवों - कामास्रव, भवास्रव, अविद्यास्रव - से भली प्रकार मुक्त हो जाता है।'

कुछ समय पश्चात् भगवान के जीवन की अंतिम यात्रा प्रारंभ हुई। वे अम्बलट्टिका होते हुए नाळन्दा पहुँचे जहां सारिपुत्त ने उनके प्रति बड़ी उदार वाणी कही कि संबोधि में उनसे बढ़कर न कोई हुआ है, न होगा, न है। (इस बारे में देखिए 'सम्पसादनीय-सुत्त' - दीघ०३-५)। वहां से पाटलिगाम पहुँच कर

भगवान ने गृहस्थों को दुराचार के पांच दुष्परिणाम और सदाचार के पांच सुपरिणाम गिनाये। उन्हीं दिनों वज्जियों की रोक-थाम के लिए इस ग्राम में एक बड़ा नगर बसाने का काम भी चल रहा था। इसे देख भगवान ने कहा कि जितने भी आर्यों के निवास हैं और जितने भी व्यापारिक मार्ग हैं, उनमें यह पाटलिपुत्र प्रधान नगर होगा, पर इसके तीन शत्रु होंगे - आग, पानी और आपस की फूट।

वहां से कोटिगाम पहुँच भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि चार आर्य-सत्तों का यथाभूत दर्शन न करने से ही इस संसार में आवागमन का क्रम चलता आ रहा है। जब इन्हें (विपश्यना द्वारा) देख लेते हैं तब भव-रज्जु (तृष्णा) नष्ट हो जाती है और दुःख की जड़ कट जाने से पुनर्जन्म नहीं होता। फिर नातिका पहुँच उन्होंने 'धर्म-आदर्श' नाम का उपदेश दिया जिससे युक्त हुआ आर्यश्रावक अपनी आगे की गति स्वयं जान सकता है।

तत्पश्चात् वेसाली पहुँच भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि 'स्मृति' और 'संप्रज्ञान' के साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है। फिर यह भी समझाया कि 'स्मृतिमान' कैसे होते हैं और 'संप्रज्ञानी' कैसे? जब कोई व्यक्ति राग और द्वेष को दूर करने के लिए जागरूक रह, संप्रज्ञान जगाये हुए, उद्योगशील हो काया में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करता है तब वह 'स्मृतिमान' होता है; और जब वह चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते शरीर की हर अवस्था में किसी भी प्रकार की शारीरिक क्रिया करते हुए अपने बारे में संपूर्ण जानकारी बनाये रखता है तब वह 'संप्रज्ञानी' होता है।

वेसाली में भगवान ने भिक्षु-संघ के साथ अम्बपाली गणिका के यहां भोजन पाया और उसके द्वारा भिक्षु-संघ को दान में दिये गये उसके उपवन को स्वीकार किया। फिर वहां से चल कर वेळुवगाम पहुँचे जहां वर्षावास किया। इस काल में उन्हें भयानक बीमारी लग गयी और मरणान्तक पीड़ा होने लगी परंतु उन्होंने उसे स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, बिना दुःख मानते हुए, सहन कर लिया।

भगवान के स्वस्थ होते ही आनन्द ने भगवान से कहा कि आपकी बीमारी के समय मुझे कुछ नहीं सूझता था, केवल यह विश्वास था कि आप तब तक परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करेंगे जब तक भिक्षु-संघ को कुछ कहन लेंगे। यह सुन कर भगवान बोले कि मैंने सब तरह से खुलासा करके धर्म दर्शा दिया है। मेरी कोई आचार्य-मुष्टि नहीं है। ऐसा नहीं है कि मैं भिक्षु-संघ को धारण करता हूँ अथवा

यह मेरे उद्देश्य से है। अतः बिना कि सीदूसरे का सहारा ढूँढे अपना द्वीप, अपना सहारा स्वयं बन कर विहार करो। धर्म को अपना द्वीप बना, धर्म के सहारे विहार करो। और यह तब होता है जब कोई व्यक्ति स्मृतिमान, संप्रज्ञानी, उद्योगशील हो काया, वेदनाओं, चित्त तथा धर्मों की अनुपश्यना करने लगता है।

तत्पश्चात् भगवान ने वेसाली के चापाल चैत्य में जाकर यह घोषणा की कि तब से तीन माह बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। इसके साथ ही उन्होंने स्मृति और संप्रज्ञान के साथ अपने आयु संस्कार को छोड़ दिया। उस समय बड़ा भीषण, लोमहर्षक भूचाल आया और देव-दुन्दुभियां बज उठीं। आनन्द के पूछने पर भगवान ने उसे उन आठ प्रत्ययों के बारे में बतलाया जिनकी वजह से ऐसे बड़े भूचाल आते हैं।

तदुपरांत उन्होंने आठ प्रकार की परिषदों, आठ प्रकार के अभिभू-आयतनों तथा आठ विमोक्षों के बारे में भी आनन्द को समझाया। उन्होंने कहा कि आठवां विमोक्ष वह होता है जब कोई व्यक्ति नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा आयतन का सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञा-वेदयित-निरोध को प्राप्त हो कर विहार करने लगे।

इसके बाद भगवान ने महावन की उपस्थानशाला में भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि मैंने स्वयं जान कर जो धर्म उपदिष्ट किया है उसे अच्छी तरह सीख कर उसका सेवन, भावन, संवर्धन करना जिससे यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो, बहुत लोगों का हितकारक, बहुत लोगों का सुखकारक, लोकों का अनुकंपक और देवों तथा मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए हो। ये धर्म हैं – चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक-प्रधान, चार ऋद्धि-पाद, पांच इन्द्रिय, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग।

भगवान ने उन्हें यह भी कहा कि सारे संस्कारव्ययधर्मा हैं, प्रमादरहित हो इस सच्चाई का संपादन करो। उन्होंने उनको तीन माह बाद अपना परिनिर्वाण होने की सूचना भी दी।

फिर वेसाली को छोड़ भोगनगर पहुँच कर भगवान ने भिक्षुओं को चार महाप्रमाणों का उपदेश दिया। इसमें उन्होंने यह समझाया कि यदि कोई व्यक्ति कि सी का भी हवाला देकर यह कहे कि 'यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का उपदेश है,' तो बिना इस उक्ति का अभिनंदन किये, बिना इसकी निंदा किये

इसकी तुलना सूत्र से कर लेनी चाहिए और विनय को देख जाना चाहिए। यदि यह इनसे मेल खाये, तो इसे सु-गृहीत जानें, अन्यथा दुर्गृहीत।

वहां से भगवान पावा पहुँचे जहां पर उन्होंने कर्मर-पुत्रचुन्द के आमंत्रण पर उसके यहां भोजन किया। इस भोजन को खाकर उन्हें खून गिरने की कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई और मरणान्तक पीड़ा होने लगी। उसे उन्होंने स्मृति और संप्रज्ञान से युक्त हो, बिना दुःखित हुए, सहन कर लिया। वहां से उन्होंने कुसिनारा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में ककु धनदी में स्नान कर जहां आम्रवन था वहां गये और यह घोषणा की कि आज रात के पिछले पहर कुसिनारा के उपवत्तन नामक मल्लों के शालवन में जुड़वां शाल-वृक्षों के बीच वे परिनिर्वाण-लाभ करेंगे।

वहां से आगे प्रस्थान करने से पूर्व भगवान ने आनन्द से कहा कि शायद कोई कर्मर-पुत्र चुन्द को चिंतित करे कि तूने अ-लाभ कमाया है जैसा कि तेरा पिंडपात खा कर तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं। तुम उसकी चिंता को यह कह कर दूर करना कि मैंने स्वयं भगवान के मुख से सुना था कि 'दो पिंडपात समान फलवाले हैं, दूसरे पिंडपातों से बहुत ही महाफलप्रद हैं। कौनसे दो? १. जिस पिंडपात का भोजन कर तथागत अनुत्तर सम्यक संबोधि को प्राप्त हुए, और २. जिस पिंडपात का भोजन कर तथागत अनुपाधिशेष निर्वाणधातु को प्राप्त हुए।'

इसके पश्चात् भगवान कुसिनारा के मल्लों के शालवन उपवत्तन में गये और वहां जुड़वें शालों के बीच मंचक बिछवा कर स्मृति-संप्रज्ञान के साथ विश्राम करने लगे। उस समय अकाल होने पर भी वह जुड़वां शाल फूलों से लद रहे थे और तथागत की पूजा के लिए वे फूल उनके शरीर पर बिखरने लगे। ऐसे ही आकाश से दिव्य मंदार-पुष्प, चंदन-चूर्ण उनके शरीर पर गिरने लगे। दिव्य वाद्य बजने लगे, दिव्य संगीत होने लगे। यह देख भगवान ने आनन्द से कहा कि इनसे तथागत सत्कृत, गुरुकृत, मानित, पूजित नहीं होते। जो भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका धर्म के मार्ग पर आरूढ़ हो विहार करते हैं उसी से तथागत सत्कृत, गुरुकृत, मानित, पूजित होते हैं।

उस समय दसों लोक धातुओं के बहुत से देवता तथागत के दर्शनार्थ एकत्रित हुए। भगवान ने देखा कि जो देवता अ-वीतराग थे वे बुरी तरह क्रंदन कर रहे थे कि सुगत बहुत जल्दी निर्वाण को प्राप्त कर रहे हैं, परंतु जो देवता वीतराग थे वे

स्मृति-संप्रज्ञान के साथ, शांत रह कर यह जान रहे थे - 'संस्कार (बने हुए पदार्थ) अनित्य हैं, तो कैसे इन्हें बनाये रख सकते हैं?'

तत्पश्चात् भगवान ने आनन्द को समझाया कि श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए ये चार स्थान दर्शनीय, वैराग्य पैदा करने वाले होते हैं - १. जहां तथागत उत्पन्न हुए, २. जहां सम्यक-संबुद्ध बने, ३. जहां धर्मचक्र प्रवर्तन किया, और ४. जहां अनुपाधिशेष निर्वाण-धातु को प्राप्त हुए। उन्होंने उसे यह भी समझाया कि तुम तथागत की शरीर-पूजा की तरफ से बेपरवाह रहना और सदर्थ के लिए ही उद्योगशील रहना। जिन्हें तथागत में बहुत अनुराग होगा वे ही उनकी शरीर-पूजा करेंगे। फिर उसे यह भी समझाया कि तथागत के महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनके शरीर का क्या करना होता है और कौन लोग स्तूप बनाये जाने के योग्य होते हैं।

तब आनन्द विहार में जाकर विलाप करने लगा कि मैं अभी शैक्ष्य हूँ और मेरे शास्ता का परिनिर्वाण हो रहा है। भगवान ने उसे बुलवा कर कहा कि तुम शोक मत करो। मैंने तो पहले ही कह रखा है कि सभी प्रियों से पार्थक्य होने वाला है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है, संस्कृत है वह नष्ट होने वाला है। ऐसा नहीं हो सकता कि वह नष्ट न हो। तूने लंबे समय तक तन, मन, वचन से अपरिमित मैत्री के साथ तथागत की सेवा की है। तूने पुण्य कमाया है। तू निर्वाण-साधन में लग, शीघ्र ही अनास्रव हो जा। फिर उन्होंने आनन्द के चार अद्भुत गुणों का बखान भी किया।

आनन्द ने भगवान से कहा कि इस छोटी सी नगरी में परिनिर्वाण कोमत प्राप्त हों। चम्पा, राजगृह आदि कि सी महानगर में परिनिर्वाण-लाभ करें। वहां बहुत से लोग तथागत के भक्त हैं। इस पर भगवान ने उसे बतलाया कि यही कुसिनारा पूर्वकाल में महासुदस्सन नाम के चक्रवर्ती राजा की कुसावती नाम की राजधानी थी जो दूर दूर तक फैली हुई, जनाकीर्ण, समृद्ध और वैभव-संपन्न थी।

तब आनन्द ने कुसिनारा में जाकर वहां के निवासियों को उनके क्षेत्र में तथागत के होने वाले महापरिनिर्वाण की जानकारी दी। इस पर बहुत से लोग उनके दर्शनार्थ चले आये और उनकी वंदना की। इसी बीच सुभद्र नाम का परिव्राजक भी वहां पर चला आया। वह धर्म के बारे में अपना कुछ संशय दूर करना चाहता था। पर आनन्द ने यह कह कर उसे भगवान के समीप जाने से रोक दिया कि वे इस समय थके हुए हैं, उन्हें कष्ट मत दो। इन दोनों का कथा-संलाप सुन भगवान ने परिव्राजक को अपने पास बुला उसे धर्मोपदेश दिया

और उसके संशय का निवारण किया। भगवान ने उसे बतलाया कि जिस धर्म-विनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, वहां न सोतापन्न है, न सक दागामी, न अनागामी, न अरहंत। जिस धर्म-विनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध होता है वहां सोतापन्न भी होता है, सक दागामी भी, अनागामी भी और अरहंत भी। यदि भिक्षु ठीक से विहार करें तो लोक अरहंतों से शून्य न हो। कालांतर में प्रव्रज्या, उपसंपदा पा यह परिव्राजक अरहंत हुआ। यही सुभद्र भगवान का अंतिम शिष्य हुआ।

महापरिनिर्वाण प्राप्त करने से पूर्व भगवान ने आनन्द से कहा कि शायद तुम्हें ऐसा लगे कि हमारे शास्ता चले गये, अब हमारे शास्ता नहीं हैं – ऐसा मत सोचना। मैंने जो धर्म और विनय प्रज्ञप्त कि ये हैं, वे ही मेरे बाद तुम्हारे शास्ता होंगे। फिर उन्होंने भिक्षुओं को भी अंतिम बार संबोधित करते हुए कहा कि सभी संस्कार अनित्य हैं, अ-प्रमाद के साथ इस सच्चाई का संपादन करो अर्थात्, इसे अनुभूति पर उतारो। यही भगवान का अंतिम वचन था।

तत्पश्चात् भगवान ध्यानावस्थित हो महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इसके साथ ही भीषण, लोमहर्षक महाभूचाल हुआ। देवेन्द्र सक्क (शक्र) ने गाथा कही – ‘संस्कार (कृतवस्तुएं) अ-नित्य हैं, उत्पाद-व्यय स्वभाव वाले हैं, उत्पन्न हो-होकर नष्ट होते रहते हैं, इनका नितांत उप-शमन ही (वास्तविक) सुख है।

तथागत के शरीर की दाह-क्रिया के पश्चात् प्रदेशों के शासक उनकी अस्थियों को बटोर उन्हें स्तूप-निर्माण के लिए ले गये।

४. महासुदस्सनसुत्त

भगवान अपने परिनिर्वाण के समय कुसिनारा के पास उपवत्तन नाम के मल्लों के शाल-वन में दो शाल-वृक्षों के बीच विहार कर रहे थे। उस समय आनन्द ने उनसे कहा यदि आप इस छोटी सी नगरी के स्थान पर चम्पा, राजगह, सावत्थी, साकेत, कोसम्बी, बाराणसी जैसे किसी महानगर में परिनिर्वाण लाभ करें तो अच्छा हो। वहां बहुत से लोग तथागत के भक्त हैं जो उनके शरीर की पूजा करेंगे।

इस पर भगवान ने कहा कि पूर्वकाल में महासुदस्सन नाम का चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने वाला एक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। यही कुसिनारा

उसकी कुसावती नाम की राजधानी थी जो अत्यंत विस्तीर्ण, समृद्ध तथा वैभव-संपन्न थी।

उस राजा के पास सात रत्न थे - १. चक्र-रत्न, २. हस्ति-रत्न, ३. अश्व-रत्न, ४. मणि-रत्न, ५. स्त्री-रत्न, ६. गृहपति-रत्न, तथा ७. परिणायक-रत्न। उसे चार ऋद्धियां भी प्राप्त थीं - १. परम-सौंदर्य, २. दीर्घ-आयु, ३. नीरोगता, और ४. ब्राह्मणों तथा गृहस्थों का वात्सल्य।

एक बार वह राजा अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ उद्यानभूमि में गया। वहां पर उसने बहुत सी पुष्करिणियां खुदवाईं और उनके तीर पर विविध प्रकार के दान स्थापित किये। इधर ब्राह्मण और गृहस्थ भी राजा को भेंट करने के लिए बहुत सा धन लेकर चले आये परंतु राजा ने उसे स्वीकार नहीं किया, उल्टा उन्हें ही अपने यहां से और धन ले जाने के लिए कहा। उन लोगों ने अपने साथ लाए हुए धन को अपने घरों में वापिस ले जाना उचित नहीं समझा और राजा के लिए एक प्रासाद (महल) तैयार करवाने का निर्णय लिया। राजा इससे सहमत हुआ। देवपुत्र विस्सकम्म ने 'धम्म' नामक प्रासाद तैयार कर दिया। राजा ने उसके सामने धर्म-पुष्करिणी बनवा दी। इन दोनों के तैयार हो जाने पर राजा ने उस समय के अच्छे-अच्छे श्रमणों तथा ब्राह्मणों को संतुष्ट कर 'धम्म'-प्रासाद में प्रवेश किया।

तब राजा को यह भान हुआ कि 'यह मेरे दान, दम, संयम - इन तीन कर्मों का फल है जिससे मैं इस समय इतना समृद्धिशाली एवं महानुभाव हुआ हूँ।' उसके मुख से प्रीति-वाक्य निकला -

‘ठहर काम-वितर्क ! ठहर व्यापाद-वितर्क ! ठहर विहिंसा-वितर्क !

बस काम-वितर्क !! बस व्यापाद-वितर्क !! बस विहिंसा-वितर्क !!

तत्पश्चात् वह कूटागार में प्रवेश कर उत्तरोत्तर प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर इनमें विहार करने लगा और इसके बाद क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-युक्त श्रेष्ठ चित्त से एक-एक करके सभी दिशाओं को व्याप्त कर विहरने लगा।

बहुत समय बाद सुभद्रादेवी नाम की राजमहिषी अन्य स्त्रियों के साथ राजा को देखने के लिए गयी। उसे दरवाजा पकड़े खड़ा हुआ देख राजा ने उसे भीतर

आने से रोक दिया और स्वयं तालवन में पलंग बिछवा कर दाहिनी करवट हो, पैर के ऊपर पैर रख, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ सिंहशय्या लगा ली।

इस पर महिषी को आशंका हुई कि कहीं राजा मरणासन्न तो नहीं है? मन में यह विचार आते ही उसने राजा को उसके धन-वैभव की याद दिलाते हुए कहा कि आप इनसे प्रसन्न हो अपने जीवित रहने की कामना करें। इस पर राजा ने उसे कहा, 'तुमने बहुत दिनों तक मेरे साथ इष्ट एवं प्रिय आचरण किया है; अतः इस अंतिम समय में अनिष्ट एवं अप्रिय आचरण करना उचित नहीं है।' इस समय तुम्हें यह कहना चाहिए - 'देव! सभी प्रिय वस्तुओं से बिछोह होता है। आप कि सी कामना के साथ प्राण न छोड़ें। कामना-युक्त मृत्यु दुःखपूर्ण होती है, गर्ह्य होती है। आपका जो इतना वैभव है उसमें लिप्त न हों। जीवित रहने की कामना मन में न करें।'

महिषी ने ऐसा ही किया। इसके कुछ ही देर बाद राजा की मृत्यु हो गयी। चारों ब्रह्मविहारों की भावना करता हुआ वह ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

अंत में भगवान ने कहा यह राजा महासुदस्सन में ही था। वह कुसावती नाम की राजधानी और वह सारा वैभव मेरा ही था। देखो, ये सभी संस्कार (कृत वस्तुएं) क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये, बदल गये। इसी प्रकार सभी संस्कार अनित्य हैं, अध्रुव हैं, अविश्वसनीय हैं। इसीलिए सभी संस्कारों से निर्वेद प्राप्त करना, विरक्त हो जाना, विमुक्त हो जाना उचित है।

भगवान ने यह भी बतलाया कि पहले छह बार इसी स्थान पर मेरी मृत्यु हो चुकी है। अब यहां सातवीं बार मेरा शरीरपात हो रहा है। मैं सारे लोकों में कोई अन्य स्थान नहीं देखता जहां तथागत को आठवीं बार शरीर त्यागना पड़े।

यह कह कर भगवान ने यह भी कहा -

“सभी संस्कार अनित्य हैं; उत्पत्ति और क्षय स्वभाव वाले हैं; ये उत्पन्न हो-हो कर मिट जाते हैं; इनका शांत हो जाना ही 'सुख' है।”

५. जनवसभसुत्त

एक समय भगवान नातिका में गिञ्जकावसथ में विहार करते हुए कासी और कोसल, वज्जी और मल्ल, चेति और वंस, कुरु और पञ्चाल तथा मच्छ और सूरसेन नामक जनपदों में बुद्ध, धर्म और संघ की परिचर्या करने वाले मृत

परिचारकोंकी पारलौकिक गति का बखान कर रहे थे। आयुष्मान आनन्द के मन में हुआ कि भगवान को अङ्ग और मगध के परिचारकोंकी गति का भी बखान करना चाहिए क्योंकि वहां पर भी बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धा रखने वाले बहुत लोग थे और मगधराज बिम्बिसार तो मरते दम तक भगवान का यशोगान करते रहे। उपयुक्त समय पा कर आयुष्मान आनन्द ने भगवान से इस बारे में निवेदन कर दिया।

कालांतर में भगवान ने अपने समाहित चित्त से मगध के परिचारकोंकी पारलौकिक गति को जान लिया और बाद में आनन्द को बतलाया कि मेरे ऐसा जान लेने के पश्चात मगधराज बिम्बिसार मेरे सामने जनवसभ नामक यक्ष के रूप में प्रकट हुआ और मुझसे कहा कि मैं अब सातवीं बार वेस्सवण महाराज का मित्र हो कर उत्पन्न हुआ हूँ। जब से मैं आप के प्रति श्रद्धावान हुआ हूँ तब से मेरी अपाय गति नहीं हुई है और मैं सकदागामी होने के लिए आशान्वित हूँ।

जनवसभ ने यह भी बतलाया कि पिछले दिनों उपोसथ को वैशाख पूर्णिमा की रात को सभी तावतिस देवता सुधर्मा सभा में इकट्ठे होकर बैठे थे। चारों ओर देवताओं की बड़ी भारी सभा लगी थी। चारों दिशाओं के लोकपाल चारों महाराजा भी बैठे थे। उस समय इंद्र के साथ-साथ सभी तावतिस देवता इस बात से बहुत प्रसन्न थे कि सुगत के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन करके हमारे लोक में आये हुए नये देव कर्ति, आयु और यश में दूसरों से बढ़-चढ़ कर हैं। उन्हें इस बात से भी प्रसन्नता हुई कि 'देव-लोक भर रहा है; असुर-लोक क्षीण हो रहा है।'

तभी वहां पर बड़े भारी तेज-पुंज के साथ सनङ्कुमार ब्रह्मा भी प्रकट हुए। आठ अंगों से युक्त ब्रह्मस्वर में उन्होंने तावतिस देवताओं को संबोधन करते हुए कहा -

- * भगवान लोगों के हित-सुख के लिए प्रयत्नशील हैं। जो कोई बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में गये हैं और जिन्होंने शीलें को पूरा किया है वे किसी न किसी देवलोक में उत्पन्न होते हैं। सब से हीन शरीर पाने वाला भी गंधर्व का शरीर पा लेता है।
- * सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध को चार ऋद्धिपाद प्राप्त हैं - छंद, वीर्य, चित्त एवं मीमांसा। नाना प्रकारकी ऋद्धियोंकी सिद्धि इन्हीं चार ऋद्धिपादोंको भावित करनेसे ही होती है। महाब्रह्मा भी इन्हीं चार ऋद्धिपादोंको भावित करनेसे महान ऋद्धिवाले महानुभाव हुए हैं।

- * सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध को सुख की प्राप्ति के लिए तीन अवकाश प्राप्त हैं - १. भोगों में और अ-कुशलधर्मों में न लगने से उत्पन्न होने वाला सुख, और फिर इससे बढ़ कर सौमनस्य; २. काया, वाणी और चित्त के स्थूल संस्कारों के शांत हो जाने से उत्पन्न होने वाला सुख, और फिर इससे बढ़ कर सौमनस्य; और ३. अविद्या के दूर हो जाने तथा विद्या के जागने से उत्पन्न होने वाला सुख, और फिर इससे बढ़ कर सौमनस्य।
- * सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध द्वारा कुशल की प्राप्ति के लिए चारों स्मृति-प्रस्थान प्रज्ञप्त किये गये हैं। कौन से चार? कायामें कायानुपश्यी होकर विहरना, वेदनाओं में वेदानुपश्यी होकर विहरना, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहरना, और धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहरना।
- * सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध ने सम्यक समाधि की भावना और परिशुद्धि के लिए सात समाधि-परिष्कारों को अच्छी तरह प्रज्ञप्त किया है। कौनसे सात? सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम और सम्यक स्मृति। सम्यक दृष्टि वाला मनुष्य सम्यक संकल्प में समर्थ होता है, सम्यक संकल्प वाला सम्यक वाणी में, सम्यक वाणी वाला सम्यक कर्मांत में, सम्यक कर्मांत वाला सम्यक आजीव में, सम्यक आजीव वाला सम्यक व्यायाम में, सम्यक व्यायाम वाला सम्यक स्मृति में, सम्यक स्मृति वाला सम्यक समाधि में, सम्यक समाधि वाला सम्यक ज्ञान में और सम्यक ज्ञान वाला मनुष्य सम्यक विमुक्ति में समर्थ होता है जिसे सम्यक प्रकार से कहने वाले मनुष्य कहते हैं - भगवान का धर्म स्वाख्यात (सुंदर प्रकार से कहा गया) है, सान्द्रष्टिक (इसी संसार में साक्षात्कार किये जाने के योग्य) है, अकालिक (सद्यः फलप्रद) है, एहि-पश्यिक ('आओ, देखो!' का भाव जगाने वाला) है, औपनयिक (निर्वाण के समीप ले जाने वाला) है, प्रत्येक (हर एक) के लिए हितकारी है और विज्ञों (पंडितों) द्वारा ज्ञेय है। जो कोई बुद्ध, धर्म तथा संघ में स्थिर रूप से प्रसन्न हैं और उत्तम प्रिय शील से युक्त हैं उनके लिए अमृत (निर्वाण) का मार्ग खुला हुआ है।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने घोषणा की कि चौबीस लाख से भी अधिक मगध के

परिचारक अतीत काल में मार के तीन बंधनों के कट जाने से सोतापन्न हो गये हैं, वे फिर कभी तीन अपायों में नहीं गिर सकते और नियत रूप से संबोधि प्राप्त करने में लगे हैं। और यहां सकदागामी भी हैं।

भगवान ने यह सारा वृत्तांत जनवसभ यक्ष से सुन कर और स्वयं अभिज्ञा से जान कर इसे आयुष्मान आनन्द को बताया। आयुष्मान आनन्द ने इसे भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों, उपासिकाओं को बताया। यही ब्रह्मचर्य ऋद्धियुक्त, उन्नत, विस्तारित, विख्यात और विशाल होकर देवों तथा मनुष्यों में प्रकाशित हुआ।

६. महागोविन्दसुत

एक समय जब भगवान राजगह के गिञ्जकूटपर्वत पर विहार कर रहे थे, पञ्चसिख नाम का गन्धर्वपुत्र ढलती रात में उनके पास आया और कहने लगा कि मैंने जो तावतिस देवों के मुँह से सुना है, उसे आपसे कहूँगा।

भगवान की अनुमति पाकर उसने कहा कि बहुत दिन पहले एक उपोसथ की रात में सभी तावतिस देव सुधर्मासभा में बैठे थे। बहुत बड़ी देव-परिषद चारों ओर बैठी थी। चारों दिशाओं के लोकपाल चारों महाराजा भी बैठे थे। उस समय तावतिस देव इस बात से अत्यंत प्रसन्न हो रहे थे कि भगवान के यहां से ब्रह्मचर्य का पालन कर जो लोग देव-लोक में आये हैं वे छवि और यश में अन्य देवों से बढ़-चढ़ कर हैं।

देवों के इंद्र सक्क ने भी इसका अनुमोदन किया और भगवान के गुणों का बखान किया। इतने में सनङ्कुमार ब्रह्मा भी वहां पर आ गये। उन्होंने भी तावतिस देवों की अभिव्यक्ति का अनुमोदन किया, देवेन्द्र सक्क से भगवान के गुणों को सुना और फिर देवों को संबोधित करते हुए कहा कि भगवान बहुत समय पहले भी महाप्रज्ञावान थे।

उन्होंने कहा कि बहुत पहले दिसम्पति नाम का राजा राज्य करता था। गोविन्द नाम का ब्राह्मण उसका पुरोहित था। गोविन्द का पुत्र जोतिपाल था। रेणु राजपुत्र, जोतिपाल और अन्य छह क्षत्रिय – ये आठों मित्र थे। गोविन्द ब्राह्मण के मरने पर उसका स्थान जोतिपाल ने ले लिया जो अपने पिता से भी बढ़-चढ़ कर पंडित और अर्थदर्शी निकला। इस पर लोगों ने उसका नाम 'महागोविन्द' रख दिया।

कालांतर में राजा का भी देहांत हो गया और राजपुत्र रेणु का राज्याभिषेक हुआ। फिर रेणु के आदेश से महागोविन्द ने भारतवर्ष को सात समान भागों में बांट दिया। बीच का भाग रेणु ने रख लिया और शेष छह भाग अपने क्षत्रिय-मित्रों में बांट दिये। इन मित्रों ने भी महागोविन्द को अपना पुरोहित बना लिया।

तब महागोविन्द इन सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रियों का अनुशासन करने लगा और सात ब्राह्मण महाशालों तथा सात सौ स्नातकों को मंत्र पढ़ाने लगा। कुछ समय बाद उसकी ऐसी ख्याति फैल गयी कि वह ब्रह्मा को साक्षात् देखता है, उनसे वार्तालाप व मंत्रणा भी करता है।

तब महागोविन्द के मन में आया कि मेरी ख्याति का कोई आधार नहीं है। पर मैंने बड़े-बूढ़ों तथा आचार्यगण को यह कहते सुना है कि जो वर्षा-काल के चातुर्मास में समाधि लगा कर क रुणा-भावना करता है वह ब्रह्मा को साक्षात् देख लेता है, उनसे वार्तालाप एवं मंत्रणा भी करने लगता है। अतः मैं भी क्यों न वर्षा-काल के चातुर्मास में समाधि लगा कर क रुणा-भावना करूं?

तब महागोविन्द ने रेणु राजा के पास जाकर यह सारी बात बतलायी और उससे कहा कि मेरे समाधि-काल में भोजन लाने वाले को छोड़ कर कोई दूसरा व्यक्ति मेरे पास न आये। राजा इससे सहमत हुआ। फिर लहों क्षत्रियों, ब्राह्मण महाशालों तथा स्नातकों और अपनी स्त्रियों की भी सहमति प्राप्त कर वह एक उपयुक्त स्थान पर समाधि का अभ्यास करने लगा।

कुछ समय के पश्चात् सनड्डुमार ब्रह्मा महागोविन्द के सामने प्रकट हुए। महागोविन्द ने उनसे पूछा – ‘कहां रह कर और क्या अभ्यास कर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है?’ ब्रह्मा ने उत्तर दिया – ‘मनुष्यों में ममत्व को छोड़ कर एक अंत में रहना, क रुणाभाव-युक्त होना, पापों से अलग रहना, मैथुन-कर्मसे विरत रहना – इन्हीं का अभ्यास कर, और इन्हीं को सीख कर, मनुष्य अमृत ब्रह्म-लोक को प्राप्त होता है।’ ब्रह्मा ने उसे यह भी बतलाया कि क्रोध, मिथ्या-भाषण, वंचना, मित्र-द्रोह, कृपणता, अभिमान, ईर्ष्या, तृष्णा, विचिकित्सा, पर-पीड़ा, राग, द्वेष, मद और मोह – इनसे युक्त हो कर नारकीय लोग ब्रह्मलोक से गिर कर दुर्गंध को प्राप्त होते हैं। इन्हें ‘आमगंध’ कहते हैं।

महागोविन्द को लगा कि आमगंध गृहस्थ से जल्दी दूर नहीं कि ये जा सकते।

अतः मुझे घर से बे-घर हो प्रव्रजित हो जाना चाहिए। तब वह रेणु राजा, छहों क्षत्रियों, सातों ब्राह्मणमहाशालों, सात सौ स्नातकों तथा अपनी स्त्रियों को अपना मंतव्य जतला कर सिर और दाढ़ी मुँडवा कर प्रव्रजित हो गया। उसकी देखादेखी ये सब भी प्रव्रजित हो गये और इनके अतिरिक्त हजारों अन्य लोगों ने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

महागोविन्द ने एक-एक करके मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-युक्त चित्त से सभी दिशाओं को आप्लावित किया और अपने श्रावकों को ब्रह्म-लोक का मार्ग बतलाया। उनमें से जिन्होंने धर्म को जान लिया, वे मर कर ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुए। जो धर्म को पूरी तरह नहीं समझ पाये, वे मर कर परनिम्मितवसवती, निम्नानरति, तुसित, यामा, तावतिस अथवा चातुमहाराजिक देवलोक में उत्पन्न हुए। जिन्होंने सब से हीन शरीर पाया, वे गन्धर्व-लोक में उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन सभी कुलपुत्रों की प्रव्रज्या सार्थक हुई।

भगवान ने पञ्चसिख से कहा, “मैं ही उस समय का महागोविन्द ब्राह्मण था। मैंने ही उन श्रावकों को ब्रह्मलोक का मार्ग बतलाया था। मेरा वह ब्रह्मचर्य न निर्वेद के लिए, न विराग के लिए, न निरोध के लिए, न परम शांति के लिए, न ज्ञान-प्राप्ति के लिए, न संबोधि के लिए और न निर्वाण के लिए था। वह केवल ब्रह्म-लोक की प्राप्ति के लिए था। परंतु मेरा यह ब्रह्मचर्य निर्वेद, विराग, निरोध, परम शांति, ज्ञान-प्राप्ति, संबोधि और निर्वाण के लिए है। और इस ब्रह्मचर्य का आधार है यही ‘आर्य अष्टांगिक मार्ग’ – सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि।”

भगवान ने आगे कहा कि जो मेरे श्रावक पूरा-पूरा धर्म जानते हैं वे आस्रवों के क्षय होने से, आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, विहार करते हैं, और जो पूरा-पूरा धर्म नहीं जानते वे औपपातिक, सकदागामी अथवा सोतापन्न हो जाते हैं। ऐसे सभी कुलपुत्रों की प्रव्रज्या सार्थक हो जाती है।

तत्पश्चात् पञ्चसिख भगवान के कथन का अभिनंदन कर और उनकी प्रदक्षिणा कर वहां से अंतर्धान हो गया। **

७. महासमयसुत्त

एक समय भगवान अरहंत-अवस्था-प्राप्त पांच सौ भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ शाक्यदेश में कपिलवस्तुके महावन में विहार कर रहे थे। उस समय उनका दर्शन करने के लिए दसों लोक धातुओं के बहुत से देवता एकत्र हुए। यह देख चारों सुद्धावास लोक के देवता भी वहां पर चले आये और उन्होंने भगवान के सन्मुख अपनी-अपनी गाथाएं कहीं।

तत्पश्चात् भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि इन सब देवशरीरधारियों को विवेक पूर्वक जान लो। इस पर कि तनों ने सौ, हजार अथवा सत्तर हजार देवता देखे; कि तनों ने सौ हजार देवता देखे और कि तनों ने सभी दिशाओं को अनंत देवों से आकीर्ण पाया।

तब भगवान ने यह सब जान कर श्रावकगण को वहां पर एकत्रित देवशरीरधारियों के नाम, इत्यादि का परिचय दिया।

इंद्र और ब्रह्मा के साथ सभी देवों के आगमन पर मार सेना भी वहां पर आ धमकी और सबको राग से वश में करने का यत्न करने लगी। इतने में क्रोध से आगबबूला हुआ मार भी वहां पर आ पहुँचा।

यह सब अपनी अभिज्ञा से जान कर भगवान ने श्रावकों को सचेत किया – ‘मार-सेना आयी हुई है। इसे विवेक पूर्वक जान लो।’

भगवान की बात सुन कर सभी श्रावक वीर्यपूर्वक सचेत हो गये। उन वीतराग भिक्षुओं के आगे मार-सेना भाग छूटी और किसी एक का भी बाल बांका नहीं कर पायी।

८. सक्क पञ्चसुत्त

एक समय भगवान मगध में वेदियक पर्वत की इन्द्रसाल-गुहा में विहार कर रहे थे। उस समय देवेन्द्र सक्क तावतिस देवों के साथ गंधर्वपुत्र पञ्चसिख को आगे कर उनके दर्शनार्थ गये।

सक्क ने पञ्चसिख से कहा कि ध्यानमग्न, समाधिस्थ तथागत के पास मेरे

जैसा कोईसहसा नहीं जा सकता। अतः पहले आप जा कर उन्हें प्रसन्न करें। हम आपके पीछे उनके दर्शनार्थ आयेंगे।

इस पर भगवान से न बहुत दूर, न बहुत निकट रह कर पञ्चसिख अपनी बेलुवपण्डु वीणा बजाने लगा और बुद्ध, धर्म, संघ, अरहंत तथा भोग-संबंधी गाथाएं गाने लगा। गाथाओं के पूरा होने पर भगवान ने उससे पूछा तुमने इन्हें कब रचा था। पञ्चसिख ने इसका विवरण दिया।

तत्पश्चात् सक्क भी तावतिस देवों के साथ भगवान के समीप चले आये। सक्क ने भगवान से कहा मैंने अपने से पहले उत्पन्न हुए देवों को यह कहते सुना है कि जब कोई तथागत संसार में उत्पन्न होते हैं तब देवलोक भरने लगते हैं और असुरलोक क्षीण होने लगते हैं। अब मैंने इसे अपनी आंखों से देख लिया है। उन्होंने गोपक देवपुत्र के कथन का हवाला देते हुए बतलाया कि कैसे स्मृति खोये हुए व्यक्ति स्मृति-लाभ कर देवों से भी आगे निकल जाते हैं।

तदनंतर सक्क ने भगवान से अनुमति प्राप्त कर उनसे पूछा कि ऐसा कौनसा बंधन है जिसके कारण सभी प्राणी वैर, दंड, शत्रुता और हिंसाभाव को छोड़ कर वैर-रहित होकर रहना चाहते हुए भी सदा दंड-सहित, शत्रुता और हिंसाभाव से युक्त हो कर ही रहते हैं? भगवान ने बतलाया ये बंधन हैं - ईर्ष्या और मात्सर्य।

फिर ईर्ष्या और मात्सर्य के निदान, समुदय के बारे में पूछे जाने पर भगवान ने कहाये प्रिय और अ-प्रिय के कारण होते हैं और इनके नहीं होने से नहीं होते। प्रिय और अ-प्रिय छंद (चाह) के कारण होते हैं। छंद वितर्क के कारण होता है। वितर्क प्रपंचसंज्ञासंख्या के कारण होता है। फिर भगवान ने सौमनस्य, दौर्मनस्य और उपेक्षा-भाव को लेकर प्रपंचसंज्ञासंख्या के निरोध का मार्ग प्रज्ञप्त किया।

तत्पश्चात् सक्क के प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने प्रातिमोक्ष-संवर, इन्द्रिय-संवर के बारे में बतलाया और यह भी स्पष्ट किया कि सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाले, एक ही शील को मानने वाले, एक ही अभिप्राय वाले क्यों नहीं होते हैं? भगवान ने कहा इसका कारण यह है कि संसार के सभी लोग भिन्न-भिन्न धातु के बने होते हैं, तो जो जीव जिस धातु का बना होता है उसी को हठपूर्वक, दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर लेता है कि यही सच है, बाकी सब झूठ। इसी कारण सभी श्रमण, ब्राह्मण एक रूप नहीं होते।

सक्क ने भगवान के प्रति आभार व्यक्त किया कि आपने बहुत दिनों से चली

आ रही मेरी शंका और दुविधा को दूर कर दिया है। भगवान ने उससे पूछा कि क्या इससे पहले भी तुम्हें कभी ऐसा संतोष, सौमनस्य प्राप्त हुआ था? सक्क ने कहा देवासुर संग्राम के समय देवताओं की जीत होने पर मेरे मन में जो संतोष, सौमनस्य हुआ था वह लड़ाई-झगड़े के संबंध में था - निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, ज्ञान, संबोधि, निर्वाण के लिए नहीं था। अब भगवान का धर्मोपदेश सुन मुझे जो संतोष, सौमनस्य प्राप्त हुआ है, वह लड़ाई-झगड़े के संबंध में नहीं, बल्कि पूर्णतया निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, ज्ञान, संबोधि और निर्वाण के लिए है।

तब देवेन्द्र सक्क ने हाथ से पृथ्वी को छू कर तीन बार प्रीति-वाक्य कहे -

‘नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स!’

सक्क के इस प्रकार कहे-कहते-उसे विरज, विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ - ‘जो कुछ समुदयधर्मा है, वह सब निरोधधर्मा है।’ और अन्य अस्सी हजार देवताओं को भी।

९. महासतिपट्टानसुत्त

एक समय भगवान् कुरु-प्रदेश में कुरुओं के निगम कम्मासधम्म में विहार करते थे। उस समय भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ये जो चार स्मृति-प्रस्थान हैं वे सत्त्वों की विशुद्धि, शोक और क्रंदन का विनाश, दुःख और दौर्मनस्य का अवसान, सत्य की प्राप्ति, निर्वाण का साक्षात्कार - इन सब के लिए अकेला मार्ग है।

चार स्मृति-प्रस्थान हैं - लोलुपता और दौर्मनस्य को दूर कर, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, उद्योगशील हो, काया में कायानुपश्यी हो कर विहरना, और ऐसे ही वेदनाओं में वेदानुपश्यी हो कर, चित्त में चित्तानुपश्यी हो कर और धर्मों में धर्मानुपश्यी हो कर विहरना।

‘कायानुपश्यना’ के लिए भिक्षु किसी निर्जन स्थान पर जा कर पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द जागरूकता बनाये रख, नैसर्गिक तौर पर आने जाने वाले श्वास को जानने का काम शुरू करता है। फिर सारी काया को अनुभव करते हुए, और तदुपरांत काया पर होने वाले उपद्रवों के शांत होने पर, श्वास लेना वा छोड़ना सीखता है। इस प्रकार काया के भीतरी अथवा बाहरी; अथवा भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के भागों में कायानुपश्यना करता हुआ

विहार करता है, काया में उदय अथवा व्यय; अथवा उदय के साथ-साथ व्यय होने वाले धर्मों का अनुपश्यी हो कर विहार करता है। तब 'यह काया है!' - इस पर जागरूकता स्थिर हो जाती है। जितनी देर तक इस प्रकार का केवल ज्ञान, केवल दर्शन बना रहता है उतनी देर तक अनासक्त हो कर विहार करता है और संसार में कुछ भी ग्रहण करने योग्य नहीं रहता। इस प्रकार काया में कायानुपश्यी हो कर विहार करना होता है।

फिर केवल बैठे-बैठे ही नहीं, चलते-फिरते, खड़े रहते, लेटे-लेटे अथवा शरीर की अन्य अवस्थाओं में भी, इन अवस्थाओं को यथाभूत जानते हुए, कायानुपश्यना की जाती है। और फिर इससे भी आगे बढ़ कर हर प्रकार की शारीरिक क्रिया में संप्रज्ञान बनाये रख कर कायानुपश्यना करनी होती है। शरीर के भीतर अशुचि याने प्रतिकूल विषयों को आलंबन बना कर उक्त प्रकार से कायानुपश्यना करनी होती है।

'वेदानुपश्यना' करते समय जैसी भी वेदना अनुभव हो - सुखद, दुःखद, अदुःखद-असुखद, सामिष, निरामिष - उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत् भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान अथवा दर्शन प्राप्त हो - 'यह वेदना है!'

'चित्तानुपश्यना' करते समय जैसी भी चित्त की स्थिति हो - रागयुक्त, रागविहीन; द्वेषयुक्त, द्वेषविहीन; मोहयुक्त, मोहविहीन; इत्यादि - उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत् भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो - 'यह चित्त है!'

'धर्मानुपश्यना' करते समय भी चित्त में जागने वाले धर्मों की जैसी-जैसी स्थिति हो उन्हें प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत् भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो - 'ये धर्म हैं!'

नीवरणों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय नीवरण है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा इसका प्रहाण हो रहा है अथवा प्रहाण हुए-हुए का अब पुनः उद्भव नहीं होता है। (नीवरण हैं:

१. कामच्छंद = कामुकता, २. व्यापाद = द्रोह, ३. स्त्यानमृद्ध = तन-मन का आलस, ४. औद्धत्य-कौकृत्य = उद्वेग-खेद, ५. विचिकित्सा = संदेह।)

उपादान-स्कंधों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय स्कंध उदय हो रहा है अथवा अस्त हो रहा है। (उपादान-स्कंध हैं: १. रूप, २. वेदना, ३. संज्ञा, ४. संस्कार, ५. विज्ञान।)

आयतनों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि यह भीतर का आयतन है, यह बाहर का आयतन है, यह दोनों के संसर्ग से होने वाला संयोजन है, यह अविद्यमान संयोजन की उत्पत्ति है, यह उत्पन्न हुए संयोजन का प्रहाण है और यह प्रहाण हुए-हुए संयोजन का अब अनुद्धव है। (आयतन हैं: १. बाह्य-चक्षु, २. श्रोत्र, ३. घ्राण = नासिका; ४. जिह्वा, ५. काय = त्वक। ६. आभ्यंतर - मन तथा उनके विषय।)

बोध्यंगों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय बोध्यंग है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा भावित हो कर परिपूर्ण हो रहा है। (बोध्यंग हैं: १. स्मृति, २. धर्मविचय, ३. वीर्य, ४. प्रीति, ५. प्रश्रद्धि, ६. समाधि, ७. उपेक्षा।)

आर्य-सत्वों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक, यथाभूत, यह जानना होता है कि यह दुःख है, यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख-निरोध का उपाय है।

तत्पश्चात् भगवान् ने स्पष्ट किया कि दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध और दुःख-निरोध का उपाय - इनसे क्या अभिप्राय है। संक्षेप में पांचों उपादान-स्कंध ही 'दुःख' हैं; बार-बार राग जगाने वाली तृष्णा 'दुःख का समुदय' है; इस तृष्णा का सर्वथा निरोध 'दुःख का निरोध' है; और आर्य अष्टांगिक मार्ग (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि) दुःख-निरोध का उपाय है।

अंत में भगवान् ने प्रज्ञप्त किया कि जो कोई मेरे बतलाये अनुसार इन चार स्मृति-प्रस्थानों की सात वर्ष भावना करे उसे इन दो फलों में से एक की आशा रखनी चाहिए - इसी जन्म में अर्हत्व का साक्षात्कार अथवा उपाधि शेष होने पर अनागामि-भाव। भगवान् ने आगे प्रज्ञप्त किया कि इससे कहीं कम अवधि में भी इस फल की आशा की जा सकती है।

१०. पायासिराजञ्जसुत्त

एक समय आयुष्मान कु मारक ससपएक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसलदेश में सेतव्या नगर के उत्तर की ओर सिंसपा-वन में विहार करते थे। उस समय पायासि राजन्य कोसल-नरेशप्रसेनदि द्वारा प्रदत्त सेतव्या का स्वामी हो कर रहता था।

उन दिनों कु मारक ससपकी ऐसी कीर्ति फैल रही थी कि वे पंडित, मेधावी, बहुश्रुत, मन की बात जानने वाले, अच्छी प्रतिभा वाले, अनुभवी तथा अरहंत हैं। यह मानते हुए कि अरहंतों का दर्शन करना अच्छा होता है, सेतव्या के बहुत से लोग सिंसपा-वन जाने लगे। पायासि राजन्य भी उनके साथ हो लिया।

वहां पहुंच कर पायासि राजन्य ने कु मारक ससपसे कहा कि मैं ऐसे सिद्धांत को मानने वाला हूं कि न तो कोई परलोक होता है, न जीव मर कर पैदा होते हैं और न ही अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल होता है। इसके लिए उसने अनेक तर्क दिये - १. मरे हुएों को कि सीने लौट कर आते नहीं देखा, २. धर्मात्मा आस्तिकों को भी मरने की इच्छा नहीं होती, ३. जीव के निकल जाने पर मृत शरीर का न तो वजन ही कम होता है और न ही जीव को कहीं से निकलते जाते देखा जाता है।

कु मारक ससपने डेर-सारी उपमाएं देकर पायासि राजन्य की इस मिथ्या-दृष्टि को दूर किया। इससे भाव-विभोर हो कर पायासि राजन्य ने कहा मैं भगवान गौतम की शरण जाता हूं, धर्म की भी, भिक्षु-संघ की भी। आज से आप जीवन भर के लिए मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।

इस 'सुत्त' में यह भी समझाया गया है कि दान कैसे देना चाहिए। दान श्रद्धापूर्वक, अपने हाथ से, उत्तम मन से देना चाहिए।

दीघनिकाय भाग - ३

१. पाथिक सुत्त

एक समय भगवान मल्ल देश में अनुपिय नाम के निगम में विहार करते थे। एक दिन भिक्षाटन के लिए जाने से पूर्व वे भार्गव-गोत्र परिव्राजक के यहां चले गये। परिव्राजक ने उनसे पूछा क्या यह सही है कि लिच्छवि-पुत्र सुनक्खत्त ने आपको छोड़ दिया है।

भगवान ने कहा सुनक्खत्त ने मुझे कहा था कि मैं आपको छोड़ता हूं। मैं अब आप के धर्म-विनय याने अनुशासन को नहीं मानता। आप मुझे अलौकिक ऋद्धि-बल नहीं दिखलाते। आप मुझे लोगों में आगे करके उपदेश नहीं देते।

यह सुन कर मैंने उसे ही पूछा था कि क्या मैंने कभी तुझे कहा कि आकर मेरे धर्म को स्वीकार कर, मैं तुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखलाऊंगा, मैं तुझे लोगों में आगे करके उपदेश दूंगा। तूने ही वज्जिगाम में अनेक प्रकार से मेरी, धर्म की तथा संघ की प्रशंसा की थी। अब लोग तुम्हें ही दोष देंगे कि तुम श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ रहे। मेरे ऐसा कहने पर वह आपायिक के समान इस धर्म-विनय से चला गया।

तत्पश्चात् भगवान ने कहा कि सुनक्खत्त के सामने अचेल कोरक्खत्तिय, अचेल कळारमट्टक तथा अचेल पाथिक के ऐसे प्रसंग भी उपस्थित हुए जिनमें इन लोगों के बारे में मैंने जो-जो भविष्यवाणी की थी वह वैसी-की-वैसी ही निकली। यह अलौकिक ऋद्धि-बल ही थे, फिर भी वह यही कहता रहा कि भगवान मुझे अलौकिक ऋद्धि-बल नहीं दिखलाते और वह इस धर्म-विनय से चला गया।

तदनंतर भगवान ने लोगों की इस मान्यता के बारे में प्रकाश डाला कि सृष्टि ईश्वर अथवा ब्रह्मा की बनायी हुई है। उन्होंने बतलाया कि कोई समय ऐसा आता है जब इस लोक का प्रलय हो जाता है। उस काल में भी आभस्सर योनि में जन्मे हुए प्राणी मनोमय, प्रीति-भोजी, स्वयं-प्रभ, अंतरिक्ष-गामी और यशस्वी होकर चिरकाल तक बने रहते हैं। बहुत समय के बाद फिर लोक की उत्पत्ति होती

है। उस समय शून्य ब्रह्म-विमान प्रकट होता है। तब आभस्सर लोक का कोई प्राणी उस लोक से च्युत हो कर इस विमान में उत्पन्न होता है। वह मनोमय, प्रीति-भोजी, स्वयं-प्रभ, अंतरिक्ष-गामी और यशस्वी बना रह कर, बहुत दिनों तक इसमें रहता है। फिर अकेले रह, जी ऊब जाने से दूसरे प्राणियों के आने की कामना करता है। तब आयु अथवा पुण्य के क्षय होने से दूसरे प्राणी भी उस विमान में उत्पन्न होते हैं और मनोमय, प्रीति-भोजी, स्वयं-प्रभ, अंतरिक्ष-गामी और यशस्वी बने रह कर, बहुत दिनों तक वहां टिकते हैं।

तब शून्य ब्रह्म-विमान में पहले उत्पन्न हुआ प्राणी सोचता है कि मैं ही ब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता, निर्माता हूं। मेरे चाहने से ही ये दूसरे प्राणी उत्पन्न हुए हैं। बाद में उत्पन्न हुए प्राणी भी सोचते हैं कि यही ब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता, निर्माता है क्योंकि हमने इसे यहां पर पहले से ही विद्यमान पाया था।

उन बाद में उत्पन्न हुए प्राणियों में से जब कोई प्राणी इस लोक में जन्म लेकर, समाधि का अभ्यास कर, अपने उस पूर्वजन्म-विशेष को स्मरण करता है, परंतु उससे पहले के जन्म को स्मरण नहीं करता, तब ऐसा कहने लगता है कि जो वह ब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता, निर्माता है; जिसने हमें उत्पन्न किया, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अविपरिणामधर्मा है और हम लोग, जो उनसे उत्पन्न हुए; अनित्य, अध्रुव, अल्पायु एवं मरणधर्मा हैं।

इसी प्रकार कितने ही लोग खिड्वापदोसिक, मनोपदोसिक अथवा अधिच्चसमुप्पन्न देवता के आदिपुरुष होने के मत को मानते हैं। ये देवता भी अपनी-अपनी देवकाया छोड़कर इस लोक में उत्पन्न हो, समाधि के अभ्यास द्वारा, अपने पूर्वजन्म-विशेष को स्मरण कर, परंतु उससे पहले के जन्म को स्मरण न कर, गलत धारणा के शिकार हो जाते हैं।

परंतु मैं लोकों की अग्र अवस्था को प्रज्ञा से जानता हूं। मैं इसे तो प्रज्ञा से जानता ही हूं, इससे परे भी प्रज्ञा से जानता हूं, और उस प्रज्ञा से जाने हुए के प्रति आसक्ति नहीं करता हूं, और अनासक्त रह मैं अपने भीतर मुक्ति का अनुभव करता हूं, जिसे हर प्रकार से जान कर तथागत कभी दुःख नहीं पाते हैं।

यह कहने के उपरांत भगवान ने कहा कि कई लोग मुझ पर यह कहने का झूठा दोष लगाते हैं कि जिस समय शुभ विमोक्ष उत्पन्न करके योगी विहार करता है उस समय वह प्रज्ञा से सब कुछ अशुभ ही अशुभ देखता है। वस्तुतः मैं ऐसा

नहीं कहता। मेरा कहना तो यह है कि जिस समय शुभ विमोक्ष उत्पन्न करके योगी विहार करता है उस समय वह प्रज्ञा से सब कुछ शुभ ही शुभ देखता है।

इस पर परिव्राजक ने भगवान से प्रार्थना की कि आप मुझे उस धर्म का उपदेश करें जिससे मैं शुभ-विमोक्ष को उत्पन्न कर विहार कर सकूँ। परंतु भगवान ने कहा कि दूसरे मत वाले, दूसरे विचार वाले, दूसरी रुचि वाले, दूसरे शासन का अनुगमन करने वाले, दूसरे आचार्य वाले लोगों के लिये शुभ-विमोक्ष को उत्पन्न कर विहार करना दुष्कर है।

२. उदुम्बरिक सुत्त

एक समय भगवान राजगह के गिज्जकूट पर्वत पर विहार करते थे। उस समय निग्रोध नाम का परिव्राजक तीन हजार परिव्राजकों की एक बड़ी मंडली के साथ उदुम्बरिका नामक आराम में वास करता था।

एक दिन निग्रोध नाना प्रकार की निरर्थक कथा-कहानियां कहती, शोर मचाती, अपनी मंडली के साथ बैठा था। इतने में भगवान के सन्धान नाम के श्रावक गृहपति वहां आ पहुँचे। गृहपति के साथ संलाप करते हुए निग्रोध ने भगवान के बारे में अपशब्द कहे कि उनकी बुद्धि मारी गयी है, वे सभा से मुँह चुराते हैं, संवाद करने में असमर्थ हैं, इत्यादि।

इतने में भगवान भी वहां पर आ गये। निग्रोध ने उनका स्वागत कर उनसे पूछा कि वह कौन सा धर्म है जिससे आप अपने श्रावकों को विनीत करते हैं, जिससे विनीत हुए-हुए वे आदि-ब्रह्मचर्य के पालन में आशवासन पाते हैं। इस पर भगवान ने कहा कि अन्य मत वाले, अन्य सिद्धांत वाले, अन्य रुचि वाले, अन्य शासन का अनुगमन करने वाले, अन्य आचार्य वाले तुम लोगों को यह समझाना बहुत कठिन है, अतः तुम अपने मत के बारे में ही प्रश्न पूछो।

इस पर निग्रोध ने पूछा कि क्या होने से तप-जुगुप्सा पूरी होती है और क्या होने से पूरी नहीं होती। भगवान ने कहा यदि कोई तपस्वी अपने तप के कारण अपने मन में अहंकार, ईर्ष्या, मात्सर्यादि विकृतियां जगाता है अथवा अपनी मान्यता के प्रति चिपकाव पैदा कर लेता है तो ये उस तपस्वी के उपक्लेश होते हैं और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह इन मामलों में परिशुद्ध बना रहता है।

फिर भगवान ने इससे आगे-से-आगे प्रशंसनीय और सार्थक तपों की जानकारी दी। जैसे -

- * कोई व्यक्ति चार संयमों (चातुर्याम संवर) से सुरक्षित हो जाय अर्थात्, न जीव-हिंसा करे, न क रवाये, न इसमें सहमत हो; और इसी प्रकार चोरी न करने, झूठ न बोलने और पांच कामगुणों में प्रवृत्त न होने के बारे में सजग रहे। फिर प्रव्रज्या को निभाता हुआ, ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ, एकांत में स्मृति और संप्रज्ञान के साथ पांचों नीवरणों को दूर करचित्त के उपक्लेशों को प्रज्ञा से दुर्बल करने के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-युक्त चित्त से सभी दिशाओं में विहार करे।
- * उक्त प्रकार से ब्रह्मविहार करने के बाद अपने पूर्व-जन्मों को स्मरण करने में लगे।
- * उक्त प्रकार से अपने पूर्व-जन्मों को स्मरण करने के अनंतर अपने दिव्य-चक्षु से सत्वों की च्युति और उत्पाद को जानने लगे।

यहां पर भगवान ने कहा कि इतने से ही तप-जुगुप्सा श्रेष्ठ और सार्थक हो जाती है परंतु जिस धर्म में मैं अपने श्रावकों को विनीत करता हूं वह इससे बढ-चढ कर है।

यह सुन कर परिव्राजक बहुत हल्ला करने लगे कि हम तो आचार्य-सहित मारे गये क्योंकि हम लोग इससे अधिक कुछ जानते नहीं।

इस अवसर को उचित जान गृहपति सन्धान ने निग्रोध को याद दिलाया कि तुम तो कहते थे कि भगवान की बुद्धि मारी गयी है, वे सभा से मुँह चुराते हैं, संवाद करने में असमर्थ हैं, इत्यादि। अब तुम क्यों नहीं प्रश्न करके उनको चक्कर खिलाते?

यह सुन कर निग्रोध को अपने कहे पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और इसके लिए भगवान से कहा कि संयम न रखने के मेरे अपराध को क्षमा करें। भगवान ने उसे क्षमा करते हुए कहा कि आर्य-विनय में यह बुद्धिमानी ही समझी जाती है कि व्यक्ति भविष्य में संयम रखने के लिए अपने अपराध को स्वयं स्वीकार कर धर्मानुकूल प्रतिकार करे। उन्होंने उसे यह भी समझाया कि 'भगवान' बुद्ध हो बोध के लिए, दांत हो दमन के लिए, शांत हो शमन के लिए, तीर्ण हो तरण के लिए और परिनिवृत्त हो परिनिर्वाण के लिए धर्मोपदेश करते हैं।

भगवान ने यह भी कहा कि यदि कोई सज्जन, निश्चल, सरल स्वभाव वाला, बुद्धिमान मेरे पास आये, मैं उसे धर्म सिखाऊँ और वह मेरी शिक्षा के अनुसार काम करे, तो जिस उद्देश्य के लिए कुलपुत्र घर से बेघर हो अनुपम ब्रह्मचर्य के अंतिम लक्ष्य को सात वर्ष में ही स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगते हैं वह उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। और सात वर्ष ही क्यों, इससे कहीं कम समय में भी प्राप्त कर सकता है।

भगवान ने निग्रोध को और भी समझाया कि तुम ऐसा मत सोचना कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह अपने चेलों की संख्या बढ़ाने के लिए, तुम्हें अपने उद्देश्य से डिगाने के लिए, तुमसे अपनी आजीविका छुड़वाने के लिए, तुम्हारे मताचार्यों की बुराइयों को दृढ़ करने के लिए अथवा उनकी अच्छाइयों से तुम्हें अलग करने के लिए है। मैं तो चाहता हूँ कि अभी जो तुम्हारा आचार्य है, वही तुम्हारा आचार्य रहे, अभी जो तुम्हारा उद्देश्य है, वही तुम्हारा उद्देश्य रहे, अभी जो तुम्हारी आजीविका है, वही तुम्हारी आजीविका रहे, अभी जो अपने आचार्यों के साथ तुम्हारे अकुशल अथवा कुशल धर्म हैं, वे वैसे के वैसे बने रहें। मेरा धर्मोपदेश तो इसलिए है कि जो अनष्ट बुराइयाँ क्लेशों को उत्पन्न करने वाली, आवागमन की कारणभूत, सभी प्रकार की पीड़ाओं को देने वाली, दुःख-परिणाम वाली, जन्म, जरा और मृत्यु की कारण हैं, उनका नाश हो जाये जिससे कि तुम्हारे क्लेश देने वाले धर्म नष्ट हो जाएँ और शुद्ध धर्म बढ़ें, और तुम प्रज्ञा की पूर्णता और विपुलता को प्राप्त हो, उसे इसी संसार में जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगे।

३. चक्रवर्तिसुत्त

एक समय भगवान मगध के मातुला नामक स्थान पर विहार कर रहे थे। वहाँ पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि अपने आपको अपना द्वीप, अपना आश्रय, बना कर विहार करो; धर्म को अपना द्वीप, अपना आश्रय, बना कर विहार करो; कोई अन्य आश्रय मत देखो। और यह तब संभव हो पाता है जब कोई व्यक्ति स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, उद्योगशील हो, काया में कायानुपशयना, वेदनाओं में वेदनानुपशयना, चित्त में चित्तानुपशयना और धर्मों में धर्मानुपशयना करने वाला हो।

तत्पश्चात् भगवान ने उनको दळ्हेनेमि नामक चक्रवर्ती राजा का वृत्तांत

सुनाया। सात रत्नों से युक्त वह इस पृथ्वी को दंड और शस्त्र के बिना ही धर्म से जीत कर इस पर राज्य करता था। समय आने पर वह अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमार को राज्य-भार सौंप कर प्रव्रजित हो गया। कुमार ने भी धर्मानुसार शासन किया और चक्रवर्ती राजा हुआ। इसके बाद के छह शासक भी चक्रवर्ती राजा हुए। ये सभी धर्म की रक्षा करने वाले होकर चक्रवर्ती-व्रत का पालन किया करते थे।

इनमें से अंतिम राजा ने बाकी सब कुछ तो किया परंतु निर्धनों को धन नहीं दिया जिससे निर्धनता बहुत बढ़ गयी और लोग एक दूसरे की वस्तुएं चुराने लगे। जब चेतावनी देने पर भी लोग इससे विरत नहीं हुए तब राजा ने तेज हथियारों से उनका सिर कटवाना शुरू किया। फिर राजा की देखा-देखी लोग भी तेज-तेज हथियार बनवाने लगे जिससे खून-खराबा बढ़ने लगा। इससे उनकी आयु भी घटने लगी, वर्ण भी घटने लगा। शनैः शनैः झूठ बोलना, चुगली खाना, स्त्रियों से दुराचार, कठोर वचन, निरर्थक प्रलाप, अनुचित लोभ, हिंसाभाव, मिथ्यादृष्टि, माता-पिता के प्रति गौरव का अभाव, श्रमणों-ब्राह्मणों और परिवार के बड़े-बूढ़ों के प्रति श्रद्धा का अभाव – इन बातों को प्रोत्साहन मिलने लगा। इनसे आयु और वर्ण का भी, उत्तरोत्तर हास होने लगा।

अब एक ऐसा समय आयेगा जब सदाचार पूरी तरह लुप्त हो जायेगा और कदाचार खूब बढ़ जायेगा। माता-पिता का सम्मान करने वालों की प्रशंसा होने लगेगी। माता, मौसी, मामी, गुरुपत्नी या बड़े लोगों की स्त्रियों का कुछ विचार न रहेगा। लोगों में एक दूसरे के प्रति बड़ा तीव्र क्रोध, प्रतिहिंसा, दुर्भावना पैदा होगी और वे तीक्ष्ण शस्त्रों से – ‘यह मृग है, यह मृग है’ – इस भाव से एक दूसरे के प्राण-लेवा हो जायेंगे।

ऐसी अवस्था आ जाने पर कुछ लोगों के मन में यह होगा कि पाप-कर्म करने से हम इस प्रकार के घोर जाति-विनाश को प्राप्त हुए हैं, अतः पुण्य करना चाहिए। हम लोग जीव-हिंसा से विरत हों। इससे उनकी आयु भी बढ़ने लगेगी, वर्ण भी। इससे वे और कुशल कर्म करने के लिए प्रोत्साहित होंगे, यथा चोरी से विरत रहना, व्यभिचार से विरत रहना, झूठ बोलने से विरत रहना, चुगली खाने से विरत रहना, कठोर वचन से विरत रहना, निरर्थक प्रलाप से विरत रहना, अनुचित लोभ, हिंसाभाव और मिथ्यादृष्टि को छोड़ देना और माता-पिता के प्रति गौरव का भाव तथा श्रमणों-ब्राह्मणों और परिवार के बड़े-बूढ़ों के प्रति श्रद्धा का

भाव अपनाना। इससे उनकी आयु और वर्ण की भी, उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जायेगी।

उस समय जम्बु-द्वीप अत्यंत समृद्ध और संपन्न होगा। उसमें सङ्घ नाम का चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा जो इस पृथ्वी को दंड और शस्त्र के बिना ही धर्म से जीत कर इस पर अधिष्ठित होगा। उस समय मेत्तेय्य नाम के भगवान, अरहंत, सम्यक संबुद्ध संसार में उत्पन्न होंगे। वे भी देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण सहित, देव-मनुष्य-युक्त इस लोक को स्वयं जान और साक्षात्कार कर उपदेश देंगे और अर्थपूर्ण, विशद, केवल परिपूर्ण और परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रज्ञप्त करेंगे। राजा सङ्घ भी घर-बार छोड़ कर, उनके पास प्रव्रजित हुए, अ-प्रमत्त, संयमी और आत्म-निग्रही हो, विहार करते-करते, उसी जन्म में ब्रह्मचर्य की चरम उपलब्धि कर लेंगे।

इसके पश्चात भगवान ने फिर एक बार भिक्षुओं को स्वावलंबी बनने का उपदेश दिया, और यह भी समझाया कि -

- * भिक्षु, इच्छा होने पर, चार ऋद्धिपादों (छंद, वीर्य, चित्त, मीमांसा) की भावना करने से अपनी आयु कल्प भर या इससे कुछ अधिक, कर सकता है - यही भिक्षु की 'आयु' होती है।
- * जब भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष के संयम से संयत होकर विहार करता है, आचार-विचार से युक्त होता है, थोड़े भी बुरे कर्म से भय खाता है, नियमों (शिक्षापदों) के अनुसार आचरण करता है - यही उसका 'वर्ण' होता है।
- * जब भिक्षु प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है - यही उसका 'सुख' होता है।
- * जब भिक्षु मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा-भरे चित्त से सभी दिशाओं में विहार करता है - यही उसका 'भोग' होता है।
- * जब भिक्षु आस्रवों (चित्त-मलों) के क्षय हो जाने से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जन्म में जान कर, साक्षात्कार कर विहार करता है - यही उसका 'बल' होता है।

४. अगञ्जसुत्त

एक समय भगवान सावली में पुब्वाराम में विहार करते थे। उस समय वासेट्ट और भारद्वाज नाम के दो ब्राह्मण प्रव्रज्या लेने की दृष्टि से भिक्षुओं के साथ परिवास करते थे।

एक दिन भगवान ने वासेट्ट से पूछा कि तुम ब्राह्मण कुल से प्रव्रज्या लेने के लिए आये हो। क्या इस कारण ब्राह्मण लोग तुम्हारी निंदा अथवा परिहास नहीं करते हैं?

वासेट्ट ने कहाये लोग कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए पुत्र, ब्रह्मजात, ब्रह्मनिर्मित तथा ब्रह्मदायाद हैं। ये मुंडे श्रमण नीच, कृष्ण, भ्रष्ट और ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हुए हैं। यह उचित नहीं है कि तुम लोग श्रेष्ठ वर्ण को छोड़ कर नीच वर्ण के हो जाओ। इस प्रकार ये ब्राह्मण लोग हमारी निंदा अथवा परिहास करते रहते हैं।

इस पर भगवान ने कहाये लोग पुरानी बातों को भूल जाने के कारण ही ऐसा कहते हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। इन सभी में कृष्ण और शुक्ल धर्मों को करने वाले – दोनों प्रकार के लोग पाये जाते हैं। तो ब्राह्मण यह कैसे कह सकते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं? विद्वान लोग ऐसा नहीं मानते, क्योंकि इन्हीं चार वर्णों में जो भिक्षु अरहंत, क्षीणाश्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, शिथिल भव-बंधन वाला और सर्वोत्कृष्टज्ञान के कारण विमुक्त हो जाता है, वह सभी से आगे बढ़ जाता है।

भगवान ने आगे समझाया कि धर्म ही मनुष्य में श्रेष्ठ है। जिस किसी की तथागत में अटूट श्रद्धा होती है, वह किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसार में अन्य किसी से भी डिगाया नहीं जा सकता और उसका यह कहना ठीक होता है कि मैं भगवान के मुख से उत्पन्न, धर्म से उत्पन्न, धर्म-निर्मित और धर्म-दायाद पुत्र हूँ। यह इसलिए, क्योंकि धर्म-काय, ब्रह्म-काय, धर्म-भूत, ब्रह्म-भूत – ये तथागत के ही नाम हैं।

तत्पश्चात् भगवान ने प्रलय के बाद सृष्टि के क्रमिकविकास और प्राणियों की क्रमिक अवनति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। प्राणियों के नैतिक पतन का

उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जब स्थिति यहां तक बिगड़ गयी कि लोगों ने धान के खेतों का बँटवारा कर इनके इर्द-गिर्द मेड़ बांध दी, तब कोई-कोई लोभी सत्व अपने भाग को बचा कर दूसरे के भाग को चुराने लगे। कई बार चेतावनी देने पर भी जब इस प्रवृत्ति में कोई सुधार नहीं हुआ तब लोगों ने हाथ से, ढेले से, लाठी से मारामारी शुरू कर दी। उसी के बाद से चोरी, निंदा, मिथ्या-भाषण और दंड-कर्म होने लगे।

तब प्राणियों को अहसास हुआ कि हम में पाप जागा है जैसा कि हम चोरी, निंदा, मिथ्या-भाषण और दंड-कर्म करते हैं। अतः हम क्यों न एक ऐसे प्राणी का चयन करें जो सचमुच क्रोध करने योग्य बात पर क्रोध करे, निंदनीय कर्मों की निंदा करे और निकालने योग्य को निकाल दे। इसके लिए हम उसे अपने धान में से हिस्सा दें।

तत्पश्चात् उन प्राणियों ने इस काम के लिए अपने में से सुंदर, सुरूप, प्रासादिक और महाशक्तिशाली व्यक्ति का चयन कर लिया जो ठीक से उचितानुचित का अनुशासन करने लगा और लोग उसे धान का अंश देने लगे। महाजनों द्वारा सम्मत होने से उसका नाम 'महासम्मत' पड़ा, क्षेत्रों का अधिपति होने से उसका नाम 'क्षत्रिय' पड़ा और धर्म से दूसरों का रंजन करने से उसका नाम 'राजा' पड़ा।

तब उन्हीं प्राणियों में से किन्हीं-किन्हींके मन में यह हुआ कि हम में पाप जागा है जैसा कि हम चोरी, निंदा, मिथ्या-भाषण और दंड-कर्म करते हैं। अतः हम पाप करना छोड़ दें। उन लोगों ने पाप करना छोड़ (बाह) दिया, इससे उनका नाम 'ब्राह्मण' पड़ा। वे जंगल में पर्णकुटी बना कर वहां ध्यान करते रहते थे, इससे उनका नाम 'ध्यायक' पड़ा। इन्हीं में से कुछ लोग ध्यान पूरा न कर सकने के कारण ग्राम या निगम के पास आकर ग्रंथ बनाते हुए रहने लगे। ध्यान न करने के कारण इनका नाम 'अध्यायक' पड़ा। उस समय ऐसा व्यक्ति हीन समझा जाता था, आज वह श्रेष्ठ समझा जाता है।

उन्हीं प्राणियों में से कितने ही मैथुन-कर्म करके अलग-अलग कामों (विष्वक्कर्मार्त) में लग गए। इससे उनका नाम 'वैश्य' पड़ा। बचे हुए जो प्राणी क्षुद्र आचार वाले थे, वे 'शूद्र' कहलाए।

क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र – इन चार मंडलों से ही श्रमण-मंडल की उत्पत्ति हुई। परंतु इहलोक तथा परलोक में मनुष्यों में धर्म ही श्रेष्ठ है।

भले ही कोई क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, या वैश्य, या शूद्र, या श्रमण, वह काया, वाणी और मन से दुराचार कर, मिथ्या-दृष्टि वाला हो, मृत्यु के उपरांत नरक में पैदा होता है; काया, वाणी और मन से सदाचार कर, सम्यक दृष्टि वाला हो, मृत्यु के उपरांत स्वर्ग में पैदा होता है; काया, वाणी और मन से दोनों प्रकार के कर्म कर, मिश्रित दृष्टि वाला हो, मृत्यु के उपरांत सुख-दुःख दोनों भोगता है। और यदि वह सैंतीस बोधिपक्षीय धर्मों की भावना करे तो इसी लोक में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

चारों वर्णों में जो भिक्षु अरहंत, क्षीणाश्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, शिथिल भव-बन्धन वाला और सर्वोत्कृष्टज्ञान के कारण मुक्त हो जाता है, वही उनमें श्रेष्ठ कहलाता है। धर्म ही मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है – इहलोक में भी, परलोक में भी।

‘गोत्र लेकर चलने वाले लोगों में क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है; विद्या और आचरण से युक्त, देवों वा मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।’

५. सम्पसादनीयसुत्त

एक समय नाळन्दा के पावारिक आम्रवन में भगवान के विहार करते समय सारिपुत्त ने उनसे कहा कि ‘संबोधि’ (परम ज्ञान) में आप से बढ़ कर न कोई हुआ है, न होगा, न है।

इसके लिए भगवान ने उन्हें ताड़ना दी कि जब तुम्हें न तो अतीत के बुद्धों का ज्ञान है, न अनागत बुद्धों का और न तुम वर्तमान बुद्ध के बारे में ही पूरी तरह जानते हो तो फिर मेरे बारे में ऐसा परम उदार सिंहनाद क्यों?

इस पर सारिपुत्त ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि भले सभी बुद्धों का मुझे चेतःपरिज्ञान नहीं है, किन्तु सभी की धर्म-समानता मुझे विदित है। अतीत काल के बुद्धों ने पांचों नीवरणों को दूर कर, प्रज्ञा द्वारा चित्त के मैल हटा, चारों स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को सु-प्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगों की यथार्थ से भावना कर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक संबोधि को प्राप्त किया था। भविष्य काल में भी बुद्ध ऐसे

ही सम्यक संबोधि प्राप्त करेंगे। और आप भगवान ने भी इसे इसी तरह प्राप्त किया है।

तदनंतर सारिपुत्त ने बुद्ध की विशेषताओं का उल्लेख किया -

- * यह भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, इनका धर्म अच्छी तरह आख्यात किया हुआ है, इनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।
- * ये चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रिय, पांच बल, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग - इन कुशलधर्मों का उपदेश देते हैं।
- * ये चक्षु एवं रूप, श्रोत्र एवं शब्द, घ्राण एवं गंध, रसना एवं रस, काया एवं स्पर्श, और मन एवं धर्म - इन आयतन-प्रज्ञितियों का उपदेश करते हैं।
- * ये चार प्रकार से प्राणियों के गर्भ-प्रवेश के बारे में उपदेश करते हैं।
- * ये चार प्रकार की आदेशना-विधि का धर्मोपदेश करते हैं।
- * ये चार प्रकार की दर्शन-समाप्तियों के बारे में बतलाते हैं।
- * ये पुद्गलप्रज्ञप्ति-विषयक उपदेश करते हैं।
- * ये प्रधानों के बारे में उपदेश करते हैं।
- * ये चार प्रकार की प्रतिपदा के बारे में उपदेश करते हैं।
- * ये वाचिक आचरण के बारे में धर्मोपदेश करते हैं।
- * ये शील-संबंधी आचरण के बारे में धर्मोपदेश करते हैं।
- * ये सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी तथा अरहंत - इनसे संबंधित अनुशासन-विधि का उपदेश करते हैं।
- * ये परपुद्गलविमुक्तिज्ञान को उपदेशते हैं।
- * ये तीन प्रकार के शाश्वत-वादों को लेकर धर्मोपदेश करते हैं।
- * ये अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों को आकार और नाम के साथ स्मरण करते हैं और सत्त्वों की च्युति तथा उत्पत्ति के बारे में भी धर्मोपदेश करते हैं।
- * ये ऋद्धिविध (दिव्य शक्तियों) के बारे में धर्मोपदेश करते हैं।

तत्पश्चात् भगवान् ने सारिपुत्त के इस कथन को धर्मानुकूल बतलाया कि अतीत कालमें जो अरहंत सम्यक संबुद्ध थे वे संबोधि में भगवान् के बराबर थे और जो अनागत कालमें होंगे वे भी उनके बराबर होंगे। उन्होंने यह भी प्रज्ञप्त कि या कि एक ही लोक धातु में एक ही समय दो अरहंत सम्यक संबुद्ध नहीं हो सकते।

भगवान् ने सारिपुत्त से कहा तुम भिक्षु-भिक्षुणियों तथा उपासक-उपासिकाओं को यह धर्मोपदेश देते रहो। इससे जिन अज्ञान व्यक्तियों को तथागत के बारे में कोई संशय अथवा संदेह होगा वह दूर हो जायेगा।

सारिपुत्त द्वारा इस प्रकार भगवान् के सम्मुख अपना संप्रसाद (श्रद्धाभाव) व्यक्त करने के कारण इस उपदेश का नाम 'सम्प्रसादनीय' पड़ा।

६. पासादिक सुत्त

एक समय भगवान् शाक्य-देश में वेधज्जा नामक शाक्यों के अम्बवन प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय निर्ग्रथ नाटपुत्त कीपावा में हाल ही में मृत्यु हुई थी। उनके मरने पर निर्ग्रथों में फूट पड़ गयी और धर्म-विनय को लेकर आपस में वाग्युद्ध होने लगा। उनके गृहस्थ शिष्य भी धर्म में अन्यमनस्क हो खिन्न और विरक्त रहने लगे।

चुन्द नाम के व्यक्ति से यह समाचार जान कर आयुष्मान् आनन्द उसे अपने साथ ले कर भगवान् के पास गये और उन्हें भी इसकी जानकारी दी। भगवान् ने कहा जहां शास्ता सम्यक संबुद्ध नहीं होता, धर्म दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, पार न लगाने वाला, शांति न पहुँचाने वाला होता है और उस धर्म में श्रावक धर्मानुसार मार्गारूढ़ होकर विहार नहीं करते, वहां शास्ता की भी निंदा होती है, धर्म की भी, श्रावक की भी।

इस समय लोक में मैं अरहंत, सम्यक संबुद्ध, शास्ता उत्पन्न हुआ हूं, धर्म स्वाख्यात, सुप्रवेदित, पार लगाने वाला, शांति पहुँचाने वाला है; और मेरे श्रावक सद्धर्म का आशय समझते हैं और उनका ब्रह्मचर्य सांगोपांग तथा सब तरह से परिपूर्ण है। मेरा यह ब्रह्मचर्य समृद्ध, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, विशाल और देवों तथा मनुष्यों में सु-प्रकाशित है।

मैंने स्वयं जान कर जिन धर्मों का उपदेश किया है उनका सभी को मिलजुल

कर संगायन करना चाहिए। उनमें विवाद नहीं करना चाहिए। ये धर्म हैं – चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रिय, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग। मेरा धर्मोपदेश ऐहलौकिक और पारलौकिक – दोनों ही आस्रवों के संवर और नाश के लिए होता है।

सुखोपभोग दो प्रकार के होते हैं – एक वे जो निकृष्ट, मूढ़ों द्वारा सेवित, अनर्थयुक्त होते हैं जिनका प्रयोजन न निर्वेद, न विराग, न निरोध, न शान्ति, न अभिज्ञा, न संबोधि और न निर्वाण होता है; दूसरे वे जो एकान्त-निर्वेद, विराग, निरोध, शान्ति, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होते हैं। पहली प्रकार के सुखोपभोग हैं – जीवों का वध कर, चोरी कर, झूठ बोल, पांच कामगुणों से सेवित हो आनंद मनाना। दूसरी प्रकार के सुखोपभोग हैं – चारों ध्यानों को प्राप्त कर विहार करना। इसके चार फल हो सकते हैं – १. तीन संयोजनों के नाश से अविनिपातधर्मा, नियत संबोधि-परायण सोतापन्न होना; २. तीन संयोजनों के नाश के अतिरिक्त राग, द्वेष और मोह के दुर्बल हो जाने से सकदागामी होना; ३. पांच अवरभागीय संयोजनों के नष्ट हो जाने से औपपातिक देवता हो वहीं निर्वाण पा लेना; और ४. आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को यहीं स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार करना।

जानन-हार, देखन-हार, अरहंत, सम्यक संबुद्ध अपने श्रावकों को जो धर्म-देशना देते हैं वह यावज्जीवन अनुल्लंघनीय रहती है, जैसे नीचे तक अच्छी तरह गड़ा हुआ इंद्रकील अचल और दृढ़ होता है। जो भिक्षु ब्रह्मचर्य को पूरा कर, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, सांसारिक बंधनों से मुक्त, क्षीणाश्रव, अरहंत हो जाते हैं वे नौ बातों के अयोग्य हो जाते हैं – १. जान बूझ कर जीव-हिंसा करना; २. चोरी करना; ३. मैथुन-सेवन; ४. जान बूझ कर झूठ बोलना; ५. गृहस्थ-काल के सांसारिक भोगों को जोड़ना-बटोरना; ६. राग का मार्ग अपनाना; ७. द्वेष का मार्ग अपनाना; ८. मोह का मार्ग अपनाना; ९. भय का मार्ग अपनाना।

तथागत अतीत, अनागत और प्रत्युत्पन्न धर्मों के विषय में कालोचित वक्ता, सत्य-वक्ता, अर्थवादी, धर्मवादी, विनयवादी होते हैं। उनको वह सब मालूम रहता है जो देवताओं, मार, ब्रह्मा सहित लोक की देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण-सहित जनता ने देखा, सुना, पाया, जाना, खोजा, मन से विचारा होता है। जिस रात्रि को तथागत अनुपम सम्यक संबोधि प्राप्त करते हैं

और जिस रात्रि को उपाधि-रहित परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं, इन दो घटनाओं के बीच में जो कुछ कहते हैं, जो निर्देश देते हैं, वह सब वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं। इसीलिए तथागत यथावादी तथाकारी और यथाकारी तथावादी होते हैं।

तत्पश्चात् भगवान ने 'अव्याकृत' और 'व्याकृत' विषयों की चर्चा करते हुए कहा कि वही विषय व्याकरणीय (विवेचन-योग्य) होते हैं जो अर्थोपयोगी, धर्मोपयोगी, ब्रह्मचर्योपयोगी अथवा एकान्त-निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, ज्ञान, संबोधि, निर्वाण के लिए हों, जैसे - 'यह दुःख है', 'यह दुःख का समुदय है', 'यह दुःख का निरोध है', 'यह दुःख-निरोध का उपाय है'।

तदुपरांत उन्होंने पूर्वांत और अपरांत दृष्टियों की चर्चा करते हुए कहा कि जो लोग केवल अपनी दृष्टि को सच और बाकी सब को झूठ बतलाते हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हूँ क्योंकि ऐसे मामलों में अलग प्रकार से सोचने वाले लोग भी होते हैं। इस प्रज्ञप्ति में मैं किसी को अपने समान भी नहीं देखता, अपने से बढ़ कर कहाँ? बल्कि प्रज्ञप्ति में मैं ही बढ़-चढ़ कर हूँ। इन सभी दृष्टियों को दूर करने के लिए मैंने चार स्मृति-प्रस्थान प्रज्ञप्त किये हैं - स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, उद्योगशील हो, काया में कायानुपशयना करना, वेदनाओं में वेदानुपशयना करना, चित्त में चित्तानुपशयना करना, धर्मों में धर्मानुपशयना करना।

७. लक्षणसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि महापुरुष के बत्तीस शरीर लक्षण होते हैं। इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति की दो ही गतियाँ होती हैं, कोई अन्य नहीं। यदि वह घर में रहता है तो धार्मिक, धर्म-राजा, चारों ओर विजय पाने वाला, लोगों की भलाई का संरक्षक, सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा होता है। वह सागर-पर्यंत इस पृथ्वी को दंड और शस्त्र के बिना ही धर्म से जीत कर इस पर प्रतिष्ठित होता है। यदि वह घर से बे-घर हो कर प्रव्रजित होता है तो संसार के आवरण को हटाने वाला अरहंत, सम्यक संबुद्ध होता है।

तत्पश्चात् भगवान ने बत्तीस महापुरुष-लक्षणों का विवरण देते हुए कहा कि इन लक्षणों को बाहर के ऋषि भी जानते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि किस-किस कर्म के करने से किस-किस लक्षण का लाभ होता है।

तदनंतर भगवान ने यह स्पष्ट कि याकि तथागत द्वारा अपने पूर्व के जन्मों में मनुष्य का जीवन बिताते हुए किस-किस प्रकार के उत्तम कर्म किये जाते हैं जिनके फलस्वरूप वर्तमान जीवन में महापुरुष-लक्षण प्रकट हो जाते हैं, और ऐसे लक्षणों वाला व्यक्ति यदि चक्रवर्ती राजा बने तो उसे किस-किस बात की उपलब्धि होती है और यदि वह सम्यक संबुद्ध बने तो उसे क्या-क्या उपलब्धि होती है।

तथागत द्वारा अपने पूर्व-जन्मों में किये जाने वाले कर्म ऐसे होते हैं, जैसे – सदाचार का जीवन जीना, बहुत लोगों को सुख पहुँचाना, जीव-हिंसा से विरत रहना, उत्तम भोजन का दान, लोगों का परस्पर मेल कराना, अर्थ-धर्म-युत वाणी, श्रद्धापूर्वक कलाएं सीखना, हित-जिज्ञासा, अक्रोध, वस्त्र-दान, बिछुड़े हुआओं का मेल कराना, योग्य-अयोग्य पुरुष का विचार, परहित-आकांक्षा, दूसरों को न सताना, प्रिय-दृष्टि, कुशल कर्मों में अगुआपन, सच्ची प्रतिज्ञा करना, कलह मिटाना, मीठा बोलना, भावपूर्ण वचन, सम्यक आजीविका।

८. सिङ्गलसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में वेलुवन के कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उन दिनों एक तरुण गृहस्थ सिङ्गल ने उनसे यह जानना चाहा कि आर्य-विनय में छह दिशाओं को नमस्कार कैसे किया जाता है।

इस पर भगवान ने कहा जब आर्य-श्रावक के चार कर्म-क्लेश नष्ट हो गये होते हैं, वह चार स्थानों से पाप-कर्म नहीं करता और छह अपाय-मुखों का सेवन नहीं करता – तब वह चौदह पापों से दूर हो, छह दिशाओं को प्रतिच्छादित कर दोनों लोकों की विजय में लग जाता है और मरने पर स्वर्ग-लाभ करता है।

चार कर्म-क्लेश हैं – जीव-हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्य-भाषण।

पाप-कर्म न करने वाले चार स्थान हैं – छंद, द्वेष, मोह और भय के रास्ते न जाना।

छह अपाय-मुख (विनाश के हेतु) हैं – नशे का सेवन, संध्या-समय चौरस्ते की सैर, नाच-तमाशे में लगना, जुआ और दूसरी मस्तिष्क बिगाड़ने वाली प्रवृत्तियों में लगना, बुरे मित्र की मित्ताई और आलस्य में फँसना।

तत्पश्चात् भगवान ने बतलाया कि इन चार को मित्र के रूप में अ-मित्र

जानना चाहिए – परधनहारक, बातूनी, खुशामदी तथा विनाश में सहायक। और इन चार मित्रों से सुहृद जानना चाहिए – उपकार करने वाला, सुख-दुःख में समान भाव रखने वाला, अर्थ की प्राप्ति का उपाय बतलाने वाला और अनुकंपा करने वाला।

तदुपरांत भगवान ने छह दिशाओं के प्रतिच्छादन के बारे में समझाया – माता-पिता को पूर्व-दिशा, आचार्यों को दक्षिण-दिशा, पुत्र-स्त्री को पश्चिम-दिशा, मित्र-अमात्यों को उत्तर-दिशा, दास-कर्मकरों को नीचे की दिशा और श्रमण-ब्राह्मणों को ऊपर की दिशा जानना चाहिए।

भगवान ने यह भी प्रज्ञप्त कि याकि इन लोगों की सेवा कि तने-कि तनेप्रकार से की जानी चाहिए और सेवा पा करये लोग सेवा करनेवाले पर कि स-कि सप्रकार से अनुकंपा करने लगते हैं। ऐसा होने पर विभिन्न दिशाएँ प्रच्छन्न (ढँकी हुई), क्षमयुक्त और निरापद हो जाती हैं।

९. आटानाटियसुत्त

एक समय भगवान राजगह के गिञ्जकूट पर्वत पर विहार करते थे। उस समय चारों दिशाओं के अभिपालक महाराजा (वेस्सवण, धतरट्ट, विरुळ्हक और विरुपक्ख) अपने यक्षों, गंधर्वों, कूष्मांडों तथा नागों की विशाल सेना के साथ उनके पास गये।

वहां पर वेस्सवण महाराज ने भगवान से कहा कि बहुत से यक्ष आपसे प्रसन्न हैं और बहुत से अ-प्रसन्न। आप जीव-हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलने और नशे का सेवन करने से विरत रहने का धर्मोपदेश करते हैं। जो-जो यक्ष इनसे विरत नहीं रहते हैं, उनको आपका धर्मोपदेश सुहाता नहीं है। आपके श्रावक जंगलों में एकान्तवास करते हैं। वहां पर बड़े-बड़े यक्ष भी निवास करते हैं, जो आपके इस प्रवचन से अ-प्रसन्न हैं। उनको प्रसन्न रखने के लिए भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों, उपासिकाओं की रक्षा, अ-विहिंसा और सुख-विहार के लिए आटानाटिय रक्षा (अनुमोदनार्थ) ग्रहण करें।

भगवान की मौन-स्वीकृति पा कर वेस्सवण महाराज ने 'आटानाटिय रक्षा' कही।

इसके अंतर्गत उन्होंने सर्वप्रथम भगवान विपस्सी से लेकर शाक्यपुत्र गोतम

तक सातों बुद्धों को नमस्कार किया। तत्पश्चात् चारों महाराजाओं और उनके प्रभुत्व का वर्णन किया। तदुपरांत रक्षा न मानने वाले यक्षों को प्राप्त होने वाले दंड का उल्लेख किया और अंततः यह भी बतलाया कि यदि कोई अ-मनुष्य द्वेषयुक्त चित्त से श्रावकों के पीछे लग जाये तो उस समय किन यक्षों, महायक्षों, सेनापतियों, महासेनापतियों को टेर देनी चाहिए।

तत्पश्चात् चारों महाराजा और इसी प्रकार यक्ष भी अपने-अपने आसन से उठ कर और भगवान का अभिवादन कर वहां से अंतर्धान हो गये।

रात बीत जाने पर भगवान ने भिक्षुओं को भी उपरोक्त प्रसंग की जानकारी दी और उनसे कहा आटानाटिय रक्षा को सीखो, इसमें कुशल हो जाओ, इसे धारण करो। आटानाटिय रक्षा भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों और उपासिकाओं के बचाव, अभिरक्षण, अविहिंसा एवं सुख-विहार के लिए सार्थक है।

१०. संगीतिसुत्त

एक समय भगवान भिक्षुओं के महासंघ के साथ मल्ल-देश में चारिका करते हुए पावा-नामक नगर में पहुँचे। वहां पर नगरवासियों के अनुरोध पर भगवान ने उनके द्वारा हाल ही में बनाये गये सन्थागार (प्रजातंत्र भवन) में आकर धार्मिक कथा सुना कर उन्हें संप्रहर्षित किया।

नगरवासियों के चले जाने के पश्चात् भगवान ने भिक्षु-संघ को धार्मिक कथा कहने के लिए आयुष्मान सारिपुत्त से कहा और स्वयं विश्राम करने के लिए लेट गये।

आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि निर्ग्रथ नाटपुत्त ने पावा में अभी-अभी प्राण छोड़े हैं और तभी से निर्ग्रथों में फूट पड़ गयी है। वे एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगा रहे हैं कि तुम धर्म-विनय को नहीं जानते, तुम मिथ्यारूढ़ हो, तुम्हारा कथन अर्थवान नहीं है, तुम पहले कहने वाली बात को पीछे कहते हो और पीछे कहने वाली बात को पहले, तुम्हारा वाद उल्टा है, इत्यादि-इत्यादि। इसका कारण यह है कि नाटपुत्त द्वारा प्रतिपादित धर्म दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, अ-नैर्याणिक, अनुपशम-संवर्तनिक, अ-सम्यक-संबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा-रहित और आश्रय-रहित था। परंतु हमारे भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म स्वाख्यात (अच्छी प्रकार बतलाया गया),

सु-प्रवेदित (ठीक प्रकार से प्रकट किया गया), नैर्याणिक (दुःख से पार ले जाने वाला), उपशम-संवर्तनिक (शांति-दायक), सम्यक-संबुद्ध-प्रवेदित (सम्यक संबुद्ध द्वारा प्रकट किया गया) है। इसे सभी को समान रूप से संगायन करना चाहिए, विवाद नहीं करना चाहिए, जिससे यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो, बहुत लोगों के हित-सुख के लिए हो, लोक पर अनुकंपा करने वाला हो, देवताओं तथा मनुष्यों के भले और हित-सुख के लिए हो।

तत्पश्चात् आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्मों को एक से लेकर दस तक की संख्या में वर्गीकृत करते हुए भिक्षुओं को उनका संगायन करते रहने और उनमें विवाद न करने के लिए कहा जिससे ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो। आयुष्मान सारिपुत्त ने बार-बार इस बात को दोहराया है कि इन धर्मों का भली प्रकार आख्यान इनके जानन-हार, देखन-हार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध ने किया है।

११. दसुत्तरसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ चम्पा में गगगरा पुष्करिणी के तीर पर विहार कर रहे थे। वहां पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उन भिक्षुओं को आमंत्रित कर उन्हें सब ग्रंथियों का विमोचन करने वाले 'दसुत्तर' धर्म का बखाना किया जिससे कि वे अपने-अपने दुःखों का अंत कर निर्वाण-लाभ कर सकें।

आयुष्मान सारिपुत्त ने प्रज्ञप्त किया है कि 'दसुत्तर' धर्मों में कौन-कौनसे धर्म उपकारक, भावनीय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, हानभागीय, विशेषभागीय, दुष्प्रतिवेध्य, उत्पादनीय, अभिज्ञेय अथवा साक्षात्कार किये जाने के योग्य हैं।

ये सभी धर्म वास्तविकता पर आधारित, तथ्यपूर्ण, यथार्थ और भगवान तथागत द्वारा सम्यक प्रकार से अपनी बोधि द्वारा जाने गये हैं।

मज्झिमनिकाय भाग - १

१. मूलपरियायवग्ग

१. मूलपरियायसुत्त

एक समय भगवान उक्कट्टा के सुभगवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समस्त धर्मों के मूल का उपदेश दिया। उन्होंने कहा -

“इस संसार में पृथग्जन पृथ्वी को पृथ्वी के तौर पर जानता है, और इसे ऐसा जानकर इसको मानता है, इसमें मानता है, इससे मानता है, ‘यह मेरी है’ - ऐसा मानता है और इसका अभिनंदन करता है। वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि उसे पूरी सच्चाई ज्ञात नहीं है।

“ऐसा व्यक्ति जैसा पृथ्वी के बारे में जानता है, वैसा ही जल, अग्नि, वायु, भूत (प्राणी), देव, प्रजापति, ब्रह्मा, आभास्वर, शुभकृत्स्न, वेहप्फल, अभिभू, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिं चन्त्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन, दृष्ट, श्रुत, मुत (घायित, सायित, फुसित), विज्ञात, एकत्व, नानात्व, सर्व और निर्वाण के बारे में जानता है।

“ऐसे ही वह भिक्षु भी जो अभी शैक्ष्य है, अर्हत नहीं हुआ है, सर्वोत्कृष्ट योगक्षेम की तलाश में विहरता है, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि को उक्त प्रकार से सन्देह के साथ जानता है। उसके ऐसा जानने का कारण यह है कि उसे अभी सीखना है।

“जो भिक्षु अर्हत हो गया है, आस्रव-रहित हो गया है, ब्रह्मचर्यवास पूरा कर चुका है, जो करना था सो कर चुका है, जिसने अपना बोझ उतार दिया है, जिसने सदर्थ (निर्वाण) प्राप्त कर लिया है, जिसके सांसारिक बंधन नष्ट हो चुके हैं, जो सम्यक ज्ञान के आधार पर विमुक्त हो चुका है, वह पृथ्वी को पृथ्वी के तौर पर जानता है, और इसे ऐसा जानकर इसको न मानता है, न इसमें मानता

है, न इससे मानता है, न 'पृथ्वी मेरी है' – ऐसा मानता है, और न इसका अभिनंदन करता है। वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि उसे पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

“ऐसे ही उसे जल, अग्नि, वायु आदि के बारे में पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

“अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, आस्रव-रहित व्यक्ति के समान ही वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह व्यक्ति को इनके बारे में पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

“अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध, तथागत को भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के बारे में पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

“अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध, तथागत पृथ्वी को पृथ्वी के तौर पर जानता है, और इसे ऐसा जान कर न इसको मानता है, न इसमें मानता है, न इससे मानता है, न 'पृथ्वी मेरी है' – ऐसा मानता है, और न इसका अभिनंदन करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह जानकर कि 'नन्दी (तृष्णा) दुःख का मूल है', वह जान लेता है कि भव से जन्म और जन्मे हुए को बुढ़ापा और मृत्यु अवश्यंभावी है। इसलिए वह सारी तृष्णाओं के क्षय, विराग, निरोध, त्याग, प्रतिनिःसर्ग से सर्वोत्कृष्ट सम्यक संबोधि (यथार्थ परमज्ञान) को प्राप्त है।”

सुनने वाले भिक्षुओं ने भगवान के भाषण का अभिनंदन नहीं किया (क्योंकि वे इसका आशय नहीं समझ पाए)।

२. सब्वासवसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सारे आस्रवों के संवर से संबंधित उपदेश दिया।

भगवान ने आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया कि मैं आस्रवों (चित्त-मलों) के क्षय के बारे में स्वयं जानते हुए, देखते हुए उपदेश देता हूँ; बिना जाने, बिना देखे नहीं। उन्होंने बतलाया कि मन का चिंतन-मनन दो प्रकार का होता है – यथार्थ और अ-यथार्थ। अ-यथार्थ चिंतन-मनन से अनुत्पन्न आस्रव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हुए आस्रव खूब बढ़ते हैं। यथार्थ चिंतन-मनन से अनुत्पन्न आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं और उत्पन्न हुए आस्रव नष्ट होते हैं।

उन्होंने आस्रवों से छुटकारा पाने का उपाय बताया –

१. दर्शन: अ-मनसिक रणीय धर्मों को मन में न करने और मनसिक रणीय धर्मों को मन में करने से भिक्षु यथार्थ चिंतन-मनन करता है -यह दुःख है, यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख का निरोध करने वाला मार्ग (उपाय) है। इससे तीन संयोजन (बंधन) नष्ट हो जाते हैं - (१) सत्क आयुदृष्टि (काया के भीतर कि सी नित्य आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना); (२) विचिकित्सा (संशय); (३) शीलव्रत-परामर्श (शील एवं व्रत से शुद्धि प्राप्त करना)। इसे कहते हैं 'दर्शन' से आस्रवों का प्रहाण।

२. संवर: ठीक से जान कर, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया एवं मन - इन छः इंद्रियों में संवर करने वाले को पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'संवर' से आस्रवों का प्रहाण।

३. प्रतिसेवन: ठीक से जान कर, भिक्षु द्वारा चीवर का इतना मात्र सेवन करने से जिससे सर्दी, गर्मी, डंस-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप का प्रतिघात और शरीर का ढंकना-मात्र होता हो; और इसी प्रकार पिंडपात (भिक्षान्न), शयनासन, औषध का इतना मात्र उपयोग करने से जिससे भिक्षु की अपरिहार्य भौतिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति होती हो, पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'प्रतिसेवन' से आस्रवों का प्रहाण।

४. अधिवासन: ठीक से जान कर, भिक्षु द्वारा सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, डंस-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप के आघात को, और शरीर पर उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की दुःखद संवेदनाओं को सहन करने का स्वभाव हो जाने पर पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'अधिवासन' से आस्रवों का प्रहाण।

५. परिवर्जन: ठीक से जान कर, अनुचित आसन, अनुचित विचरण-स्थान, बुरे मित्रों के सेवन को त्यागने से पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'परिवर्जन' से आस्रवों का प्रहाण।

६. विनोदन: ठीक से जान कर, उत्पन्न हुए कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क को दूर करने से पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'विनोदन' से आस्रवों का प्रहाण।

७. भावना: ठीक से जान कर, विवेक-युक्त, विराग-युक्त, निरोध-युक्त, मुक्ति-परिणाम वाले स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रद्धि, समाधि एवं उपेक्षा

संबोध्यों की भावना करने से पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'भावना' से आस्रवों का प्रहाण।

अंत में भगवान ने कहा कि इन उपायों का आश्रय लेने से जिस भिक्षु के आस्रव नष्ट हो जाते हैं, उसके बारे में कहा जाता है - 'यह भिक्षु सारे आस्रवों (सब्बासव) के संवर से युक्त हो विहरता है; इसने तृष्णा को काट दिया है; संयोजन (बंधन) को हटा दिया है; मानाभिसमय (अभिमान के स्पष्ट ज्ञान) से दुःख का अंत कर दिया है।'

३. धम्मदायादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि तुम मेरे 'धर्म-दायाद' (धर्म की विरासत पाने वाले) होओ, आमिष-दायाद (भौतिक वस्तुओं की विरासत पाने वाले) मत बनो।

बाद में आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को समझाया कि किन कारणों से श्रावक शास्ता से अलग होकर विहरते हुए विवेक (एकान्तचिंतन) की शिक्षा ग्रहण नहीं करते और किन कारणों से ग्रहण करते हैं।

विवेक की शिक्षा ग्रहण न करने वाले भिक्षु तीन कारणों से निंदा के पात्र होते हैं: (१) शास्ता से अलग होकर विहरते हुए विवेक की शिक्षा ग्रहण नहीं करते; (२) जिन बातों को छोड़ने के लिए शास्ता कहते हैं उन्हें नहीं छोड़ते; (३) संग्रह करने की प्रवृत्ति वाले, ढीले-ढाले, भागने में आगे और एकान्तचिंतन में फिसल जाने वाले होते हैं।

विवेक की शिक्षा ग्रहण करने वाले भिक्षु तीन कारणों से प्रशंसा के पात्र होते हैं: (१) शास्ता से अलग होकर विहरते हुए विवेक की शिक्षा ग्रहण करते हैं; (२) जिन बातों को छोड़ने के लिए शास्ता कहते हैं उन्हें छोड़ देते हैं; (३) न तो संग्रह करने की प्रवृत्ति वाले, न ही ढीले-ढाले, न भागने में आगे और न एकान्तचिंतन में फिसल जाने वाले होते हैं।

आयुष्मान सारिपुत्त ने यह भी समझाया कि बुरे हैं लोभ, द्वेष, क्रोध, वैर, पाखंड, दुर्भावना, ईर्ष्या, मात्सर्य, माया, ठगी, जड़ता, उत्तेजना, मान, अतिमान, मद तथा प्रमाद। इनके विनाश के लिए है 'मध्यम मार्ग', जो यही है 'आर्य

अष्टांगिक मार्ग', अर्थात् सम्यक दर्शन, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि।

४. भयभैरवसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां जानुस्सोणि नाम का ब्राह्मण उनके पास गया और उनसे वार्तालाप करते समय उनसे कहने लगा – “हे गौतम! कठिन हैं दूरस्थ वनखंड, एकांत शयनासन; दुष्कर है एकांत-रमण (प्रविवेक); अकेले विहरना कठिन है; समाधि प्राप्त न होने वाले भिक्षु के मन को वन मानो हर लेते हैं।”

भगवान ने इसका समर्थन किया और कहा – “मैं भी जब तक सम्यक संबुद्ध नहीं हुआ था, मुझे भी ऐसा ही लगता था। परंतु तब मेरे मन में ऐसा हुआ कि जिस कि सी श्रमण अथवा ब्राह्मण के कायिक, वाचिक अथवा मानसिक कर्म एवं आजीविका अपरिशुद्ध होते हैं, जो लोभी एवं काम-वासनाओं में तीव्र राग रखने वाले, हिंसायुक्त चित्त वाले, मन में दुष्ट संकल्प रखने वाले, शारीरिक और मानसिक आलस्य से प्रेरित, उद्धत और अशांत चित्त वाले, संशयालु, संदेह-ग्रस्त, अपना उत्कर्ष चाहने वाले पर दूसरे की निंदा करने वाले, जड़ और भीरु प्रकृति वाले, लाभ, सत्कार तथा प्रसिद्धि चाहने वाले, आलसी, उद्योगहीन, नष्ट हुई स्मृति वाले, असंप्रज्ञानी, असमाहित, विभ्रान्तचित्त, दुष्प्रज्ञ, बहरे और गूंगे होते हैं वे दूरस्थ वनखंड एवं एकांत शयनासन का सेवन करते हुए अपने इन दोषों के कारण बुरे भय-भैरव (भय और त्रास का) आह्वान करते हैं, किंतु मैं उन लोगों में से एक हूँ जिनमें ये दोष नहीं हैं। मैं इन दोषों के विपरीत सद्गुणों से संपन्न हुआ दूरस्थ वनखंड एवं एकांत शयनासन का सेवन करता हूँ। हे ब्राह्मण! अपने भीतर अनवद्यता को देखकर मुझमें अरण्य-विहार करने का और अधिक उत्साह हुआ।

“मैंने भी भयप्रद, रोमांचकारी वासस्थानों में विहार किया जिससे कुछ भय-भैरव देख सकूँ। जब मेरे पास कोई मृग आता, या मोर काटगिराता अथवा पवन पल्लवों को फरफराता, तब मुझे ऐसे लगता मानों भय-भैरव आ रहा है। तब मैं सोचता कि मैं क्यों दूसरे में भय की आकांक्षा से विहरता हूँ? क्यों न मैं जिस-जिस अवस्था में रहते भय-भैरव मेरे पास आता है उस-उस अवस्था में रहते उसे हटाऊँ? तब मेरे टहलते समय भय-भैरव आता तो मैं उसे टहलते हुए हटाता। ऐसे ही खड़े-खड़े, बैठे-बैठे, लेटे-लेटे भी हटाता।

“कोई-कोईश्रमण अथवा ब्राह्मण रात को दिन और दिन को रात के समान जानते हैं। मैं इसे ‘सम्मोह-विहार’ कहता हूँ। मैं रात को रात और दिन को दिन के समान जानता हूँ।

“हे ब्राह्मण! मैंने न दबने वाला वीर्य (उद्योग) आरंभ किया था। उस समय मेरी अमुषित स्मृति जागृत थी, प्रश्रब्ध काया उत्तेजना-रहित थी, समाधिनिष्ठ चित्त एकग्र था। फिर मैं, क्रमशः, प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगा।

“इस प्रकार चित्त के एकग्र, परिशुद्ध, अंगण-रहित, उपक्लेश-रहित, कोमल, कार्योपयोगी, स्थिर एवं अचल हो जाने पर मैंने पूर्वजन्मों की स्मृति के ज्ञान के लिए चित्त को नवाया। इस प्रकार मैं आकार एवं उद्देश्य सहित अनेक प्रकार के पूर्व-निवासों को स्मरण करने लगा। इस तरह रात्रि के प्रथम पहर में मुझे यह पहली विद्या प्राप्त हुई।

“फिर मैंने चित्त को प्राणियों की च्युति और उत्पत्ति के ज्ञान के लिए नवाया। तब मैं अमानुष, विशुद्ध, दिव्य चक्षु से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति वाले, दुर्गति वाले प्राणियों को मरते-जन्मते देखने लगा; कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को पहचानने लगा। इस तरह रात्रि के दूसरे पहर में मुझे यह दूसरी विद्या प्राप्त हुई।

“फिर मैंने चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाया। तब मैंने पूरी तरह यथार्थतः जान लिया – ‘यह दुःख है’; ‘यह दुःख का समुदय है’; ‘यह दुःख का निरोध है’; ‘यह दुःख के निरोध का मार्ग (उपाय) है’। मैंने पूरी तरह यथार्थतः यह भी जान लिया – ‘यह आस्रव है’; ‘यह आस्रवों का समुदय है’; ‘यह आस्रवों का निरोध है’; ‘यह आस्रवों के निरोध का मार्ग (उपाय) है’। इस प्रकार देखते, जानते मेरा चित्त काम (काम-वासना-रूपी) आस्रवों से मुक्त हो गया, भव (जन्म लेने के लोभ रूपी) आस्रवों से मुक्त हो गया, अविद्या-आस्रवों से मुक्त हो गया। विमुक्त होने पर ‘विमुक्त हो गया!’ – ऐसा ज्ञान हुआ। मैंने पूरी तरह जान लिया – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’ इस तरह रात्रि के तीसरे पहर में यह तीसरी विद्या प्राप्त हुई।”

अंत में भगवान ने स्पष्ट किया कि वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-मोह होने पर भी

में दूरस्थ वनखंड एवं एकान्तशयनासन का सेवन दो कारणोंसे करता हूँ - (१) इसी शरीर में अपने सुखविहार के लिए; और (२) आने वाली जनता पर अनुकंपा करने के लिए (जिससे वह भी मेरा अनुगमन कर सुफलभागी हो)।

५. अनङ्गणसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा -

“आवुस! संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। कौन से चार ?

(१) कोई व्यक्ति अंगण(चित्तमल)-सहित होता हुआ ‘मेरे भीतर अंगण है’ - इसे यथार्थतः नहीं जानता है।

(२) कोई अंगण-सहित होता हुआ ‘मेरे भीतर अंगण है’ - इसे यथार्थतः जानता है।

(३) कोई अंगण-रहित रहता हुआ ‘मेरे भीतर अंगण नहीं है’ - इसे यथार्थतः नहीं जानता है।

(४) कोई अंगण-रहित रहता हुआ ‘मेरे भीतर अंगण नहीं है’ - इसे यथार्थतः जानता है।

“इन व्यक्तियों में से जिनको अपने भीतर अंगण होने अथवा न होने की यथार्थतः जानकारी रहती है वे ‘श्रेष्ठ’, और जिन्हें ऐसी जानकारी नहीं रहती है वे ‘हीन’, कहलाते हैं।”

आयुष्मान महामोग्गल्लान द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त से इसका कारण पूछे जाने पर उन्होंने बतलाया कि जो अपने भीतर अंगण के होने की यथार्थतः जानकारी नहीं रखते हैं, वे उसे दूर करने के लिए उद्यम नहीं करते और अंगण-युक्त, मलिन चित्त से ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जो यथार्थतः जानकारी रखते हैं, वे उसे दूर करने के लिए उद्यम करते हैं और अंगण-रहित, निर्मल चित्त से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जो अपने भीतर अंगण के न होने की यथार्थतः जानकारी नहीं रखते हैं, वे मन में शुभ-निमित्त को करते हैं जिससे उनके मन में राग चिपटता है और वे अंगण-सहित, मलिन चित्त से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जो यथार्थतः जानकारी रखते हैं, वे मन में शुभ-निमित्त को नहीं करते हैं, जिससे उनके मन में राग नहीं चिपटता है और वे अंगण-रहित, निर्मल चित्त

से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अंगण-युक्त, मलिन चित्त से मृत्यु को प्राप्त होने वाले 'हीन', और अंगण-रहित, निर्मल चित्त से मृत्यु को प्राप्त होने वाले 'श्रेष्ठ,' कहलाते हैं ।

तदनंतर यह पूछे जाने पर कि 'अंगण' से क्या अभिप्राय होता है, उन्होंने बतलाया कि पापपूर्ण, अकुशल, इच्छाओं से ग्रस्त होना अंगण कहलाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अनेक उदाहरण दिए। जैसे - कि सी भिक्षु के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो कि मैं अपराध करूं पर दूसरे भिक्षु न जान पाएं कि मैंने अपराध किया है। यदि उस भिक्षु को पता चल जाए कि दूसरे भिक्षु उसके अपराध को जान जाते हैं तो वह कुपित एवं अप्रसन्न होता है। यह कोप, यह अप्रसन्नता - दोनों ही अंगण हैं।

जिस किसी भिक्षु की पापपूर्ण, अकुशल इच्छाएं विनष्ट नहीं होती हैं, सब्रह्मचारी उसका सत्कार नहीं करते हैं, भले ही वह वनवासी हो। ऐसे भिक्षु के बारे में ऐसी कल्पना की जा सकती है मानों दो चमचमाती हुई कांसे की थालियों के बीच मुर्दा सांप, कुत्ते अथवा मनुष्य का मांस ढँका हुआ रखा हो। जिस भिक्षु की पापपूर्ण, अकुशल इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं, सब्रह्मचारी उसका सत्कार करते हैं, भले ही वह ग्रामवासी हो। ऐसे भिक्षु के बारे में ऐसी कल्पना की जा सकती है मानों दो चमचमाती हुई कांसे की थालियों के बीच साफ शालि के चावल को अनेक प्रकार के सूप एवं व्यंजन के साथ सजा कर रखा हो।

तत्पश्चात् आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कहा कि एक समय एक यानकार रथ के चक्के की पुट्टी को गढ़ रहा था जब कि उसके पास बैठा हुआ एक अन्य यानकार मन-ही-मन चाह रहा था कि वह यानकार उस पुट्टी के बांके पन को दूर कर उसे गढ़ पाए और वह दोष-रहित हो जाए। सचमुच ऐसा होते देख दूसरा यानकार प्रसन्नचित्त हो बोल उठा - "मानों हृदय से मेरे हृदय की बात जान कर गढ़ रहा है।" ऐसे ही इस समय आयुष्मान सारिपुत्त इस उपदेश द्वारा अपने हृदय से ऐसे भिक्षुओं के हृदय को जान कर जो श्रद्धा-रहित, शठ, मायावी, पाखंडी, उद्धत, अभिमानी, चपल, मुखर, असंयतेन्द्रिय एवं अन्य दुर्गुणों से युक्त हैं, गढ़ रहे हैं। और जो भिक्षु श्रद्धालु, अ-शठ, अ-मायावी, पाखंड-रहित, अनुद्धत, अनभिमानी, अ-चपल, अ-मुखर, संयतेन्द्रिय एवं अन्य सदगुणों से युक्त हैं, वे इस धर्मोपदेश को सुन कर मानों वचन और मन से पान कर रहे हैं, आहार कर रहे

हैं। आयुष्मान सारिपुत्त सब्रह्मचारियों को बुराइयों से उठा कर अच्छाइयों में स्थापित कर रहे हैं।

इस प्रकार दोनों महानागों ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया।

६. आकङ्ख्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा – “ शील एवं प्रातिमोक्ष से युक्त होकर विहार करो। आचार तथा गोचर से संपन्न हुए, छोटी-से-छोटी बुराइयों में भी भय देखते हुए, प्रातिमोक्ष के संवर से संवृत हुए विहार करो। शिक्षापदों को ग्रहण कर उनका अभ्यास करो।”

तदनंतर भगवान ने भिक्षुओं की विभिन्न आकङ्क्षाओं का उल्लेख करते हुए बतलाया कि इन्हें पूरा करने के लिए उन्हें शीलों को परिपूर्ण करने वाला, भीतर से शांतचित्त, अखंड-ध्यानी, विपश्यी तथा शून्यागारों का अधिक अधिक सेवन करने वाला होना चाहिए।

भिक्षुओं की आकङ्क्षाएं इस प्रकार की हो सकती हैं जैसे सब्रह्मचारियों (गुरुभाइयों) का प्रिय, वांछनीय, आदृत एवं सम्मान-भाजन होना; चीवर, पिंडपात, शयनासन और ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कार का लाली होना; भय-भैरव को परास्त करने वाला होना; इसी जन्म में सुख-विहार कराने वाले चारों ध्यानों को बिना किसी कठिनाई के प्राप्त करने वाला होना; संयोजनों के क्षय हो जाने से सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी हो जाना; अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करना; दिव्य श्रोत्र, परचित्तज्ञान, पूर्व-निवास-अनुस्मृति, दिव्य चक्षु प्राप्त करना; आस्रवों के क्षय से इसी जीवन में स्वयं की अभिज्ञा से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा अंतिम मुक्ति प्राप्त करना, इत्यादि।

७. वत्थसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

“मैले-कु चैले वस्त्र को किसी भी रंग में डाला जाए तो वह बदरंग ही रहेगा –

वस्त्र के मैला होने से। ऐसे ही चित्त के मलिन होने से दुर्गति ही हो सकती है। परंतु यदि उजले वस्त्र को किसी रंग में डाला जाए तो वह ठीक से रंग को पकड़ता है – वस्त्र के धवल होने से। ऐसे ही चित्त के निर्मल होने से सुगति ही हो सकती है।

“चित्त के उपक्लेश (मल) हैं – (१) अभिध्या (विषम लोभ); (२) व्यापाद (द्रोह); (३) क्रोध; (४) उपनाह (वैरभाव); (५) म्रक्ष (दूसरे के गुणों का अवमूल्यन करना); (६) प्रदाश (निष्ठुरता); (७) ईर्ष्या; (८) मात्सर्य; (९) माया; (१०) शठता; (११) स्तंभ (जड़ता); (१२) सारंभ (उत्तेजना); (१३) मान; (१४) अतिमान; (१५) मद; तथा (१६) प्रमाद।

“जब कोई भिक्षु इन उपक्लेशों को इस प्रकार जान कर इन्हें त्याग देता है, तब वह बुद्ध में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है, और चिंतन करता है – ‘वह भगवान अर्हंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, सुगत, लोकों के जानकार, पुरुषों को दमन करने (सन्मार्ग पर लाने) के लिए अनुपम सारथी, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं।’ वह धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है और चिंतन करता है – ‘भगवान का धर्म सु-आख्यात (सुंदर रूप से कहा गया), सांदृष्टिक (इसी जीवन में फल देने वाला), अकालिक (सद्यःफलप्रद), एहिपशियक (आओ – देखो का भाव जगाने वाला), औपनेय्यिक (निर्वाण की ओर ले जाने वाला) और विद्वानों द्वारा प्रत्यात्म रूप से जानने योग्य है।’ वह संघ में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है और चिंतन करता है – ‘भगवान का श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न (सुमार्ग पर आरूढ़), ऋजु-प्रतिपन्न (सरल मार्ग पर आरूढ़), न्याय-प्रतिपन्न (न्याय के मार्ग पर आरूढ़), सामीचि-प्रतिपन्न (ठीक मार्ग पर आरूढ़) है। यह जो चार पुरुष-युगल (सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी, अर्हंत), आठ पुरुष-पुद्गल (मार्ग एवं फल के भेद से चार पुरुष-युगल) हैं, यह भगवान का श्रावक-संघ है, जो कि आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है, और लोक के लिए पुण्य बोनने का अनुपम क्षेत्र है।

“जब भिक्षु के मल नष्ट हो जाते हैं और वह बुद्ध, धर्म और संघ में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है तब वह अर्थवेद, धर्मवेद और धर्मोपसंहित प्रमोद प्राप्त करता है। प्रमोद-प्राप्त व्यक्ति को प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिमनस्क की काया

प्रशांत होती है, प्रशांत काया वाला सुख अनुभव करता है, सुखी का चित्त समाहित हो जाता है।

“वह भिक्षु, क्रमशः, मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा युक्त चित्त से प्रत्येक दिशा को व्याप्त कर विहरता है।

“वह जानता है कि ‘यह निकृष्ट है’, ‘यह उत्तम है’ – इन लौकिक संज्ञाओं से ऊपर निस्सरण (निकास) है। ऐसा जानते, देखते उसका चित्त कामास्रवों, भवास्रवों तथा अविद्यास्रवों – इन सभी से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर ‘विमुक्त हो गया’ – यह ज्ञान होता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’ ऐसे व्यक्ति के लिए कहा जाता है – ‘भिक्षु भीतर का स्नान किए हुए है।’”

उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान के पास बैठा था। उसने उनसे स्नान करने के लिए बाहुका नदी चलने के लिए कहा। उसका कहना था कि यह नदी पवित्र मानी जाती है और बहुत से लोग इसमें अपने किए पापों को बहाते हैं। इस पर भगवान ने कहा – “बाहुका, अधिक कक गया, सुन्दरिका, सरस्वती, पयाग तथा बाहुमती में अकुशल कर्मों वाला मूढ़ चाहे नित्य नहाये, किंतु शुद्ध नहीं होगा। यदि तू झूठ नहीं बोलता, हिंसा नहीं करता, चोरी नहीं करता, श्रद्धावान और मात्सर्य-रहित है तो गया जाकर क्या करेगा, कुआं भी तेरे लिये गया है।” ऐसा कहा जाने पर सुन्दरिक भारद्वाज आश्चर्यचकित होकर बुद्ध, धर्म और संघ की शरण चला गया और भगवान से प्रव्रज्या, उपसंपदा पाकर एकान्त में प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते हुए थोड़े ही समय में निर्वाण-लाभी हुआ।

८. सल्लेखसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने आयुष्मान महाचुन्द के एक प्रश्न का समाधान करते हुए कहा –

“संसार में आत्मवाद अथवा लोकवाद को लेकर जो अनेक प्रकार की दृष्टियां उत्पन्न होती हैं, उनको जहां ये दृष्टियां उत्पन्न होती हैं, जहां ये आश्रय ग्रहण

क रती हैं, जहां ये व्यवहृत होती हैं, वहां 'यह मेरा नहीं', 'न यह मैं हूं', 'न यह मेरी आत्मा है' – इस प्रकार इसे यथार्थ तौर पर सम्यक प्रज्ञा से देख कर इन दृष्टियों का प्रहाण, परित्याग होता है।

“यदि प्रथम ध्यान करते हुए कोई भिक्षु समझे कि मैं कड़ा तप (सल्लेख) करते हुए विहर रहा हूं, तो यह ऐसा नहीं है। आर्यविनय में इसे दृष्टधर्म सुखविहार (इसी जन्म में सुखपूर्वक विहार करना) कहते हैं। यही बात द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान के बारे में भी चरितार्थ होती है।

“यदि कोई भिक्षु आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आर्किचन्यायतन और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त होकर विहरते समय ऐसा समझे कि मैं कड़ा तप कर रहा हूं, तो यह ऐसा नहीं है। आर्यविनय में इन्हें शांतविहार कहते हैं।

“कड़ा तप ऐसे प्रसंगों में करना चाहिए – दूसरे हिंसक होंगे, हम अहिंसक रहेंगे; दूसरे प्राण लेने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे बिना दिया लेने वाले (तस्कर) होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे अ-ब्रह्मचारी होंगे, हम ब्रह्मचारी रहेंगे; दूसरे झूठ बोलने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे चुगली खाने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे कठोर वचन कहने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे व्यर्थ प्रलाप करने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; इत्यादि।

“कुशलधर्मों (अच्छी बातों) के बारे में विचार उत्पन्न होना ही बड़ा हितकर होता है, काया और वाणी से उसके अनुष्ठान का तो कहना ही क्या? इसलिए इन बातों के बारे में विचार करना चाहिए – दूसरे हिंसक होंगे, हम अहिंसक रहेंगे; इत्यादि।

“जैसे कोई विषम (ऊबड़खाबड़) मार्ग हो और उसकी परिक्रमा करने के लिए दूसरा समतल मार्ग हो, अथवा जैसे कोई विषम (दुस्तर) तीर्थ (नाव का घाट) हो और उसकी परिक्रमा करने के लिए दूसरा सम-तीर्थ हो, ऐसे ही हिंसक व्यक्ति की परिक्रमा करने के लिए अहिंसा होती है; इत्यादि।

“जैसे अकुशलधर्म नीचे गिराने वाले होते हैं और कुशलधर्म ऊपर उठाने वाले, वैसे ही हिंसक व्यक्ति को अहिंसा ऊपर उठाने वाली होती है; इत्यादि।

“जो स्वयं गिरा हुआ है, वह दूसरे गिरे हुए को उठा पायेगा, यह संभव नहीं है। जो स्वयं गिरा हुआ नहीं है, वह दूसरे गिरे हुए को उठा पायेगा, यह संभव है। जो स्वयं अदान्त (संयम-रहित), अविनीत, अपरिनिवृत्त (परिनिर्वाण न पाया

हुआ) है, वह दूसरे को दान्त, विनीत, परिनिवृत्त करेगा, यह संभव नहीं है। जो स्वयं दान्त, विनीत, परिनिवृत्त है, वह दूसरे को दान्त, विनीत, परिनिवृत्त करेगा, यह संभव है। हिंसक व्यक्ति के लिए अहिंसा परिनिर्वाण के लिए होती है; इत्यादि।

अंत में भगवान ने आयुष्मान चुन्द को कहा – “श्रावकों के हितैषी, अनुकंपक, शास्ता ने अनुकंपक रके जो कुछ करना चाहिए था, वह कर दिया है। अब यह रहे वृक्षमूल, यह रहे शून्यागार! ध्यानरत हो जाओ, प्रमाद मत करो, बाद में पछतावा मत करना। यह तुम्हारे लिए हमारा अनुशासन है।”

९. सम्पादिदिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार कर रहे थे। वहां भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उन्हें बतलाया –

“जब आर्यश्रावक अकुशल (बुराई) को जानता है, अकुशल-मूल को जानता है, कुशल (भलाई) को जानता है, कुशल-मूल को जानता है – इतने से वह सम्यक दृष्टि वाला होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त होता है।

“अकुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना, व्यर्थ प्रलाप करना, लोलुपता, प्रतिहिंसा और मिथ्यादृष्टि (गलत धारणा)। अकुशल-मूल हैं – लोभ, द्वेष तथा मोह।

“कुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना, चुगली न करना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ प्रलाप न करना, लोलुपता का अभाव, प्रतिहिंसा का अभाव और सम्यक दृष्टि (सही धारणा)। कुशल-मूल हैं – अ-लोभ, अ-द्वेष तथा अ-मोह।

“जब आर्यश्रावक इस प्रकार अकुशल, अकुशल-मूल, कुशल तथा कुशल-मूल को जानता है तब वह रागानुशय का प्रहाण कर, प्रतिघ (प्रतिहिंसा)-अनुशय को दूर कर, ‘अस्मि’ (मैं हूँ) – इस दृष्टिमान-अनुशय का समुच्छेद कर, अविद्या को नष्ट कर, विद्या को उत्पन्न कर, इसी जीवन में दुःखों का अंत करने वाला होता है – इतने से भी आर्यश्रावक सम्यक दृष्टि वाला होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त होता है।” तदनंतर

आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं के लिए अन्य धर्म-पर्याय भी प्रस्तुत किए जिनसे आर्यश्रावक सम्यक दृष्टि वाला होता है। ये पर्याय हैं –

* जब वह प्रज्ञापूर्वक आहार, आहार का समुदय, आहार का निरोध, तथा आहार का निरोध कराने वाले मार्ग (उपाय) को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध तथा दुःख का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक जरा-मरण, जरा-मरण का समुदय, जरा-मरण का निरोध तथा जरा-मरण का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक जाति (जन्म), जाति का समुदय, जाति का निरोध तथा जाति का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक भव, भव का समुदय, भव का निरोध तथा भव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक उपादान, उपादान का समुदय, उपादान का निरोध तथा उपादान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक तृष्णा, तृष्णा का समुदय, तृष्णा का निरोध तथा तृष्णा का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक वेदना, वेदना का समुदय, वेदना का निरोध तथा वेदना का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक स्पर्श, स्पर्श का समुदय, स्पर्श का निरोध तथा स्पर्श का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक षडायतन (छह इन्द्रियां), षडायतन का समुदय, षडायतन का निरोध तथा षडायतन का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक नामरूप, नामरूप का समुदय, नामरूप का निरोध तथा नामरूप का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक विज्ञान, विज्ञान का समुदय, विज्ञान का निरोध तथा विज्ञान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक संस्कार, संस्कार का समुदय, संस्कार का निरोध तथा संस्कार का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक अविद्या, अविद्या का समुदय, अविद्या का निरोध तथा अविद्या का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक आस्रव, आस्रव का समुदय, आस्रव का निरोध तथा आस्रव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है। और यह जो सारे मार्ग बतलाए गए हैं, यह 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' ही है, अर्थात् सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि।

१०. सतिपट्टानसुत्त

एक समय भगवान् कुरु-प्रदेश में कुरुओं के निगम कम्मासधम्म में विहार करते थे। उस समय भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ये जो चार स्मृति-प्रस्थान हैं वे सत्त्वों की विशुद्धि, शोक और क्रंदन का विनाश, दुःख और दौर्मनस्य का अवसान, सत्य की प्राप्ति, निर्वाण का साक्षात्कार – इन सब के लिए अकेला मार्ग है।

चार स्मृति-प्रस्थान हैं – लोलुपता और दौर्मनस्य को दूर कर, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, उद्योगशील हो, काया में कायानुपशयी हो कर विहरना, और ऐसे ही वेदनाओं में वेदनानुपशयी हो कर, चित्त में चित्तानुपशयी हो कर और धर्मों में धर्मानुपशयी हो कर विहरना।

'कायानुपशयना' के लिए भिक्षु कि सी निर्जन स्थान पर जा कर पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द जागरूकता बनाये रख, नैसर्गिक तौर पर आने जाने वाले श्वास को जानने का काम शुरू करता है। फिर सारी काया को अनुभव करते हुए, और तदुपरांत काया पर होने वाले उपद्रवों के शांत होने पर, श्वास लेना वा छोड़ना सीखता है। इस प्रकार काया के भीतरी अथवा बाहरी; अथवा भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के भागों में कायानुपशयना करता हुआ विहार करता है, काया में उदय अथवा व्यय; अथवा उदय के साथ-साथ व्यय होने वाले धर्मों का अनुपशयी हो कर विहार करता है। तब 'यह काया है!' – इस पर जागरूकता स्थिर हो जाती है। जितनी देर तक इस प्रकार का केवल ज्ञान,

केवलदर्शन बना रहता है उतनी देर तक अनासक्त हो कर विहार करता है और संसार में कुछ भी ग्रहण करने योग्य नहीं रहता। इस प्रकार कायामें कायानुपश्यी हो कर विहार करना होता है।

फिर केवल बैठे-बैठे ही नहीं, चलते-फिरते, खड़े रहते, लेटे-लेटे अथवा शरीर की अन्य अवस्थाओं में भी, इन अवस्थाओं को यथाभूत जानते हुए, कायानुपश्यना की जाती है। और फिर इससे भी आगे बढ़ कर हर प्रकार की शारीरिक क्रिया में संप्रज्ञान बनाये रख कर कायानुपश्यना करनी होती है। शरीर के भीतर अशुचि याने प्रतिकूल विषयों को आलंबन बना कर उक्त प्रकार से कायानुपश्यना करनी होती है।

‘वेदानुपश्यना’ करते समय जैसी भी वेदना अनुभव हो – सुखद, दुःखद, अदुःखद-असुखद, सामिष, निरामिष – उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत् भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान अथवा दर्शन प्राप्त हो – ‘यह वेदना है’।

‘चित्तानुपश्यना’ करते समय जैसी भी चित्त की स्थिति हो – रागयुक्त, रागविहीन; द्वेषयुक्त, द्वेषविहीन; मोहयुक्त, मोहविहीन; इत्यादि – उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत् भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो – ‘यह चित्त है!’

‘धर्मानुपश्यना’ करते समय भी चित्त में जागने वाले धर्मों की जैसी-जैसी स्थिति हो उन्हें प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत् भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर होकर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो – ‘ये धर्म हैं!’

नीवरणों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय नीवरण है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा इसका प्रहाण हो रहा है अथवा प्रहाण हुए-हुए का अब पुनः उद्भव नहीं होता है। नीवरण हैं – (१) कामच्छंद = कामुकता, (२) व्यापाद = द्रोह, (३) स्त्यानमृद्ध = तन-मन का आलस, (४) औद्धत्य-कौकृत्य = उद्वेग-खेद, (५) विचिकित्सा = संदेह।

उपादान-स्कंधों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है

कि इस समय स्कंधका उदय हो रहा है अथवा अस्त हो रहा है। उपादान-स्कंध हैं - (१) रूप, (२) वेदना, (३) संज्ञा, (४) संस्कार, (५) विज्ञान।

आयतनों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि यह भीतर का आयतन है, यह बाहर का आयतन है, यह दोनों के संसर्ग से होने वाला संयोजन है, यह अविद्यमान संयोजन की उत्पत्ति है, यह उत्पन्न हुए संयोजन का प्रहाण है और यह प्रहाण हुए-हुए संयोजन का अब अनुद्भव है। आयतन हैं: बाह्य- (१) चक्षु, (२) श्रोत्र, (३) घ्राण = नासिका; (४) जिह्वा, (५) काय (=त्वक)। आभ्यंतर - (६) मन तथा उनके विषय।

बोध्यंगों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय बोध्यंग है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा भावित हो कर परिपूर्ण हो रहा है। बोध्यंग हैं - (१) स्मृति, (२) धर्मविचय, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि, (६) समाधि, (७) उपेक्षा।

आर्य-सत्त्वों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक, यथाभूत, यह जानना होता है कि यह दुःख है, यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख-निरोध का उपाय है।

तत्पश्चात् भगवान् ने स्पष्ट किया कि दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध और दुःख-निरोध का उपाय - इनसे क्या अभिप्राय है। संक्षेप में पांचों उपादान-स्कंध ही 'दुःख' हैं; बार-बार राग जगाने वाली तृष्णा 'दुःख का समुदय' है; इस तृष्णा का सर्वथा निरोध 'दुःख का निरोध' है; और आर्य अष्टांगिक मार्ग (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि) दुःख-निरोध का उपाय है।

अंत में भगवान् ने प्रज्ञप्त किया कि जो कोई मेरे बतलाये अनुसार इन चार स्मृति-प्रस्थानों की सात वर्ष भावना करे उसे इन दो फलों में से एक की आशा रखनी चाहिए - इसी जन्म में अर्हत्व का साक्षात्कार अथवा उपाधि शेष होने पर अनागामि-भाव। भगवान् ने आगे प्रज्ञप्त किया कि इससे कहीं कम अवधि में भी इस फल की आशा की जा सकती है।

२. सीहनादवग्ग

१. चूळसीहनादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा -

“भिक्षुओ! यहां ही श्रमण है, यहां द्वितीय श्रमण है, यहां तृतीय श्रमण है, यहां चतुर्थ श्रमण है, अन्य मत (प्रवाद) श्रमणों से शून्य हैं। इस प्रकार सम्यक रूप से सिंहनाद करो।

“यदि अन्य मतावलंबी कहें कि आपके पास यह कहने के लिए क्या प्रमाण है, तो उन्हें कहना चाहिए कि उन भगवान जाननहार, देखनहार, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध ने हमें चार बातें बतलाई हैं, जिनको हम अपने भीतर भली प्रकार देखते हुए ऐसा कहते हैं। ये चार बातें हैं - शास्ता में श्रद्धा, धर्म में श्रद्धा, शीलों को परिपूर्ण करने वाला होना और गृहस्थों एवं प्रव्रजितों का सहधर्मी, प्रिय तथा मनोनुकूल होना।”

तत्पश्चात् भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि यदि अन्य मतावलंबी कहें कि हमारी भी यही स्थिति है, अतः आप में और हम में क्या अंतर है, तो उनसे उनकी निष्ठा के बारे में प्रश्नोत्तर करना चाहिए।

तदनंतर भगवान ने दो प्रकार की दृष्टियों (भव-दृष्टि तथा विभव-दृष्टि), और चार प्रकार के उपादानों (काम-उपादान, दृष्टि-उपादान, शील-व्रत-उपादान, आत्मवाद-उपादान) की चर्चा करते हुए बतलाया कि अनेक श्रमण अथवा ब्राह्मण अपने आप को सारे उपादानों का परित्याग करने वाला बखानते तो हैं परंतु इनकी यथार्थ रूप से जानकारी न होने के कारण वे इन्हें सम्यक रूप से प्रज्ञप्त नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार के धर्मविनय में शास्ता वा धर्म के बारे में श्रद्धा, शीलों में परिपूर्ण करने वाला होना और सहधर्मियों के साथ प्रिय एवं मनोनुकूल होना - ये सब सम्यक प्रकार के नहीं होते। इसका कारण यह होता है कि इनका संबंध ऐसे धर्मविनय से होता है जो दुराख्यात (ठीक प्रकार से व्याख्या न किया हुआ), दुष्प्रवेदित (ठीक प्रकार से न जाना गया), अनैर्याणिक (पार न ले जाने वाला), अनुपशम-संवर्तनिक (शांति को प्राप्त न कराने वाला) और असम्यक संबुद्ध-प्रवेदित (असम्यक संबुद्ध द्वारा जाना गया) होता है। तथागत

अर्हत सम्यक संबुद्ध अपने आप को सारे उपादानों का परित्याग करने वाला करते हैं और इनकी यथार्थ रूप से जानकारी होने के कारण इन्हें सम्यक रूप से प्रज्ञप्त करते हैं। इस प्रकार के धर्म-विनय में शास्ता वा धर्म के बारे में श्रद्धा वा अन्य बातें सम्यक प्रकार की होती हैं। इनका संबंध ऐसे धर्मविनय से होता है जो सु-आख्यात, सु-प्रवेदित, नैर्याणिक, उपशम-संवर्तनिक तथा सम्यक संबुद्ध-प्रवेदित होता है।

अंत में भगवान ने समझाया कि पूर्व-वर्णित चारों उपादानों का निदान, समुदय, जाति, प्रभव 'तृष्णा' है। 'तृष्णा' का निदान, समुदय, जाति, प्रभव 'वेदना' है। ऐसे ही 'वेदना' का 'स्पर्श'; 'स्पर्श' का 'षडायतन'; 'षडायतन' का 'नामरूप'; 'नामरूप' का 'विज्ञान'; 'विज्ञान' का 'संस्कार'; और 'संस्कार' का 'अविद्या'। जब भिक्षु की अविद्या नष्ट हो जाती है और विद्या उत्पन्न हो जाती है, तब यह कि सी भी उपादान को ग्रहण नहीं करता है; ग्रहण न करने से उत्तेजित नहीं होता है; और उत्तेजित नहीं होने से इसी शरीर से निर्वाण पा लेता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है - 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।'

२. महासीहनादसुत्त

एक समय भगवान वेसाली नगर के बाहर पश्चिम दिशा के वनखंड में विहार करते थे।

उस समय सुनक्खत्त नाम का लिच्छविपुत्र, जिसने हाल ही में भगवान के धर्मविनय को छोड़ दिया था, वेसाली की परिषद में कहता फिरता था - "श्रमण गौतम के पास उत्तरमनुष्यधर्म (दिव्यशक्ति) और आर्यज्ञानदर्शनविशेष की पराकाष्ठा नहीं है। वह तर्क से प्राप्त, विमर्श पर आधारित, स्वयं की प्रतिभा से जाने हुए धर्म का उपदेश देता है। वह जिस कि सी को धर्मोपदेश देता है, वह पूरी तरह से अपने दुःख के विनाश को प्राप्त होता है।"

आयुष्मान सारिपुत्त को इसकी जानकारी मिलने पर उन्होंने इस बारे में भगवान से कहा। इस पर भगवान बोले - "सुनक्खत्त क्रोधी व्यक्ति है। उसने क्रोध में ही यह कहा होगा। निंदा करने के विचार से बोलते हुए भी उसने यह कह कर तथागत की प्रशंसा ही की है - 'वह जिस कि सी को धर्मोपदेश देता है, वह पूरी तरह से अपने दुःख के विनाश को प्राप्त होता है।'" तदनंतर भगवान ने

तथागत के दस बलों और चार वैशारदों का वर्णन करते हुए बतलाया कि इनसे युक्त हो तथागत उच्च (आर्षभ) स्थान को जानते हैं, परिषद में सिंहनाद करते हैं, ब्रह्मचक्र (धर्मचक्र) को चलाते हैं। भगवान ने आठ परिषदों, चार योनियों और पांच गतियों की भी विस्तृत जानकारी दी और बार बार जतलाया कि इनके इस प्रकार जाननहार, देखनहार मेरे बारे में यदि कोई ऐसा कहे कि श्रमण गौतम के पास उत्तरमनुष्यधर्म और आर्यज्ञानदर्शनविशेष की पराकान्ठानहीं है, इत्यादि और अपने इस चिंतन को न छोड़े और इस पर अड़ा रहे, तो वह नरक में डाला हुआ जैसा होगा।

तत्पश्चात् भगवान ने कहा कि मैं चार अंगों से युक्त ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना जानता हूँ -

- (१) तपस्वियों में मैं परम तपस्वी था;
- (२) रूक्षाचारियों में मैं परम रूक्षाचारी था;
- (३) जुगुप्सा करने वालों में मैं परम जुगुप्सु था;
- (४) एकान्तसेवियों में मैं परम एकान्तसेवी था।

इनके अनेकानेक उदाहरण देते हुए उन्होंने बतलाया कि मैं अपने शरीर को तरह तरह की भीषण यातनाएं देता था, अपने शरीर पर वर्षों का मैल चढ़ाए रखता था, क्षुद्र से क्षुद्र प्राणियों के प्रति दयाभाव बनाए रखता था, हेमन्त की बर्फाली रातों में रात रात भर खुले मैदान में विहरता था। मैं श्मशान में मुर्दों की हड्डियों का तकि या बनाकर सोता था। उस समय चरवाहे मेरे पास आकर मुझ पर थूकते थे, मूत्र करते थे, धूल फेंकते थे, कानों में सीक भी डालते थे, पर मैं अपना उपेक्षा-भाव बनाए रखता था।

भगवान ने आगे कहा कि कोई कोई श्रमण-ब्राह्मण ऐसी दृष्टि रखते हैं - 'आहार से शुद्धि होती है।' तब वे बेर, मूंग, तिल अथवा तंडुल से बने आहार का ही सेवन करते थे। मैं भी एक समय में इनमें से एक ही वस्तु के बराबर आहार को काम में लेता था। इसके फलस्वरूप मेरा शरीर अत्यंत कृश हो गया। मेरे अंग-प्रत्यंग ऐसे हो गए मानों कि सी अस्सी वर्ष के बूढ़े व्यक्ति के हों। मेरे कूले ऊंट के पांव के समान, मेरी पीठ के कंठे रस्सी की एंठन जैसे, मेरी पसलियां पुरानी इमारत की खिसकी हुई कड़ियों की नाई हो गईं। मैं पेट का चमड़ा पकड़ने लगता तो पीठ का कंठा हाथ में आता और पीठ का कंठा पकड़ने

लगता तो पेट का चमड़ा हाथ में आ जाता। मेरे पेट का चमड़ा पीठ के कान्ठों से सट गया था।

भगवान ने कहा कि ऐसी कठोर चर्चा के बावजूद मैं उत्तरमनुष्यधर्म तथा आर्यज्ञानदर्शनविशेष की पराकाष्ठा को नहीं पा सका। इसका कारण यही था कि मेरे पास निर्वाण की ओर ले जाने वाली, दुःखों का समूल नाश कराने वाली यह आर्यप्रज्ञा नहीं थी।

भगवान ने अपने निजी अनुभव के आधार पर कतिपय अन्य दृष्टियों को भी असार्थक बतलाया, जैसे – ‘संस्रण करने से शुद्धि होती है’; ‘उपपत्ति (पुनर्जन्म) से शुद्धि होती है’; ‘आवास से शुद्धि होती है’; ‘यज्ञ से शुद्धि होती है’; ‘हवन से शुद्धि होती है’।

भगवान ने इस धर्मपर्याय को ‘लोमहंसनपरियाय’ भी कहा क्योंकि इसे सुनते-सुनते भगवान की परिचर्या में जुटे हुए आयुष्मान नागसमाल को लोमहर्षण (रोमांच) हो आया था।

३. महादुःखखन्धसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। एक दिन भिक्षुओं ने उनसे कहा – “आज हम सावत्थी में भिक्षाटन के लिए जाने से पूर्व अन्यतैर्थिक (दूसरे मत वाले) परिव्राजकों के आराम में चले गए। वहां पर उन्होंने हमसे पूछा कि हमारे और श्रमण गौतम के धर्मोपदेश में क्या अंतर है जबकि हम भी श्रमण गौतम के समान कामों (कामभोगों), रूपों तथा वेदनाओं के परित्याग को प्रज्ञप्त करते हैं। इस पर हम यह सोच कर बिना अभिनंदन, बिना प्रतिवाद किए वहां से चले आए कि इस बारे में भगवान से ही पूछेंगे।” यह सुनकर भगवान ने कहा – “ऐसे लोगों से कामों, रूपों तथा वेदनाओं के आस्वाद (भोग), आदीनव (दुष्परिणाम) तथा निस्सरण (निकासी) के बारे में पूछना चाहिए। चूंकि यह उनका विषय नहीं है, इसलिए वे इसका उत्तर नहीं दे पाएंगे।”

तदनंतर भगवान ने उनको कामों, रूपों तथा वेदनाओं के आस्वाद, आदीनव तथा निस्सरण के बारे में विस्तार से समझाया। वेदनाओं की चर्चा करते समय उन्होंने व्यक्त किया कि जब कोई भिक्षु प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान तक

कि सीभी ध्यान को प्राप्त कर विहरता है, उस समय वह न तो अपने आप को, न कि सी दूसरे को, न दोनों को पीड़ा पहुँचाने को सोचता है। उस समय वेदना पीड़ा-रहित होती है और पीड़ा-रहितता वेदनाओं का श्रेष्ठ (उत्तम) आस्वाद है। वेदनाओं की अनित्यता, दुःखता तथा विपरिणामधर्मता (बदलते रहने का स्वभाव) उनका आदीनव है। वेदनाओं से छन्द-राग को दूर करना, छन्द-राग का परित्याग उनका निस्सरण है।

जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण कामों, रूपों तथा वेदनाओं के आस्वाद को आस्वाद के समान, आदीनव को आदीनव के समान और निस्सरण को निस्सरण के समान यथाभूत जानते हैं, वे स्वयं भी वेदनाओं को पूरी तरह जान लेते हैं और दूसरे को भी ऐसे ही शिक्षित कर पाते हैं। जो इस बारे में स्वयं अज्ञानी होते हैं, वे ऐसा नहीं कर पाते।

४. चूळदुक्खक्खन्धसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थुके निग्रोध आराम में विहार करते थे। उस समय महानाम शाक्य उनके पास आकर कहने लगा – “भन्ते! लंबे समय से मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे समझता हूँ – ‘लोभ चित्त का उपक्लेश है, द्वेष चित्त का उपक्लेश है, मोह चित्त का उपक्लेश है। पर कभी मेरे चित्त से लोभ वाले, कभी द्वेष वाले और कभी मोह वाले धर्म चिपटे रहते हैं। तब मुझे ऐसा होता है कि कौन-सा धर्म मेरे भीतर से छूटा नहीं है जिससे कभी चित्त से लोभ वाले, कभी द्वेष वाले और कभी मोह वाले धर्म चिपटे रहते हैं?’”

यह सुनकर भगवान ने कहा – “महानाम! वही धर्म तेरे भीतर से छूटा हुआ नहीं है जिससे कभी लोभ वाले, कभी द्वेष वाले और कभी मोह वाले धर्म तेरे चित्त से चिपटे रहते हैं। यदि वह तेरे भीतर से छूटा हुआ होता, तो तू घर में न रहता, न कामोपभोग करता। चूँकि वह धर्म तेरे भीतर से छूटा नहीं है, इसलिए तू गृहस्थ है, कामोपभोग करता है।”

तत्पश्चात् भगवान ने महानाम को कामभोगों के आस्वाद एवं आदीनव (दुष्परिणाम) के बारे में विस्तृत जानकारी दी।

इसके उपरांत भगवान ने राजगह में गिज्झकूट पर्वत पर अपने विहार करने

के समय की एक घटना का उल्लेख किया। उस समय बहुत से निर्ग्रथ इसिगिलि के पास काळसिला पर खड़े हुए, आसन छोड़, उपक्रम करते हुए दुःखपूर्ण, तीव्र वेदनाएं अनुभव कर रहे थे। भगवान द्वारा यह पूछे जाने पर कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं, उन्होंने कहा कि निगंठ नातपुत्त सर्वज्ञ हैं और उनका यह कथन है – “पहले के किए हुए दुष्कर्मों की निर्जरा इस कठोर तपस्या से करो और जो इस समय यहां काया, वाणी और मन का संवर है, उससे भविष्य के दुष्कर्मों से बचो। इस प्रकार चित्त आस्रव-रहित हो जाएगा जिससे शनैः शनैः कर्मों का क्षय, दुःख का क्षय और वेदना का क्षय हो जाएगा। वेदना का क्षय हो जाने से सारे दुःखों की निर्जरा हो जाएगी। हमें यह कथन अच्छा लगता है। हम इससे संतुष्ट हैं।”

तब भगवान द्वारा पूछे गए विभिन्न प्रश्नों के उत्तर में निर्ग्रथों ने स्वीकार किया कि हमें यह नहीं मालूम कि हम पहले थे भी या नहीं; हमने पूर्व में दुष्कर्म किये भी हैं या नहीं; हमने अमुक-अमुक दुष्कर्म किये हैं; इतने दुःख की निर्जरा हो गई है, इतने की होनी है और इतने दुःख की निर्जरा होने पर सारे दुःख की निर्जरा हो जाएगी; इसी जन्म में अकुशल धर्मों का विनाश और कुशल धर्मों का लाभ होना है। भगवान ने कहा कि यदि ऐसा ही हो तो निर्दयी, क्रूर एवं लहू से रंगे हाथों वाले नीच जाति के लोग ही प्रव्रजित होंगे।

तदनंतर चर्चा के दौरान निर्ग्रथों के मुंह से यह बात निकल गई कि मगध के राजा सेनिय बिम्बिसार भगवान से अधिक सुख-विहारी हैं। इस संदर्भ में भगवान ने उनसे पूछा कि क्या राजा बिम्बिसार बिना शरीर को हिलाए डुलाए, मौन रहते हुए सात रात-दिन एक रात-सुख अनुभव करते हुए विहार कर सकता है? निर्ग्रथों ने उत्तर दिया – नहीं। तदुपरांत उन्होंने यहां तक स्वीकार कर लिया कि राजा बिम्बिसार एक रात-दिन भी इस प्रकार विहार नहीं कर सकता। भगवान ने कहा कि मैं इस प्रकार सात रात-दिन तक विहार कर सकता हूँ। ऐसा होने पर अधिक सुख-विहारी कौन हुआ – मगधराज सेनिय बिम्बिसार अथवा मैं? इस पर निर्ग्रथों ने अंगीकार किया – “ऐसा होने पर तो मगधराज से आयुष्मान गौतम ही अधिक सुख-विहारी हैं।”

महानाम शाक्य ने संतुष्ट होकर भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

५. अनुमानसुत्त

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान भग्ग जनपद में सुसुमारगिरि के

भेसक लावन मृगदाव में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा -

“चाहे कोई भिक्षु आह्वान करे -‘आप मुझ से संभाषण करें, मैं आप के द्वारा संभाषण के योग्य हूं।’ किंतु यदि वह दुर्वचन करने वाले, दुर्वचन पैदा करने वाले धर्मों से युक्त है, और शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ, उत्साहहीन है तो फिर सब्रह्मचारी उसे संभाषण के योग्य नहीं मानते और न उस व्यक्ति में विश्वास उत्पन्न करना उचित समझते हैं।

“परंतु यदि वह सुवचन करने वाले, सुवचन पैदा करने वाले धर्मों से युक्त है, और शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ, उत्साही है तो फिर सब्रह्मचारी उसे संभाषण के योग्य मानते हैं और उस व्यक्ति में विश्वास उत्पन्न करना उचित समझते हैं।

आयुष्मान मोग्गल्लान ने विस्तार से यह भी समझाया कि दुर्वचन पैदा करने वाले और सुवचन पैदा करने वाले धर्म कौन से होते हैं।

तत्पश्चात् आयुष्मान मोग्गल्लान ने कहा -“भिक्षु अपने आप को इस प्रकार समझाए कि जो व्यक्ति पाप की इच्छा करने वाला है, पापपूर्ण इच्छा के वशीभूत है, वह मुझे अप्रिय, अरुचिकर होता है। मैं भी पाप की इच्छा करने वाला हूं, पापपूर्ण इच्छा के वशीभूत हूं। अतः मैं भी दूसरों को अप्रिय, अरुचिकर होऊंगा। यह जानते हुए भिक्षु को ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिए कि मैं पाप की इच्छा करने वाला नहीं होऊंगा, मैं पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत नहीं होऊंगा।

“भिक्षु को अपने आप को इस प्रकार परखना चाहिए - क्या मैं पाप की इच्छा करने वाला हूं, पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हूं? यदि उसे प्रतीत हो कि मैं पाप की इच्छा करने वाला हूं, पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हूं, तो उसे अकुशल धर्मों के परित्याग के लिए यत्न करना चाहिए। परंतु यदि उसे ऐसा लगे कि मैं पाप की इच्छा करने वाला नहीं हूं, पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत नहीं हूं, तो उसे उसी प्रसन्नता एवं आनंद के साथ रात-दिन कुशल धर्मों को सीखते विहार करना चाहिए।”

आयुष्मान मोग्गल्लान ने अन्य अनेक अकुशल धर्मों की भी चर्चा करते हुए अपने आशय को सुस्पष्ट किया और अंत में कहा -

“जैसे कोई चमक दमक प्रिययुवती अथवा युवक एक दम स्वच्छ दर्पण अथवा जल-पात्र में अपने मुख के प्रतिबिंब को देखते हुए - यदि वहां पर मैल दिखे तो

उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं, और वहां पर मैल नहीं दिखे तो उससे संतुष्ट रहते हैं – ‘अहो! लाभ है हमें! नितान्त स्वच्छ है हमारा मुख!’

“ऐसे ही यदि भिक्षु अपनी परख करते समय अपने आप में अकुशलधर्मों को अविनष्ट पाए, तो उसे इनके विनाश के लिए यत्न करना चाहिए। परंतु यदि वह इन्हें विनष्ट पाए, तो उसे उसी प्रसन्नता एवं आनंद के साथ रात-दिन कुशलधर्मों को सीखते विहार करना चाहिए।”

६. चेतोखिलसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

“भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु के चित्त के पांच चेतोखिल (कं टक) नष्ट नहीं हुए, चित्त के पांच बंधन भली प्रकार विच्छिन्न नहीं हुए, वह इस धर्मविनय में वृद्धि, उत्कर्ष, विपुलता को प्राप्त हो पायेगा, यह संभव नहीं है।

“चित्त के नष्ट न हुए पांच चेतोखिल (कं टक) हैं – (१) शास्ता के बारे में संदेह; (२) धर्म के बारे में संदेह; (३) संघ के बारे में संदेह; (४) शिक्षा के बारे में संदेह; तथा (५) सब्रह्मचारियों के बारे में कुपित, असंतुष्ट एवं रोषपूर्ण मानस।

“चित्त के अविच्छिन्न पांच बंधन हैं – (१) कामभोगों में राग, द्वेष, प्रेम, पिपासा, परिदाह (जलन) तथा तृष्णा का अभाव न होना; (२) ऐसे ही कायामें; (३) ऐसे ही रूप में; (४) इच्छानुसार पेट भर भोजन करके शय्या-सुख, करवट का सुख तथा आलस्य का सुख भोगते हुए विहार करना; तथा (५) किसी देव-निकाय देवयोनि का प्रणिधान करके ब्रह्मचर्य का पालन करना।

“जब तक चित्त के ये पांच कं टक तथा पांच बंधन कायम रहते हैं, तब तक वह भिक्षु का चित्त आतप्य (कठोर परिश्रम), अनुयोग (साधना), सातत्य (निरंतर अभ्यास) तथा प्रधान (दृढ़ उद्योग) के लिए नहीं झुकता है।

“जिस किसी भिक्षु के चित्त के पांच कं टक दूर हो जाते हैं, चित्त के पांच बंधन भली प्रकार कट जाते हैं, वह इस धर्मविनय में वृद्धि, उत्कर्ष, विपुलता को प्राप्त कर सकेगा, यह संभव है। ऐसा भिक्षु छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है; वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है; चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना

करता है; मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है; और पांचवां है उत्साह।

“इस प्रकार उत्साह-सहित पंद्रह अंगों से युक्त भिक्षु निर्वेद (वैराग्य), संबोधि (परमज्ञान) तथा सर्वोत्तम योगक्षेम (निर्वाण) की प्राप्ति के योग्य होता है।”

७. वनपत्थसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –“यदि कोई भिक्षु वनप्रदेश, ग्राम, नगर, जनपद अथवा व्यक्ति का आश्रय लेकर विहारे परंतु उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित न हो, असमाहित चित्त समाहित न हो, अपरिक्षीण आस्रव परिक्षीण न हों, अलब्ध अनुत्तर योगक्षेम (निर्वाण) उपलब्ध न हो, और प्रव्रजित के लिए अपेक्षित चीवर, पिंडपात आदि भी कठिनाई से मिलते हों, तो वहां नहीं रहना चाहिए, वहां से रात हो या दिन चले जाना चाहिए। यदि चीवर, पिंडपात आदि आसानी से मिल जाते हों, तो भी वहां नहीं रहना चाहिए, वहां से चले जाना चाहिए।

“परंतु यदि अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती हो, असमाहित चित्त समाहित होता हो, अपरिक्षीण आस्रव परिक्षीण होते हों, अलब्ध अनुत्तर योगक्षेम (निर्वाण) उपलब्ध होता हो, और प्रव्रजित के लिए अपेक्षित चीवर, पिंडपात आदि कठिनाई से मिलते हों, तो वहीं रहना चाहिए, वहां से चले नहीं जाना चाहिए और यदि चीवर, पिंडपात आदि आसानी से मिल जाते हों, तब तो यावज्जीवन वहीं बने रहना चाहिए, वहां से चले नहीं जाना चाहिए।”

[इस सुत्त का आशय यह है कि जहां रहने से आध्यात्मिक उन्नति होती हो, भले ही भौतिक सुविधाएं जुटाना सरल हो अथवा कठिन, वहां बने रहना चाहिए, वहां से चले नहीं जाना चाहिए।]

८. मधुपिण्डिक सुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थुके निग्रोध आराम में विहार करते समय महावन में दिवा-विहार के लिए चले गए। वहां पर दण्डपाणि शाक्य ने उनसे पूछा – “आप श्रमण किस वाद, किस सिद्धांत वाले हैं?”

भगवान ने कहा –“आवुस! जिस वाद वाला देव-मार-ब्रह्मासहित सारे लोक में, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य सारी प्रजा में, लोक में किसी के साथ झगड़ा नहीं करता; कामुकतासे रहित विहरते हुए संदेहरहित, कौकृत्यकोतहस-नहस किए हुए, भव-अभव में तृष्णारहित ब्राह्मण को जैसे संज्ञाएं नहीं सतातीं – यह है मेरा वाद, यह है मेरा सिद्धांत।”

ऐसा कहने पर दण्डपाणि सिर हिला कर चला गया।

बाद में भगवान ने निग्रोधाराम में भिक्षुओं को इस घटना की जानकारी दी। इस पर एक भिक्षु ने भगवान द्वारा दण्डपाणि को दिए गए उत्तर के बारे में स्पष्टीकरण चाहा, जिस पर उन्होंने कहा –“भिक्षुओ! जिसके कारण पुरुष को प्रपंचसंज्ञा का ज्ञान आता है, जहां अभिनंदन, अभिवादन एवं गवेषणा करने योग्य नहीं है, यही है अंत भिन्न भिन्न प्रकार के अनुशयों का, चाहे वह राग-संबंधी हों अथवा द्वेष, दृष्टि, विचिकित्सा, मान, भवराग अथवा अविद्या-संबंधी। यही है अंत दंडग्रहण, शस्त्रग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, ‘तू-तू-मैं-मैं’, पिशुनता (चुगली) और मृषावाद (झूठ) का। यहां ये पापपूर्ण अकुशल धर्म पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।”

यह कह कर भगवान वहां से उठ कर विहार में चले गए।

भगवान के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद भिक्षुओं को यह हुआ कि भगवान अपने प्रवचन का विस्तार से अर्थ बताए बिना विहार में प्रवेश कर गए हैं, अतः क्यों न भगवान द्वारा प्रशंसित और विज्ञ सत्त्वहारियों द्वारा सम्मानित आयुष्मान महाकच्चान से इसका विस्तार से अर्थ जान लिया जाए।

भिक्षुओं के अनुरोध पर आयुष्मान महाकच्चान ने उन्हें बतलाया –“आवुस! चक्षु और रूप के कारण चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, तीनों (चक्षु-इन्द्रिय, रूप-विषय, और विज्ञान) का मेल स्पर्श कहलाता है, स्पर्श के कारण वेदना होती है, जिसका वेदन (अनुभव) करता है, उसका संज्ञान (पहचान) करता है, जिसका संज्ञान करता है उसके बारे में वितर्क करता है, जिसके बारे में वितर्क करता है, उसका प्रपंच करता है। जिसका प्रपंच करता है उसके कारण पुरुष को भूत, भविष्य एवं वर्तमान से संबंधित चक्षु द्वारा विज्ञेय रूपों में प्रपंच-संज्ञा का संख्यान आता है।

“ऐसे ही श्रोत्र तथा शब्द के कारण श्रोत्रविज्ञान; घ्राण तथा गंध के कारण

घ्राणविज्ञान; जिह्वा तथा रस के कारण जिह्वाविज्ञान; काया तथा स्प्रष्टव्य के कारण कायविज्ञान; और मन तथा उसके धर्म के कारण मनोविज्ञान उत्पन्न होते हैं; और फिर पूर्ववत् आगे की प्रक्रिया चलती जाती है।

“चक्षु, रूप तथा चक्षुर्विज्ञान के होने पर ही स्पर्श का प्रज्ञापन संभव होता है, स्पर्श के प्रज्ञापन से वेदना का, वेदना के प्रज्ञापन से संज्ञा का, संज्ञा के प्रज्ञापन से वितर्क का और वितर्क के प्रज्ञापन से प्रपंच-संज्ञा-संख्या-समुदाचरण (ज्ञान के उपचार का जानना) संभव हो पाता है। “ऐसे ही श्रोत्र, शब्द तथा श्रोत्रविज्ञान; घ्राण, गंध तथा घ्राणविज्ञान; जिह्वा, रस तथा जिह्वाविज्ञान; काया, स्प्रष्टव्य तथा कायविज्ञान; और मन, उसके धर्म तथा मनोविज्ञान के होने पर ही स्पर्श का प्रज्ञापन संभव होता है और पूर्ववत् आगे का क्रम चलता जाता है।

“चक्षु, रूप तथा चक्षुर्विज्ञान के न होने पर स्पर्श का प्रज्ञापन संभव नहीं होता है जिससे पूर्व में उल्लेख-प्राप्त आगे की प्रक्रिया नहीं चल पाती। ऐसा ही श्रोत्र, शब्द तथा श्रोत्रविज्ञान; घ्राण, गंध तथा घ्राणविज्ञान; जिह्वा, रस तथा जिह्वाविज्ञान; काया, स्प्रष्टव्य तथा कायविज्ञान; और मन, उसके धर्म तथा मनोविज्ञान के संदर्भ में जानने योग्य है।”

अंत में आयुष्मान महाक च्चान ने भिक्षुओं से कहा कि मैंने अपनी समझ से भगवान द्वारा व्याख्या न कि एगए उपदेश का अर्थ बतलाया है, यदि आप चाहें तो भगवान से भी अर्थ पूछ लें और वह जैसा व्याख्यान करें, वैसा धारण करें।

इसके बारे में भिक्षुओं द्वारा भगवान से पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया – “भिक्षुओ, पंडित है महाक च्चान; महाप्रज्ञावान है महाक च्चान! यदि तुमने यह अर्थ मुझ से पूछा होता, तो मैं भी इसका ऐसे ही व्याख्यान करता जैसा महाक च्चान ने किया है। इसको ऐसे ही धारण करो।”

तदनंतर आयुष्मान आनन्द ने कहा – “भंते! जैसे कि सी बहुत भूखे व्यक्ति को कोई मधुपिंड (लड्डू) मिल जाए और वह इसे जहां-जहां से खाए, वहीं-वहीं से तृप्तिकारक स्वादु रस पाए; ऐसे ही कोईकु शाग्रबुद्धिभिक्षु इस धर्मपर्याय के अर्थ को अपनी प्रज्ञा से जहां कहीं से परखे, वहीं-वहीं से आत्मविभोरता और चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करेगा। भंते! क्या नाम है इस धर्मपर्याय का?

इस पर भगवान ने कहा – “ तो आनन्द! इसे मधुपिण्डिक-धर्मपर्याय के नाम से धारण कर।”

९. द्वेषावितर्क सुत्त

एक समय भगवान सावथी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा -

“भिक्षुओ! संबोधि प्राप्त करनेसे पहले भी मेरे मन में ऐसा होता था - ‘क्यों न मैं वितर्कों को दो टूक करके विहार करूं?’ तब मैं कामवितर्क, व्यापादवितर्क और विहिंसावितर्क को एक भाग बनाता था और नैफ्रम्यवितर्क, अब्यापादवितर्क और अविहिंसावितर्क को दूसरा भाग।

“अप्रमत्त, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहरते समय भी मुझे कामवितर्क उत्पन्न होता था। तब मैं प्रज्ञापूर्वक जानता था - ‘मुझे यह कामवितर्क उत्पन्न हुआ है। यह मेरे लिए, दूसरे के लिए, हम दोनों के लिए बाधाजनक है। यह प्रज्ञा-निरोधक, विनाश पक्ष वाला और निर्वाण तक न ले जाने वाला है।’ जैसे-जैसे मैं इन बातों का मनन करता, वैसे-वैसे कामवितर्क समाप्त होता जाता। इस प्रकार मैं बार-बार उत्पन्न होने वाले कामवितर्कों को दूर करता रहता था। ऐसे ही व्यापादवितर्क अथवा विहिंसावितर्क के उत्पन्न होने पर मैं उन्हें भी दूर किया करता था।

“भिक्षु जैसे-जैसे अधिक अनुवितर्क, अनुविचार करता है, वैसे-वैसे चित्त को झुकना होता है। यदि कामवितर्क के बारे में अधिक अनुवितर्क, अनुविचार करता है, तो वह नैफ्रम्यवितर्क को छोड़ता है और कामवितर्क को बढ़ाता है जिससे उसका चित्त कामवितर्क की ओर झुकता है। ऐसे ही व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क के बारे में भी होने से चित्त इनकी ओर झुकता है।

“अप्रमत्त, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहरते समय मुझे जब नैफ्रम्यवितर्क उत्पन्न होता था, तब मैं प्रज्ञापूर्वक जानता था - ‘मुझे यह नैफ्रम्यवितर्क उत्पन्न हुआ है। यह न मेरे लिए, न दूसरे के लिए, न हम दोनों के लिए बाधाजनक है। यह प्रज्ञापूर्वक, अविनाश-पक्ष वाला और निर्वाण की ओर ले जाने वाला है।’ मैं कभी भी इस बारे में अनुवितर्क, अनुविचार करता तो इस कारणसे भय नहीं देखता। पर बहुत देर तक अनुवितर्क, अनुविचार करने से मेरा शरीर थक जाता, जिससे चित्त भी शिथिल होकर समाधि से परे हट जाता था। सो मैं अपने भीतर ही चित्त को स्थापित करता था, जिससे यह शिथिल न हो

जाय । ऐसे ही मैं अव्यापादवितर्क अथवा अविहिंसावितर्क के उत्पन्न होने पर भी किया करता था ।

“यदि भिक्षु नैष्कर्म्यवितर्कके बारे में अधिक अनुवितर्क ,अनुविचार करता है तो वह कामवितर्क को छोड़ता है और नैष्कर्म्य वितर्क को बढ़ाता है, जिससे उसका चित्त नैष्कर्म्यवितर्क की ओर झुकता है। ऐसे ही अव्यापादवितर्क एवं अविहिंसावितर्क के बारे में भी होने से चित्त इनकी ओर झुकता है।

“मैंने न दबने वाला वीर्य आरंभ कर रखा था, न भूलने वाली स्मृति मेरे सम्मुख थी, मेरा शरीर प्रशांत और चित्त एकाग्र था। शनैःशनैः मैं प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरने लगा। एकाग्र हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेशरहित, मृदु, आनेज्जप्राप्त चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर मुझे पूर्वनिवासों की स्मृति उभर आई, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति का ज्ञान होने लगा और आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने से स्पष्ट हो गया कि जन्म समाप्त हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है। इस प्रकार प्रमादरहित, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए मेरी अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई; अंधकार नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ।”

अंत में भगवान ने एक उपमा दर्शाने के पश्चात् भिक्षुओं को कहा – “भिक्षुओ! श्रावकों के हितैषी, अनुकंपक, शास्ता ने अनुकंपा करके जो कुछ करना था वह कर दिया है। यह रहे वृक्ष-मूल, यह रहे शून्यागार! ध्यानरत हो जाओ, मत प्रमाद करो, मत पीछे पश्चात्ताप करना – यह तुम्हारे लिए हमारा अनुशासन है।”

१०. वितक्क सण्ठानसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बतलाया कि उन्हें समय समय पर निम्नांकित पांच निमित्तों का चिंतन करना चाहिए –

(१) जिस निमित्त को लेकर मन में राग, द्वेष और मोह वाले अकुशलवितर्क उत्पन्न होते हों, उन्हें छोड़ कुशलनिमित्त को मन में लाना चाहिए। ऐसा करने से अकुशल वितर्क नष्ट हो जाते हैं और मन एकाग्र हो जाता है।

(२) यदि ऐसा करने पर भी अकुशलवितर्क उत्पन्न होते हों, तो उन वितर्कों के दुष्परिणाम की जांच करनी चाहिए।

(३) यदि फिर भी अकुशलवितर्क उत्पन्न हों, तो उन वितर्कोंको मन में नहीं लाना चाहिए।

(४) यदि अकुशल वितर्क फिर भी उत्पन्न होते ही हों, तो इन वितर्कोंके संस्कार का संस्थान (आकार) मन में लाना चाहिए।

(५) यदि ऐसा करने पर भी स्थिति पूर्ववत् बनी रहे, तो दांतों को दांतों पर रख कर, जिह्वा को तालु से चिपटा कर, चित्त से चित्त का निग्रह करना चाहिए। ऐसा करने से अकुशल वितर्क नष्ट हो जाते हैं और मन एकग्र हो जाता है।

ऐसा भिक्षु वितर्क के तौर-तरीकों को वश में करने वाला कहलाता है। वह जिस वितर्क को चाहता है, उसे मन में लाता है; जिस वितर्क को नहीं चाहता, उसे मन में नहीं लाता। वह तृष्णा का उच्छेद कर, बंधन-मुक्त हो, अहंकारको सम्यक रूप से जान कर दुःख का अंत कर डालता है।

३. ओपम्मवग्ग

१. क क चूपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय मोल्लियफग्गुन नाम का भिक्षु भिक्षुणियों से अत्यधिक मेलजोल रखता था। भगवान ने उसे समझाया कि तेरे समान श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए कुलपुत्र के लिए यह ठीक नहीं है कि तू भिक्षुणियों से अत्यधिक मेलजोल रखे। तुम्हें तो यह सीखना चाहिए कि न तो मेरे चित्त में विकार जायेंगे, न मैं मुँह से बुरे वचन बोलूंगा और मैं द्वेषरहित हो, मैत्री-पूर्ण चित्त से हितचिंतक एवं अनुकंपक होकर विहरूंगा।

तत्पश्चात् भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि तुम भी बुराई को छोड़ो और अच्छाई में लगे। इससे तुम इस धर्मविनय में परिपुष्ट होगे।

तदनंतर भगवान ने भूतकाल की वेदेहिका नाम की गृहपत्नी की बात बताई जिसके बारे में यह प्रसिद्ध था कि वह विनम्र, झगड़ा न करनेवाली और शांत है। परन्तु जब काली नाम की उसकी दासी ने कुछ ढोंग रच कर उसकी परीक्षा ली तो पता चला कि उसके भीतर तो बहुत क्रोध समाया हुआ है। भिक्षुओं को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और केवल धर्म का ही सत्कार, पूजन एवं अभिवर्द्धन करते हुए विनम्रता हासिल करनी चाहिए।

इसके बाद भगवान ने बतलाया कि लोग एक दूसरे से पांच तरह से बात करते हैं - (१) समयानुसार अथवा बिना समय देखे; (२) सच अथवा झूठ; (३) कोमल अथवा कठोर; (४) सार्थक अथवा निरर्थक; और (५) मैत्रीपूर्ण चित्त से अथवा द्वेषयुक्त चित्त से। इस बारे में भिक्षुओं को तो यही सीखना चाहिए कि न तो हमारे चित्त में विकार जायेंगे, न हम मुँह से बुरे वचन बोलेंगे और हम द्वेषरहित हो, मैत्रीपूर्ण चित्त से हितचिंतक एवं अनुकंपक होकर विहार करेंगे। विरोधी व्यक्ति को भी मैत्रीपूर्ण चित्त से आप्लावित कर विहरेंगे। उसे आलंबन बना कर सारे संसार को विपुल, विस्तीर्ण, अप्रमेय मैत्रीपूर्ण, वैररहित चित्त से सराबोर कर विहार करेंगे।

अंत में भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि यदि कोई चोर-उचक्के आरे से

तुम्हारे अंग-अंग को चीरे और ऐसा होने पर तुममें से कोई अपना चित्त दूषित कर बैठे, तो वह मेरी शिक्षा के अनुसार चलने वाला नहीं होगा।

क्रकच(आरे) के दृष्टांत वाला यह उपदेश निरंतर मन में बनाए रखने से चिरकाल तक हित-सुख के लिए होता है।

२. अलगद्वूपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय अरिद्ध नाम के भिक्षु को ऐसी पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई – “मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे जानता हूँ – जिन्हें भगवान ने विघ्नकारक धर्म बतलाया है, वे सेवन किए जाने पर विघ्न नहीं कर सकते।”

इस गलत धारणा के लिए भगवान ने उसकी भर्त्सना की और कहा – “मैंने तो अनेक प्रकार से विघ्नकारक धर्मों को विघ्नकारक बतलाया है और सेवन किए जाने पर वे विघ्न ही करते हैं। मैंने कामभोगों को अस्थि-कंकाल, मांस-पेशी, तृण-उल्का, सुलगते अंगार, स्वप्न, वध-शाला, शक्ति-शूल, सर्प-शिर आदि की उपमा देते हुए इन्हें अत्यंत दुःखदायी, बहुत परेशानी पैदा करने वाला और दुष्परिणामी बखाना है।”

तत्पश्चात् भगवान ने कहा कि कोई-कोई मोघपुरुष धर्म को धारण करते हुए भी उसके अर्थ को प्रज्ञा से नहीं परखते, जिससे वे इसकी अनुभूति से वंचित रह जाते हैं। जैसे अलगद्व (सांप) की तलाश में घूमता हुआ व्यक्ति एक बड़े सांप को पा ले, परंतु उसे गलत स्थान से पकड़े जिससे सांप उसे डस ले और वह मृत्यु अथवा मृत्यु-समान दुःख को प्राप्त हो जाए, वैसे ही मोघपुरुष द्वारा दुर्गृहीत धर्म चिरकाल तक उसके अहित एवं दुःख का कारण बना रहता है।

इसके विपरीत कोई-कोई कुलपुत्र धर्म को धारण करते हुए उसके अर्थ को प्रज्ञा से परखते हैं जिससे वे इसे अनुभूति पर उतार लेते हैं। जैसे अलगद्व की तलाश में घूमता हुआ व्यक्ति एक बड़े सांप को पा ले और उसे सही प्रकार से पकड़े जिससे सांप भले उससे लिपट जाए परंतु वह उसकी कोई हानि न कर सके, वैसे ही कुलपुत्र द्वारा सुगृहीत धर्म चिरकाल तक उसके हित एवं सुख का कारण बना रहता है।

तदनंतर भगवान ने कहा –“मैं एक बेड़े के समान (भवसागर से) पार जाने के लिए धर्म का उपदेश करता हूँ, उसे पकड़ रखने के लिए नहीं।”

इसके बाद भगवान ने छः दृष्टि-स्थानों पर प्रकाश डाला। कोई अनार्य व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और दृष्ट, श्रुत, मुत, विज्ञात, प्राप्त, पर्येषित और मन द्वारा अनुविचारित पदार्थों को ‘यह मेरा है’, ‘यह मैं हूँ’, ‘यह मेरी आत्मा है’ –ऐसा समझता है। परंतु आर्य-श्रावक इन्हें ऐसा नहीं समझता जिससे वह अशनित्रास (भय) को प्राप्त नहीं होता है।

तत्पश्चात् भगवान ने यह भी समझाया कि बाहर किस प्रकार अशनित्रास होता है और कैसे अशनित्रास नहीं होता है। ऐसे ही भीतर किस प्रकार अशनित्रास होता है और कैसे अशनित्रास नहीं होता है।

भगवान ने आगे समझाया कि (शरीर के) भीतर अथवा बाहर, स्थूल अथवा सूक्ष्म, निकृष्ट अथवा उत्कृष्ट, दूर अथवा निकट, जो कुछ भी भूत-भविष्य-वर्तमान का रूप है, वह सब – ‘यह मेरा नहीं है’, ‘यह मैं नहीं हूँ’, ‘यह मेरी आत्मा नहीं है’ –ऐसे इसे यथार्थतः ठीक से जानकर देखना चाहिए। ऐसा ही वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में भी करना चाहिए। इससे आर्य-श्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से निर्वेद प्राप्त कर लेता है। निर्वेद से विराग को प्राप्त होता है। विराग प्राप्त होने पर विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर “मैं विमुक्त हो गया!” –यह जान लेता है। फिर वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –“जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।” इसी को कहते हैं “उत्क्षिप्त-परिघ”, “संकीर्ण-परिख”, “वीततृष्ण”, “निरर्गल”, “आर्य”, “पन्न-ध्वज”, “पन्न-भार”, “वि-संयुक्त”। (भगवान ने इनका आशय भी स्पष्ट किया)।

अंत में भगवान ने भिक्षुओं से कहा –“रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान तुम्हारे नहीं हैं। इन्हें (अर्थात्, इनके प्रति आसक्ति) छोड़ दो। यह छोड़ना चिरकाल तक तुम्हारे हित-सुख के लिए होगा। इस प्रकार मैंने धर्म को खोल कर भली प्रकार समझा दिया है। ऐसे सु-आख्यात धर्म में उन भिक्षुओं को कुछ भी उपदेश देने की आवश्यकता नहीं रही है जो अर्हत्, औपपातिक (अनागामी), सक दागामी, सोतापन्न हो चुके हैं। ऐसे सु-आख्यात धर्म में जो भिक्षु श्रद्धानुसारी, धर्मानुसारी हैं वे भी संबोधिपरायण हैं। जिनकी मुझ में मात्र श्रद्धा अथवा प्रेम है, वे स्वर्गपरायण हैं अर्थात्, उनका स्वर्ग-लाभ करना सुनिश्चित है।”

३. वम्मीक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान कुमारक ससप अन्धवन में विहरते थे।

कि सी शुभ्र रात्रि में एक शुभ्र देवता ने आयुष्मान कुमारक ससपके पास आकर उनसे पहेली के रूप में कुछ प्रश्न किए। रात बीत जाने पर आयुष्मान ने भगवान के पास जाकर इनका अर्थ जानना चाहा।

भगवान ने सभी प्रश्नों का समाधान किया। इनका सार यह निकला कि शैक्ष्य (निर्वाण की ओर अग्रसर) व्यक्ति को आर्य प्रज्ञा से अविद्या का नाश करना चाहिए और नीवरणों, उपादान-स्कंधों अर्थात् स्कंधों में व्याप्त उपादान, कामगुणों तथा नंदीराग (तृष्णा) को भली प्रकार छोड़ देना चाहिए।

४. रथविनीतसुत्त

एक समय मन्ताणि-पुत्र आयुष्मान पुण्ण अंधवन में दिवा-विहार के लिए गए। वहां आयुष्मान सारिपुत्त भी जा पहुँचे।

आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान पुण्ण से यह जानना चाहा कि वह किस लिए भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं – क्या शील-विशुद्धि के लिए? चित्त-विशुद्धि के लिए? दृष्टि-विशुद्धि के लिए? कांक्षावितरण-विशुद्धि (अर्थात्, संशय दूर करने) के लिए? मार्गमार्गज्ञानदर्शन-विशुद्धि के लिए? प्रतिपद-ज्ञानदर्शन-विशुद्धि के लिए? ज्ञानदर्शन-विशुद्धि के लिए?

आयुष्मान पुण्ण द्वारा हर बार नकारात्मक उत्तर दिए जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उनसे कहा कि आप ही बताइए कि किसलिए आप भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं। इस पर उन्होंने कहा कि मैं उपादान-रहित परिनिर्वाण के लिए भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करता हूँ।

तब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान पुण्ण से फिर पूछ लिया कि क्या शील-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? चित्त-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? दृष्टि-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? कांक्षावितरण-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? मार्गमार्गज्ञानदर्शन-विशुद्धि

उपादान-रहित परिनिर्वाण है? प्रतिपद-ज्ञानदर्शन-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? ज्ञानदर्शन-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है?

इस बार भी आयुष्मान पुण्ण द्वारा हर बार नकारात्मक उत्तर ही दिया गया। और यह पूछे जाने पर कि क्या उपादान-रहित परिनिर्वाण उपरोक्त धर्मों से अलग होता है, उन्होंने नकारात्मक उत्तर ही दिया।

तत्पश्चात् आयुष्मान पुण्ण ने एक दृष्टांत देकर अपने कथनको स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि जैसे कोसलनरेश पसेनदि को सावत्थी में रहते हुए साकेत में अत्यावश्यक कार्य हो जाए और वह इन दोनों नगरों के बीच सात रथविनीत स्थापित करे और फिर, क्रमशः, पहले से दूसरे, दूसरे से तीसरे, तीसरे से चौथे, चौथे से पांचवें, पांचवें से छठे और छठे से सातवें रथविनीत से यात्रा कर अपने गंतव्य स्थान पर जा पहुँचे, ऐसे ही शील-विशुद्धि, चित्त-विशुद्धि, दृष्टि-विशुद्धि, कांक्षावितरण-विशुद्धि, मार्गामार्गज्ञानदर्शन-विशुद्धि, प्रतिपद-ज्ञानदर्शन-विशुद्धि, ज्ञानदर्शन-विशुद्धि में से हर कोई अपने से अगली अवस्था तक पहुँचाने के लिए है। ज्ञानदर्शन-विशुद्धि भी तभी तक है जब तक कोई उपादान-रहित परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं हो जाता।

आयुष्मान पुण्ण ने फिर दोहराया कि मैं उपादान-रहित परिनिर्वाण के लिए भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करता हूँ।

तदनंतर दोनों आयुष्मानों ने एक दूसरे का परिचय प्राप्त किया और एक दूसरे के सुभाषित का समन्तुमोदन किया।

५. निवापसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहाँ पर उन्होंने निवाप (मृगों को फँसाने के लिये तैयार किए गए खेत) से संबंधित दृष्टांत देते हुए भिक्षुओं को बताया कि निवाप से अभिप्राय पांच कामगुणों से है, निवाप को बोनने वाला नैवापिक पापी मार है, नैवापिक परिषद मार की परिषद है और मृग-समूह श्रमण-ब्राह्मणों का नाम है। जैसे मृग अधिकतर नैवापिक तथा उसकी परिषद के चंगुल में फँस जाते हैं परंतु कोई-कोई उनकी पकड़ में नहीं आते, वैसे ही श्रमण-ब्राह्मण अधिकतर पापी मार तथा उसकी परिषद के वशीभूत हो जाते हैं, परंतु कोई-कोई उनके वश में नहीं आते।

मार के वश में आने वाले श्रमण-ब्राह्मण तीन प्रकार के होते हैं - जो लोकामिषों (सांसारिक विषयों) को भोगते हुए मदमस्त, प्रमादी एवं स्वेच्छाचारी हो जाते हैं; जो लोकामिषों से भयभीत होकर जंगल में निवास करने लगते हैं परंतु वहां कष्ट आने पर उसे न झेल सकने के कारण लोकामिषों को भोगने के लिए चले आते हैं जिससे मदमस्त, प्रमादी एवं स्वेच्छाचारी हो जाते हैं; जो अमूर्छित रह कर लोकामिषों को भोगते हैं परंतु अनेक प्रकार की मिथ्या दृष्टियों का शिकार हो जाते हैं, यथा 'लोक नित्य है', 'लोक अनित्य है', 'लोक अन्तवान है', 'लोक अन्तरहित है', 'जो जीव है वही शरीर है', 'जीव अन्य और शरीर अन्य है', इत्यादि।

चौथे प्रकार के श्रमण-ब्राह्मण वहां आश्रय ग्रहण करते हैं जहां मार और मार परिषद की पहुँच नहीं होती। यह तब होता है जब कोई भिक्षु प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। इसे कहते हैं - 'भिक्षु ने मार को अंधा कर दिया है, मार की दृष्टि से अगम्य होकर वह पापी के लिए अदृश्य हो गया है।' ऐसे ही फिर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरने पर। और तब नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त कर विहरने पर। प्रज्ञा से देखने के कारण उसके आस्रवों (चित्तमलों) का पूर्ण क्षय हो जाता है। इस अंतिम अवस्था के लिए तो यह और भी कहा जाता है - "उसने लोक में तृष्णा को पार कर लिया है।"

६. पासरासिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते हुए रम्मक ब्राह्मण के आश्रम में चले गए। वहां पर एक ब्रह्मण भिक्षुओं को उन्होंने कहा - "भिक्षुओ! एक ब्रह्मणे पर तुम्हारे लिए दो ही काम करने योग्य होते हैं - धार्मिक कथा करना अथवा आर्य मौन का पालन।"

तत्पश्चात् भगवान ने कहा कि पर्येषणा (गवेपणा) दो प्रकार की होती है - आर्य तथा अनार्य। अनार्य पर्येषणा करने वाला व्यक्ति स्वयं जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, संक्लेश धर्मों वाला होकर इन्हीं धर्मों की खोज करता है। आर्य पर्येषणा करने वाला व्यक्ति स्वयं इन धर्मों वाला होकर इनके दुष्परिणामों को देखकर इनके विपरीत अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाण की खोज करता है।

भगवान ने बतलाया – “बुद्ध बनने से पहले मैं भी अनार्य पर्येषणा करता था। फिर मुझे हुआ कि मैं क्यों न आर्य पर्येषणा करूं? तब मैं तरुण अवस्था में ही घर बार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल पड़ा। आचार्य आलार कालाम ने मुझे आकिं चन्यायतन तक विद्या सिखाई और आचार्य उदक रामपुत्र ने उससे आगे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक विद्या सिखाई और अपने बराबर के पदों पर स्थापित किया। परंतु, चूंकि इनके द्वारा सिखाए गए धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोध और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

“वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां पर मुझे निर्वाण का साक्षात्कार हुआ और यह ज्ञान उत्पन्न हुआ – ‘मेरी विमुक्ति अचल हो गई है, यह अन्तिम जन्म है, अब नया जन्म नहीं हो सकता।’

“तब मुझे ऐसे लगा कि मुझे जो गंभीर, दुर्दर्श, दुर्ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्क से अप्राप्य, निपुण तथा पंडितों द्वारा जानने योग्य धर्म प्राप्त हुआ है, यदि मैं कामभोगों में रत लोगों को इसका उपदेश करूं तो वे इसे समझ नहीं पाएंगे और इससे केवल परेशानी ही होगी। अतः मेरा मन धर्म-प्रचार की ओर न झुक अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया।

“तब सहम्पति ब्रह्मा ने प्रकट होकर मुझसे कहा – ‘भंते! आप धर्मोपदेश करें। अल्प मल वाले प्राणी भी हैं, धर्म न सुनने से वे नष्ट हो जाएंगे। (उपदेश सुनकर) वे धर्म के ज्ञाता हो जाएंगे।’

“तब मैं बुद्ध-नेत्र से लोक को निहारने लगा। मैंने पाया कि इसमें दोनों तरह के प्राणी हैं – कम मैल वाले; अधिक मैल वाले; तीक्ष्ण-इन्द्रिय, मंद-इन्द्रिय; सुंदर स्वभाव वाले, बुरे स्वभाव वाले; सुगमता से सिखाए जाने योग्य, कठिनता से सिखाए जाने योग्य; इत्यादि। यह देख मैंने ब्रह्मा से कहा – ‘जिनके श्रोत्र हैं उनके लिए अमृत के द्वार खुल गए हैं। वे श्रद्धा से मुक्त होंगे।’

“तब सर्वप्रथम मैंने अपने आचार्य आलार कालाम को धर्मोपदेश देना चाहा परंतु वे एक सप्ताह पूर्व ही प्राण त्याग चुके थे। फिर मैंने आचार्य उदक रामपुत्र को धर्मोपदेश देना चाहा परंतु वे भी पिछली रात प्राण छोड़ चुके थे। तब मैंने

अपने पुराने साथियों –पंचवर्गीय भिक्षुओं –को धर्मोपदेश देने का सोचा जो उस समय वाराणसी के इसिपतन मिगदाय में विहार कर रहे थे।

“मैंने वहां पहुँच कर उन्हें धर्म सिखाया जिसके फलस्वरूप उन्होंने जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, संक्लेश धर्मों के दुष्परिणामों को जानकर, अनुत्तर योगक्षेम निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया और उन्हें भी यह ज्ञान उत्पन्न हुआ – ‘हमारी विमुक्ति अचल हो गई है, यह अन्तिम जन्म है, अब नया जन्म नहीं हो सकता’।

इसके उपरांत भगवान ने भिक्षुओं को पांच कामगुणों के बारे में समझाया। उन्होंने कहा – “जैसे पाश-राशि (जाल के ढेर) में बँधा हुआ जंगली मृग मुसीबत में पड़ा होता है, वैसी ही दशा उन श्रमण-ब्राह्मणों की होती है जो पांच कामगुणों में लिप्त रहते हैं। बंधन-प्राप्त मृग शिकारी के वश में होता है और कामगुणों में लिप्त श्रमण-ब्राह्मण मार के वश में।

“जो श्रमण-ब्राह्मण पांच कामगुणों से अलिप्त रहते हैं वे मार की पहुँच से बाहर चले जाते हैं। मार की पहुँच से बाहर रहने का उपाय है प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरना। इस अंतिम अवस्था में तो चित्त सर्वथा आस्रव-विहीन हो जाता है।”

७. चूळहत्थिपदोपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय वच्छायन गोत्र के पिलेतिक परिव्राजक ने जाणुस्सोणि ब्राह्मण के समक्ष भगवान के प्रज्ञा-पांडित्य की बहुत सराहना की।

जाणुस्सोणि द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर वच्छायन ने कहा – “जैसे कोई चतुर नाग-वनिक नाग-वन में लंबे-चौड़े हाथी के पैर को देख कर विश्वास करने लगे – ‘अरे, महानाग है’, वैसे ही मुझे श्रमण गौतम के चार पद देखने पर यह विश्वास हो गया कि वे सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

“मैंने पहला पद यह देखा कि बाल की खाल निकालने वाले कोई-कोई क्षत्रिय पंडित श्रमण गौतम से शास्त्रार्थ करने की तैयारी करते हैं परंतु जब वह उनको

अपने धार्मिक उपदेश से समुत्तेजित, संग्रहर्षित करते हैं तब वे उन्हीं के शिष्य हो जाते हैं। दूसरा पद यह देखा कि ब्राह्मण पंडित भी यही करते हैं। तीसरा पद यह देखा कि गृहपति पंडित भी यही करते हैं। और चौथा पद यह देखा कि श्रमण पंडित भी श्रमण गौतम से शास्त्रार्थ करने के स्थान पर गृहत्यागी बन उनसे प्रव्रज्या की मांग करने लगते हैं। इस पर श्रमण गौतम उन्हें प्रव्रजित एवं उपसंपन्न करते हैं। तब वे लोग एक अंत सेवन करते हुए, प्रमादरहित हो, आत्मसंयमी बन, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फल को शीघ्र ही, इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहरने लगते हैं जिसके लिए कुलपुत्र घर से बेघर होकर प्रव्रजित होते हैं।”

यह सुनकर जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने हाथ जोड़ कर तीन बार यह उदान कहा – ‘नमस्कार है उन भगवान, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को! नमस्कार है उन भगवान, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को!! नमस्कार है उन भगवान अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को!!!’

तदनंतर जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया और उन्हें पिलोतिक परिव्राजक के साथ हुए कथा-संलाप को कह सुनाया। इस पर उन्होंने कहा कि इतने मात्र से हस्तिपद-उपमा परिपूर्ण नहीं होती।

तब भगवान ने उपमा को विस्तार से समझाया – “जैसे कोई चतुर नाग-वनिक नाग-वन में लंबे-चौड़े हाथी के पैर को देख कर भी यह विश्वास नहीं करता – ‘अरे, महानाग है’, क्योंकि नाग-वन में वामनिका नाम की हथिनियों के भी बड़े पैर होते हैं। वह लंबे-चौड़े पैर और ऊंचे डील को देख कर भी ऐसा विश्वास नहीं करता, क्योंकि कालारिक नाम की हथिनियां भी ऐसी ही होती हैं। वह लंबे-चौड़े हाथी के पैर, ऊंचे डील और ऊंचे दांतों से सुशोभित प्राणी को देख कर भी ऐसा विश्वास नहीं जमाता क्योंकि करेणुक नाम की हथिनियां भी ऐसी ही होती हैं। परंतु जब वह लंबे-चौड़े हाथी के पैर, ऊंचे डील, ऊंचे दांतों से सुशोभित और ऊंचे से शाखा को टूटते हुए देखता है और उस वृक्ष के तले, अथवा खुले स्थान पर चलते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए या लेटे हुए नाग को देखता है, तब विश्वास करने लगता है – ‘यही वह महानाग है’।

“जब इस लोक में तथागत के प्रति श्रद्धावान होकर कोई गृहपति घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है और आर्य शील-स्कंध, आर्य इन्द्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो, नीवरणों को त्याग, प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है, तो भले ही यह तथागत से सेवित, तथागत से रंजित, तथागत का पद

क हलाता है, आर्य-श्रावक इतने से ही विश्वास नहीं कर लेता कि भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

“ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान, पूर्वनिवासानुस्मृति-ज्ञान और च्युति-उत्पाद-ज्ञान भी तथागत के पद क हलाते हैं परंतु आर्य-श्रावक इनसे विश्वास नहीं कर लेता कि भगवान सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

“जब परिशुद्ध हुए समाहित चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाया जाता है, तब चारों आर्य सत्त्यों की प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानकारी होने लगती है। इस बात की भी प्रज्ञापूर्वक जानकारी होती है कि ये आस्रव हैं, यह आस्रवों का समुदय है, यह आस्रवों का निरोध है, यह आस्रवों के निरोध का उपाय है। यह भी तथागत का पद क हलाता है परंतु आर्य-श्रावक इससे भी विश्वास नहीं करता कि भगवान सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

“जब इस प्रकार जानते, देखते चित्त का आस्रवों, भवास्रवों तथा अविद्यास्रवों से विमुक्त हो जाता है तब यह ज्ञान उत्पन्न होता है – ‘मैं छूट गया’! तब भिक्षु यह भी प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है – ‘जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है। यह भी तथागत का पद है।’ इससे आर्य-श्रावक को विश्वास जमता है – ‘भगवान सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है, उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।’ इससे हस्तिपद की उपमा भी विस्तार से परिपूर्ण हो जाती है।”

यह सुनकर राजगुह्यसोपनि ब्राह्मण आश्चर्य व्यक्त करते हुए भगवान की शरण में चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

८. महाहत्थिपदोपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा – “जंगम प्राणियों के जितने पद हैं, वे सभी हाथी के पैर में समा जाते हैं। महानता में हाथी का पैर उनमें अग्र(श्रेष्ठ) क हलाता है। ऐसे ही जितने कुशलधर्म होते हैं, वे सभी चार आर्य-सत्त्यों में समाए होते हैं। आर्य-सत्य हैं – दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा।”

इसके पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त ने स्पष्ट कि याकि 'दुःख' आर्य-सत्य क्या होता है? संक्षेप में पांच उपादान-स्कंध ही दुःख हैं। ये पांच उपादान-स्कंध हैं - रूप-उपादानस्कंध, वेदना-उपादानस्कंध, संज्ञा-उपादानस्कंध, संस्कार-उपादानस्कंध तथा विज्ञान-उपादानस्कंध।

तदनंतर उन्होंने प्रत्येक उपादानस्कंध का खुलासा करने के पश्चात बतलाया कि इन पांच उपादानस्कंधों में जो छंद-राग जागता है, वही 'दुःख-समुदय' है और इनमें जो छंद-राग का त्यागना है, वही 'दुःख-निरोध' है।

९. महासारोपमसुत्त

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूटपर्वत पर विहार करते थे। वहां पर उन्होंने देवदत्त को लेकर भिक्षुओं को समझाया कि यदि कोई कुलपुत्र अपने दुःखों का अंत करने के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाए, परंतु प्रव्रज्या के फलस्वरूप लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाकर यह सोचने लगे कि मेरा संकल्प पूरा हुआ, और इस बात को लेकर अभिमान करने लगे और प्रमादी हो जाए, तो वह दुःख में ही पड़ा रहेगा। ऐसे ही वह व्यक्ति भी दुःख में ही पड़ा रहेगा जो शील-संपदा, अथवा समाधि-संपदा, अथवा ज्ञानदर्शन के आराधन से अपने संकल्प की पूर्ति होना मान लेता है, और इस बात को लेकर अभिमान करता है और प्रमादी हो जाता है। इसके विपरीत यदि कोई कुलपुत्र ज्ञानदर्शन से भी अपने आप को परिपूर्ण-संकल्पन माने और न इस बात का अभिमान करे, न प्रमाद करे तो वह अकालविमोक्ष का आराधक हो जाता है। ऐसा व्यक्ति अकालविमोक्ष से च्युत हो जाए, इसकी संभावना नहीं होती है।

इस संदर्भ में भगवान ने वृक्ष का दृष्टान्त देते हुए कहा कि कोई सार (हीर) चाहने वाला पुरुष कभी टहनी वा पत्ते को, कभी पपड़ी को, कभी छाल को और कभी फल को सार मान उन्हें काटकर ले जाता है। परंतु जो कामसार से लेना होता है, वह इनसे ले नहीं पाता। यदि वह पुरुष सचमुच सार को सार मान उसे काटकर ले जाए, तो जो कामसार से लेना होता है, वह उसके लिए समर्थ हो जाता है।

अंत में भगवान ने कहा -“यह ब्रह्मचर्य लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाने के लिए नहीं है, न शील-संपदा, न समाधि-संपदा, न ज्ञानदर्शन पाने के लिए। यह जो च्युत न होने वाली चित्त की विमुक्ति है, उसी के लिए यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही इसका अंत है।”

१०. चूळसारोपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने पिङ्गलकोच्छ नामक ब्राह्मण को कहा –“यदि कोई सार चाहने वाला पुरुष वृक्ष के सार (हीर) को छोड़ इसकी टहनी वा पत्ते, अथवा पपड़ी, अथवा छाल, अथवा फलुकोसार मान इन्हें काटकर ले जाए, तो जो काम सार से लेने योग्य होता है वह उसमें विफल रहता है।

“ऐसे ही यदि कोई पुरुष अपने दुःखों का अंत करने के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाए, परंतु प्रव्रज्या के फलस्वरूप लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाकर यह सोचने लगे कि मेरा संकल्प पूरा हुआ, और इस बात को लेकर अभिमान करने लगे, तो वह इससे उत्तम धर्म का साक्षात्कार करने के लिए न तो रुचि पैदा करता है और न उद्योग ही करता है। यही दशा उन पुरुषों की भी होती है जो शील-संपदा, अथवा समाधि-संपदा, अथवा ज्ञानदर्शन का आराधन कर अपने आप को परिपूर्ण-संकल्प मान लेते हैं।

“परंतु कोई पुरुष ऐसा भी होता है जो ज्ञानदर्शन का आराधन करके भी अपने आप को परिपूर्ण-संकल्प नहीं मानता, न इस बात को लेकर अभिमान करता है, बल्कि इससे उत्तम धर्म का साक्षात्कार करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और उद्योग करता है।”

तत्पश्चात् भगवान ने बतलाया कि ज्ञानदर्शन से उत्तम धर्म होते हैं – प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तथा संज्ञावेदयितनिरोध। इस अंतिम अवस्था पर प्रज्ञा से देख कर पुरुष के आस्रव पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।

भगवान ने आगे कहा –“यदि कोई पुरुष वृक्ष के सार को ही सार मान इसे काटकर ले जाए, तो उसे सार से जो काम करना था वह उससे कर पायेगा।

“यह ब्रह्मचर्य लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाने के लिए नहीं है, न शील-संपदा, न समाधि-संपदा, न ज्ञानदर्शन पाने के लिए। यह जो च्युत न होने वाली चित्त की विमुक्ति है, उसी के लिए यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही इसका अंत है।”

यह सुन कर पिङ्गलकोच्छ ब्राह्मण आश्चर्य व्यक्त करते हुए भगवान की शरण में चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

४. महायमक वग्ग

१. चूळगोसिङ्गसुत्त

एक समय भगवान नातिका के गिज्जकावसथ में विहार करते हुए गोसिङ्ग-सालवनदाय में जा पहुँचे जहां आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान नन्दिय तथा आयुष्मान किम्बिल विहरते थे।

वहां पर भगवान द्वारा उनका कुशल-क्षेम, आदि पूछे जाने पर उन्होंने बतलाया – “हम एक जुट होकर, प्रमुदित मन से, बिना विवाद किए, दूध वा पानी के मिश्रण के समान, एक-दूसरे को प्यार-भरी दृष्टि से देखते हुए विहरते हैं। हमारे शरीर नाना हैं, परंतु चित्त एक है।

“हम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो विहार करते हैं। हर पांचवें रोज रात-भर धार्मिक चर्चा करते हैं।

“हमें उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्यज्ञानदर्शन-विशेष प्राप्त हुआ है। इच्छा होने पर हम प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरते हैं। ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन, संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हो विहरते हैं। इस अंतिम अवस्था पर प्रज्ञा से देख कर हमारे आस्रवों का पूर्णतया क्षय हो गया है। इससे परे वा इससे उत्तम कोई सुखविहार हमें दिखलाई नहीं देता है”।

भगवान ने इसका अनुमोदन किया और तब वे तीनों आयुष्मानों को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, संप्रहर्षित कर वहां से चले गए।

दीघ परजन यक्ष को भगवान ने कहा – “ये तीनों कुलपुत्र बहुत लोगों के सुख के लिए, बहुत लोगों के हित के लिए, लोक पर अनुकंपा करने के लिए तत्पर हैं”।

२. महागोसिङ्गसुत्त

एक समय भगवान गोसिङ्ग-सालवनदाय में अनेक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थविर शिष्यों के साथ विहार करते थे।

वहां पर एक दिन सायंकाल के उपरांत आयुष्मान महामोगल्लान, आयुष्मान

महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान रेवत तथा आयुष्मान आनन्द, आयुष्मान सारिपुत्त के पास धर्म सुनने के लिए जा पहुँचे।

आयुष्मान सारिपुत्त ने बारी-बारी से इन्हीं से पूछ लिया कि रमणीय गोसिङ्ग-सालवन किस प्रकार के भिक्षु से शोभायमान हो सकता है? इस पर इन सभी ने, और अंत में स्वयं सारिपुत्त ने भी, इस बारे में अपने-अपने विचार प्रकट किए।

तत्पश्चात् वे सभी भगवान के पास चले गए और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से पूछा कि हममें से किसका कथन सुभाषित है?

इस पर भगवान ने सभी के कथनको सुभाषित बतलाया और अपनी ओर से कहा –“किस प्रकार के भिक्षु से गोसिङ्ग-सालवन शोभायमान हो सकता है? यहां, सारिपुत्त, कोई भिक्षु भोजन के उपरांत भिक्षा से निवृत्त हो, आसन मार, शरीर को सीधा रख, स्मृति को मुख के इर्द-गिर्द प्रस्थापित कर यह संकल्प करे –‘मैं तब तक इस आसन को नहीं छोड़ूंगा जब तक मेरे चित्त से पूर्णतया आस्रव छूट न जाएं।’ सारिपुत्त! ऐसे भिक्षु से गोसिङ्ग-सालवन शोभायमान होगा”।

३. महागोपालक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि ग्यारह अंगों (बातों) से युक्त ग्वाला गोयूथ की रक्षा करने के अयोग्य होता है। ये अंग हैं – (१) रूप का जानकार नहीं होता; (२) लक्षण-कुशल नहीं होता; (३) काली मक्खियों का निवारक नहीं होता; (४) व्रण को ढंकने वाला नहीं होता; (५) धुआं करने वाला नहीं होता; (६) तीर्थ (घाट) का जानकार नहीं होता; (७) पान को नहीं जानता; (८) वीथी (मार्ग) को नहीं जानता; (९) गोचर (चरागाह) का जानकार नहीं होता; (१०) बिना छोड़े (अशेष) दुह लेने वाला होता है; (११) गो-पितरों, गो-परिणायकों (वृषभों) की अतिरिक्त सेवा नहीं करता।

तदनंतर भगवान ने कहा कि ग्यारहवें अंग के अंतर्गत गो-पितरों, गो-परिणायकों के स्थान पर संघ-पितरों, संघ-परिणायकों का अध्याहार करने पर इन्हीं ग्यारह अंगों से युक्त भिक्षु भी इस धर्म-विनय में वृद्धि पाने के अयोग्य होता है।

भगवान ने यह भी बतलाया कि इन अंगों के विपरीत ग्यारह अंगों से युक्त ग्वाला गोयूथ की रक्षा करने के योग्य हो जाता है और भिक्षु भी इस धर्म-विनय में वृद्धि पाने के योग्य हो जाता है।

भगवान ने भिक्षु के संदर्भ में इन अंगों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि चार महाभूतों की यथार्थतः जानकारी होना रूप को जानना है; कर्म-लक्षण से कोई बाल होता है और कोई पंडित – इसकी यथार्थतः जानकारी होने से लक्षण-कुशल होता है; उत्पन्न हुए अकुशलधर्मों का स्वागत न करने वाला काली मक्खियों का निवारक होता है; इंद्रियों का संवर करने वाला व्रण को ढंकने वाला होता है; सुने, जाने अनुसार दूसरों को विस्तार से धर्म का उपदेश करने वाला धुआं करने वाला क हलाता है; बहुश्रुत भिक्षुओं के पास समय-समय पर जाकर प्रश्न पूछने वाला तीर्थ का जानकार होता है; धर्म-विनय के उपदेश के समय अर्थ-वेद, धर्म-वेद धर्म-प्रमोद को पाने वाला पान का जानकार होता है; आर्य अष्टांगिक मार्ग को यथार्थतः जानने वाला वीथी का जानकार होता है; चारों स्मृति-प्रस्थानों का यथाभूत ज्ञाता गोचर-कुशल होता है; श्रद्धालु गृहपतियों से चीवर, पिंडपात, भैषज्य आदि मिलने पर उनसे ग्रहण करने योग्य मात्रा को जानने वाला स-शेष दुहने वाला होता है; और स्थविर भिक्षुओं के लिए गुप्त एवं प्रकट रूप से मैत्रीयुक्त कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म करने वाला संघ-पितरों, संघ-परिणायकों की अतिरिक्त सेवा करने वाला होता है।

४. चूळगोपालक सुत्त

एक समय भगवान वज्जी देश के उक्क चेला में गंगा नदी के तीर पर विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को एक ग्वाले की मूर्खता और दूसरे की बुद्धिमत्ता से संबंधित दृष्टांत देकर समझाया कि जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण इहलोक तथा परलोक से अपरिचित हैं, मार के लक्ष्यालक्ष्य से अपरिचित हैं, मृत्यु के लक्ष्यालक्ष्य से अपरिचित हैं, उनके उपदेश को श्रद्धा-योग्य मानना चिरकाल तक अहितकर, दुःखकर होता है। इसके विपरीत जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण इहलोक तथा परलोक से परिचित हैं, मार के लक्ष्यालक्ष्य से परिचित हैं, मृत्यु के लक्ष्यालक्ष्य से परिचित हैं, उनके उपदेश को श्रद्धा-योग्य मानना चिरकाल तक हितकर, सुखकर होता है।

अंत में भगवान ने कहा –“मैं इहलोक तथा परलोक का जानकार हूँ, मार के

लक्ष्यालक्ष्य का जानकार हूं, मृत्यु के लक्ष्यालक्ष्य का जानकार हूं। जो कोई मेरे उपदेश को श्रद्धा-योग्य मानेंगे उनके लिए यह चिरकाल तक हितकर, सुखकर होगा।

“जानकार संबुद्ध ने निर्वाण की प्राप्ति के लिए कल्याणकारी अमृत-द्वार खोल दिया है। पापी मार के स्रोत को छिन्न-भिन्न, विध्वस्त और विशृंखलित कर दिया है। भिक्षुओ! खूब प्रमुदित हो, मंगलकामी हो”।

५. चूळसच्चक सुत्त

एक समय भगवान वेसाली में महावन में प्रविष्ट हो एक वृक्ष के तले दिवाविहार के लिए बैठे थे। उस समय सच्चक नाम का निर्ग्रंथपुत्र बड़ी भारी लिच्छवी-परिषद के साथ वहां जा पहुँचा।

वहां सच्चक ने भगवान से यह जानना चाहा कि आप अपने शिष्यों को कैसे शिक्षा देते हैं। इस पर उन्होंने कहा –“मैं इस प्रकार शिक्षा देता हूं – ‘भिक्षुओ! रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य है, विज्ञान अनित्य है। भिक्षुओ! रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, संज्ञा अनात्म है, संस्कार अनात्म है, विज्ञान अनात्म है। सारे संस्कार अनित्य हैं, सारे धर्म अनित्य हैं”।

सच्चक ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा –“जैसे बीज तथा प्राणी पृथ्वी का आश्रय लेकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं; जैसे बल से किए जाने वाले काम पृथ्वी का आश्रय लेकर संपन्न किए जाते हैं; ऐसे ही पुरुष भी रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का आश्रय लेकर पुण्यापुण्य का सृजन करता है”।

सच्चक ने आगे कहा –“मेरे विचार में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान मेरी आत्मा हैं”।

तब भगवान ने सच्चक से पूछा कि क्या कोई राजा अपने राज्य में कि सी को मरवा सकता है, जलवा सकता है, देश से निकलवा सकता है? सच्चक ने इसे संभव बतलाया। तब भगवान ने उससे पूछ लिया कि जो तुम यह कहते हो कि रूप मेरी आत्मा है, तो क्या यह रूप तुम्हारे वश में है –‘मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा न होवे’?

इस पर सच्चक पहले तो चुप हो गया परंतु जब भगवान द्वारा तीसरी बार यही प्रश्न पूछा गया, तो कहा – “नहीं, भो गौतम”!

फिर शनैः शनैः भगवान के अन्य प्रश्नों के उत्तर को सच्चक स्वीकार करता चला गया -

- * वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान भी मेरे वश में नहीं हैं।
- * रूप अनित्य है।
- * जो अनित्य है, वह दुःख है।
- * जो अनित्य, दुःख, परिवर्तनशील है, उसके बारे में यह सोचना उचित नहीं है - 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', 'यह मेरी आत्मा है।'
- * जो स्थिति रूप की है, वही वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान की भी है।
- * जो कोई दुःख में पड़ा है, दुःख को 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', 'यह मेरी आत्मा है' - ऐसा समझता है, वह दुःख को दूर कर सके, यह संभव नहीं है।

इसके उपरांत भगवान ने कहा कि यदि कोई सार चाहने वाला पुरुष सार (हीर) की खोज में तीक्ष्ण कुल्हाड़े के साथ वन में प्रवेश करे और वहां एक बड़े भारी केले के तने को देखे और उसे वह जड़ से काटे, सिर से भी काटे और फिर पत्तों की लपेटन को उधेड़ता चला जाए तो ऐसा करने पर भी फलु तक नहीं पा सकता, सार कहां से पायेगा ?

तब सच्चक ने भगवान से पूछा कि आपके श्रावक कैसे संदेहरहित, आत्मविश्वासी एवं आत्मनिर्भर होकर आपके शासन में विहरते हैं? इस पर भगवान ने कहा - "मेरे श्रावक भूत, भविष्य, वर्तमान का, शरीर के भीतर या बाहर का, स्थूल या सूक्ष्म, दूर या निकट - जो कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार अथवा विज्ञान होता है, उसे 'न यह मेरा है', 'न यह मैं हूँ', 'न यह मेरी आत्मा है' - इस प्रकार यथाभूत प्रज्ञा से देखते हैं"।

इसके बाद सच्चक ने फिर पूछ लिया - "भो गौतम! भिक्षु किस प्रकार अर्हंत, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास पूरा करने वाला, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, सदर्थ-प्राप्त, भवबंधन-रहित तथा सम्यक ज्ञान से विमुक्त होता है? भगवान ने इसका उत्तर भी पहले समान ही दिया।

तत्पश्चात् सच्चक ने भगवान को भिक्षु-संघ सहित अगले दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया तथा अपने यहां उत्तम भोजन करा संतुष्ट किया।

६. महासच्चक सुत्त

एक समय जब भगवान वेसाली में महावन कीकू टागारशाला में विहार करते थे, सच्चक नाम का निर्ग्रथपुत्र टहलता हुआ वहां चला आया।

सच्चक ने भगवान से कहा –“जो श्रमण-ब्राह्मण कायाकीभावना में लगे हुए चित्त की भावना नहीं करते, वे शारीरिक दुःख वेदना पाते हैं। जो चित्त की भावना में लगे हुए कायाकीभावना नहीं करते, वे चैतसिक दुःख वेदना पाते हैं। मुझे लगता है आपके शिष्य चित्त की भावना करते हैं, कायाकीभावना नहीं”।

भगवान को उसे समझाना पड़ा कि आर्यविनय में कोई व्यक्ति कैसे अभावितकाय वा अभावितचित्त होता है और कैसे भावितकाय वा भावितचित्त। मूढ़ व्यक्ति को सुख वेदना उत्पन्न होने पर वह इसमें राग करता है, जब यह वेदना निरुद्ध होकर दुःख वेदना उत्पन्न होती है तब बिलखता है। अभावितकाय होने से सुख वेदना उसके चित्त से चिपटती है और अभावितचित्त होने से दुःख-वेदना। आर्य-श्रावक को सुख वेदना उत्पन्न होने पर वह इसमें राग नहीं करता, जब वह वेदना निरुद्ध होकर दुःख वेदना उत्पन्न होती है तब बिलखता नहीं। भावितकाय होने से सुख वेदना उसके चित्त से चिपटती नहीं और न ही भावितचित्त होने से दुःख वेदना।

तब सच्चक ने भगवान से पूछा कि क्या आपको चित्त से चिपटने वाली सुख वेदना अथवा दुःख वेदना उत्पन्न होती है? इस पर भगवान ने उसे बतलाया – “मैं तरुण अवस्था में ही घरबार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल गया था। आचार्य आलार कालाम ने मुझे आर्किं चन्यायतन तक और आचार्य उद्धक रामपुत्त ने मुझे उससे आगे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक विद्या सिखाई और अपने बराबर के पदों पर स्थापित किया। परंतु, चूंकि इनके द्वारा सिखाए गए धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोध, और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

“वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां मैंने दांतों पर दांत रख कर, जिब्हा द्वारा तालु को दबाकर, चित्त का चित्त से निग्रह किया।

इससे मेरी कांख से पसीना छूटता था। फिर मैंने श्वासरहित ध्यान करना शुरू किया। इससे शरीर पर अनेक प्रकार के उपद्रव प्रकट होने लगे और मैं मृत-समान हो गया। परंतु हर अवस्था में मेरा वीर्य दबने वाला न था, मेरी स्मृति अमुपित थी, और कायातत्पर थी परंतु साधना से पीड़ित होने के कारण अशांत हो जाती थी। ऐसे में भी उत्पन्न हुई दुःख वेदना मेरे चित्त से नहीं चिपटती थी।

“तब एक बार मैंने आहार को बिल्कुल छोड़ देने को सोचा, फिर थोड़ा-थोड़ा आहार लेना आरंभ कर दिया। उस समय मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा तक पहुंच चुका था। मेरी पीठ के कांटे और पेट की खाल आपस में सट गए थे। उस समय मुझे लगता था कि जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण तप करके दुःखपूर्ण, तीव्र, कठोर, कटु वेदना अनुभव करते रहे हैं, कर रहे हैं अथवा करेंगे, वे इससे अधिक नहीं हो सकतीं। परंतु इस दुष्कर कारिका से भी मुझे उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्गज्ञानदर्शनविशेष की उपलब्धि नहीं हुई। तब मैंने सोचा कि क्या बोधि प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय भी हो सकता है ?

“तब मैंने स्थूल आहार ग्रहण कर, सबल हो, प्रथम ध्यान में विहरने का उपक्रम किया। फिर द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगा। इन ध्यानों के समय उत्पन्न हुई सुख वेदना मेरे चित्त से नहीं चिपटती थी।

“फिर एकाग्रहुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु, अडोल चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर मुझे पूर्वनिवासों की स्मृति उभर आई, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति का ज्ञान होने लगा और आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने से स्पष्ट हो गया कि ‘जन्म समाप्त हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’ इस प्रकार प्रमादरहित, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए मेरी अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, अंधकार नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ। ऐसे में उत्पन्न हुई सुख वेदना भी मेरे चित्त से नहीं चिपटती थी।”

इसके उपरांत सच्चक ने फिर भगवान से पूछ लिया कि क्या आप दिन को सोते हैं? इस पर भगवान ने कहा कि मैं ग्रीष्म के अंतिम मास में भोजन के पश्चात भिक्षा से निपट कर चतुर्गुण संघाटी को बिछा कर दाहिनी करवट स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो सोता हूँ।

सच्चक ने टिप्पणी की कि इसे तो कोई-कोईसम्मोह (मूढ़ता) का विहार कहते हैं। भगवान ने स्पष्ट कि याकि इतने से ही सम्मूढ़ या अ-सम्मूढ़ नहीं होता। जिस कि सीके संक्लेशिक, पुनर्जन्म देने वाले, कष्टकारक दुःख-परिणामी आस्रव नष्ट नहीं होते वह 'सम्मूढ़' होता है। आस्रवों के नष्ट हो जाने से 'अ-सम्मूढ़' होता है। तथागत के आस्रव उच्छिन्न-मूल, अभाव को प्राप्त, भविष्य में उत्पन्न न होने योग्य सिर-कटे ताड़ जैसे हो जाते हैं।

७. चूळतण्हासङ्ख्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। देवेन्द्र सक्क (शक्र) ने वहां जाकर भगवान से पूछा - "भन्ते! भिक्षु कै से संक्षेप में तृष्णा के क्षय हो जाने से विमुक्त हो, अत्यंत निष्ठावान, अत्यंत ब्रह्मचारी, पराकण्डापर पहुंचा हुआ, देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है" ?

भगवान ने प्रत्युत्तर दिया - "देवेन्द्र! भिक्षु यह सुना होता है - 'सभी धर्मों में अभिनिवेश (राग) नहीं करना चाहिए।' इससे वह सारे धर्मों को भली-भांति, परिपूर्णता से जान लेता है और तब सुखद, दुःखद अथवा अदुःखद-असुखद - जिस कि सी वेदना को अनुभव करता है, उसमें अनित्यानुदर्शी, विरागानुदर्शी, निरोधानुदर्शी, प्रतिनिसर्गानुदर्शी होकर विहार करता है। ऐसा करते हुए वह लोक (इंद्रियजगत) में कुछ भी ग्रहण नहीं करता। कुछ भी ग्रहण नहीं करने से उत्तेजित नहीं होता। उत्तेजित नहीं होने से इसी शरीर में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है - 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' इस प्रकार भिक्षु संक्षेप में तृष्णा के क्षय हो जाने से विमुक्त हो, अत्यंत निष्ठावान, अत्यंत योगक्षेम वाला, अत्यंत ब्रह्मचारी, पराकण्डापर पहुंचा हुआ, देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है"।

तत्पश्चात् देवेन्द्र भगवान के भाषण का अनुमोदन कर, उन्हें प्रणाम कर, प्रदक्षिणा करते हुए वहां से अंतर्धान हो गया।

उस समय आयुष्मान महामोग्गल्लान भगवान के पास ही बैठे थे। उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि क्या उस यक्ष ने भगवान के भाषण को समझ कर उसका अनुमोदन किया है अथवा बिना समझे ही? तब वह वहां से अंतर्धान हो कर तावतिस देवलोक में प्रकट हुए और वहां देवेन्द्र से भगवान के भाषित को सुनकर वापस लौटे।

८. महातण्हासङ्ख्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय साति नाम के भिक्षु को यह पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई – “मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे जानता हूँ कि वही विज्ञान संधावन, संसरण करता है, कोई दूसरा नहीं”।

भगवान को यह मालूम होने पर उन्होंने उसे बुलवा कर कहा – “मोघपुरुष! तुमने किसको मुझे ऐसा उपदेश करते हुए सुना है? मैंने तो अनेक प्रकार से विज्ञान को प्रतीत्य-समुत्पन्न (प्रत्यय, अर्थात् कारण से उत्पन्न हुआ) कहा है; प्रत्यय के बिना विज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। तू बात को ठीक से न समझ कर हम पर लांछन लगा रहा है और पाप का मारहा है। यह दीर्घकाल तक तेरे अहित एवं दुःख के लिए होगा”।

तत्पश्चात् भगवान ने अन्य भिक्षुओं को समझाया कि जिस-जिस प्रत्यय से विज्ञान उत्पन्न होता है, वही-वही उसकी संज्ञा होती है। जैसे चक्षु के प्रत्यय से रूप में उत्पन्न होने वाला विज्ञान चक्षुर्विज्ञान कहलाता है। ऐसे ही श्रोत्रादि के अध्याहार से श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वा-विज्ञान, काय-विज्ञान तथा मनो-विज्ञान अपनी-अपनी संज्ञा पाते हैं।

तदनंतर भगवान ने पांच स्कंधों और चार प्रकार के आहारों का विश्लेषण करने के बाद कहा – “भिक्षुओ! अविद्या के कारण संस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण षडायतन, षडायतन के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म, जन्म के कारण जरा-मरण, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास (परेशानी) होते हैं। इस प्रकार इस निरे दुःख-स्कंध की उत्पत्ति होती है।

“परंतु अविद्या के पूरी तरह विराग, निरोध से संस्कार का निरोध होता है, संस्कार के निरोध से विज्ञान, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप, नाम-रूप के निरोध से षडायतन, षडायतन के निरोध से स्पर्श, स्पर्श के निरोध से वेदना, वेदना के निरोध से तृष्णा, तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जाति (जन्म), जाति के निरोध से जरा-मरण, शोक, विलाप, दुःख,

दौर्मनस्य तथा उपायास कानिरोध होता है। इस प्रकार इस निरे दुःख-स्कंध का निरोध हो जाता है”।

भगवान ने प्रश्नोत्तर के माध्यम से भिक्षुओं को यह हृदयंगम कराया –‘इसके होने पर यह होता है; इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है’, और इसी प्रकार ‘इसके न होने पर यह नहीं होता; इसका निरोध होने पर इसका निरोध होता है’।

तत्पश्चात् भगवान ने बतलाया कि कैसे कोई कुमार इन्द्रियों के परिपक्व हो जाने पर पहले खिलौनों से खेलता है और फिर बड़ा होकर पांच प्रकार के कामगुणों का सेवन करता हुआ राग और द्वेष करने लगता है। वह वेदनाओं का अभिनंदन कर तृष्णा-जनित उपादान से ग्रस्त हो जाता है जिससे, क्रमशः, निरे दुःख-स्कंध की उत्पत्ति होती है। फिर जब कभी संसार में कोई तथागत उत्पन्न होते हैं और कोई गृहपति उनके द्वारा साक्षात्कार कि एगए धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर आर्य शील-स्कंध, आर्य इंद्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो, ध्यान के लिए बैठ, पांचों नीवरणों को चित्त से हटा, क्रमशः, प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरता है, तब वह चक्षु से रूप को देख कर प्रिय रूप में रागयुक्त नहीं होता, न अप्रिय रूप में द्वेषयुक्त होता है, बल्कि प्रमाणरहित चित्त के साथ कायिक स्मृति को बनाए रखता है। वह उस चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को यथार्थतः जान लेता है जिसमें उसके सारे अकुशल धर्म निरुद्ध हो जाते हैं। वह वेदनाओं का अभिनंदन नहीं करता जिससे तृष्णा-जनित उपादान का निरोध हो जाता है। उपादान का निरोध हो जाने से, क्रमशः, निरे दुःख-स्कंध का निरोध हो जाता है।

अंत में भगवान ने कहा –“भिक्षुओ! मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई इस तृष्णा-संक्षय-विमुक्ति को धारण करो और साति को तृष्णा के महाजाल में फँसा हुआ जानो”।

९. महाअस्सपुरसुत्त

एक समय भगवान अङ्ग देश में अस्सपुर नाम के निगम में विहार करते थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि वे सही अर्थ में ‘श्रमण’ कैसे कहला सकते हैं।

भगवान ने कहा कि श्रमण-भाव के लिए केवल लज्जाशील और संकोचशील

होना ही पर्याप्त नहीं है। इससे आगे भी सीखना होता है कायिक आचरण की परिशुद्धता; वाचिक आचरण की परिशुद्धता; मानसिक आचरण की परिशुद्धता; आजीविका की परिशुद्धता; इन्द्रिय-संवर; भोजन की मात्रज्ञता; जागरण में तत्परता; स्मृति-संप्रज्ञान से युक्तता।

भगवान ने आगे कहा कि इसके पश्चात् भिक्षु एकान्त-वास करता हुआ ध्यान करने के लिए बैठता है और पांचों नीवरणों से चित्त का परिशोधन करता है। फिर प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। तदनंतर एकाग्र हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु, अडोल चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर पूर्वनिवासों को स्मरण करता है, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति को जानने लगता है और आस्रवों के क्षय का यथार्थ ज्ञान हो जाने से वह प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है – ‘जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।

अंत में भगवान ने कहा कि ऐसा भिक्षु ‘श्रमण’ भी कहलाता है, ‘ब्राह्मण’ भी, ‘स्नातक’ भी, ‘वेदगू’ भी, ‘श्रोत्रिय’ भी, ‘आर्य’ भी, ‘अर्हंत’ भी। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भिक्षु को ऐसा कहने के क्या कारण हैं।

१०. चूळअस्सपुरसुत्त

एक समय भगवान अङ्ग देश में अस्सपुर नाम के निगम में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि कोई भिक्षु कैसे श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपद पर आरूढ़ नहीं होता है और कैसे आरूढ़ होता है।

श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपद पर अनारूढ़ भिक्षु के राग, द्वेष, क्रोध, वैर, पाखंड, तिरस्कार, ईर्ष्या, मात्सर्य, शठता, माया, पापेच्छा या मिथ्या दृष्टि नष्ट नहीं हुए होते। उसके किसी बाह्याचार के कारण भी उसमें श्रमण-भाव नहीं आ जाता। यदि ऐसा होता तो उसको मित्र-अमात्य, जाति-बंधु पैदा होते ही उसे वैसा बाह्याचारी बना देते और कहते कि इस बाह्याचार के कारण तुम्हारे राग, द्वेष, क्रोधादि नष्ट हो जायेंगे।

श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपदा पर आरूढ़ भिक्षु के राग, द्वेष, क्रोध, वैर, पाखंड, तिरस्कार, ईर्ष्या, मात्सर्य, शठता, माया, पापेच्छा या मिथ्या दृष्टि नष्ट हुए होते हैं। वह इन पापकारी, अकुशलधर्मों से अपने आप को विमुक्त देखता

है। इससे उसमें प्रमोद जागता है, प्रमोद से प्रीति होती है, प्रीति होने से काया प्रश्रब्ध होती है, काया प्रश्रब्ध होने से सुख का अनुभव होता है और सुखी होने से चित्त समाहित हो जाता है। तब वह क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा-युक्त चित्त से, एक-एक करके सभी, दिशाओं को आप्लावित कर विहरता है। इसकी निरंतर भावना करने से भीतर शांति प्राप्त होती है। भीतर शांति प्राप्त होने से भिक्षु श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपदा पर आरूढ़ हुआ होता है। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र – इनमें से किसी भी कुलका व्यक्ति हो, वह आस्रवों का क्षय हो जाने से 'श्रमण' कहलाने लगता है।

५. चूळयमक वग्ग

१. सालेय्यक सुत्त

एक समय भगवान कोसल देश में चारिका करते हुए साला नामक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। उस समय उस ग्राम के ब्राह्मण-गृहपति भगवान के दर्शनार्थ गए। तब उनकी जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उन्हें बतलाया कि कोई-कोई प्राणी अधर्माचरण, विषम-आचरण के कारण शरीर छोड़ने पर अपाय-गति को प्राप्त होते हैं और कोई-कोई धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण के कारण सु-गति को।

तदुपरांत भगवान ने उन्हें बतलाया कि काया, वाणी तथा मन से संबंधित अधर्माचरण, विषम आचरण निम्न प्रकार के होते हैं -

* कायिक - (१) प्राणियों के प्रति निर्दयता, (२) अदिग्नादान (न दी हुई वस्तु हर लेना), (३) कामों में मिथ्याचार।

* वाचिक - (१) मिथ्यावादिता, (२) चुगलखोरी, (३) कठोर भाषण, (४) प्रलाप।

* मानसिक - (१) लोभ, (२) ब्यापाद, (३) मिथ्या दृष्टि।

फिर यह भी बतलाया कि धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण निम्न प्रकार के होते हैं -

* कायिक - (१) प्राणियों के प्रति दयालुता, (२) अदिग्नादान से विरति, (३) कामों में मिथ्याचार से विरति।

* वाचिक - (१) मिथ्यावादिता से विरति, (२) चुगलखोरी से विरति, (३) कठोर भाषण से विरति, (४) प्रलाप से विरति।

* मानसिक - (१) लोभ का अभाव, (२) अब्यापाद, (३) सम्यक दृष्टि।

अंत में भगवान ने बतलाया कि यदि धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण करने वाला व्यक्ति यह आकांक्षा करे कि मैं शरीर छोड़ने पर वैभव-संपन्न क्षत्रियों, अथवा ब्राह्मणों, अथवा वैश्यों, अथवा अमुक-अमुक देवताओं के बीच उत्पन्न होऊँ, तो हो सकता है उसकी आकांक्षा पूरी हो जाए। इसका कारण यह होता है

कि वह वैसा ही धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण करने वाला होता है। वह तो यदि चाहे कि मैं आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरूँ तो, इसी कारणवश, यह भी संभव हो सकता है।

भगवान के वचन सुनकर रगृहपतियों ने आश्चर्य व्यक्त किया और वे भगवान की शरण चले गए, और धर्म तथा संघ की भी।

२. वेरञ्जक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय वेरञ्जा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी कि सीकार्यवश सावत्थी में निवास करते थे।

एक बार वे भगवान के दर्शनार्थ उनके पास गए। वहाँ उनकी जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उन्हें बतलाया कि कोई-कोई प्राणी अधर्माचरण, विषम-आचरण के कारण शरीर छोड़ने पर अपाय गति को प्राप्त होते हैं और कोई-कोई धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण के कारण सु-गति को। (शेष 'सालेय्यकसुत्त' के समान)

३. महावेदल्लसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहाँ आयुष्मान महाकोट्टिक ने आयुष्मान सारिपुत्त से प्रज्ञा, विज्ञान, वेदना, संज्ञा, सम्यक दृष्टि, भव-पुनर्भव, प्रथम ध्यान, पांच इन्द्रियां, आयु संस्कार तथा वेदनीय धर्म, संज्ञावेदयितनिरोध आदि से संबंधित अनेक प्रश्न पूछकर इनका समाधान प्राप्त किया।

अंत में आयुष्मान महाकोट्टिक ने चेतोविमुक्ति से संबंधित भी अनेक प्रश्न पूछे जिनका समाधान करते हुए आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि यह जो अप्रमाणा, आर्किचन्या तथा अनिमित्त चेतोविमुक्तियां हैं, उनमें अकोप्या चेतोविमुक्ति सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि यह राग, द्वेष और मोह से शून्य होती है।

४. चूळवेदल्लसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन के कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस समय विसाख नाम के उपासक ने धम्मदिन्ना भिक्षुणी से सत्काय, आर्य अष्टांगिक मार्ग, समाधि, संस्कार, संज्ञावेदयितनिरोध, वेदना आदि से संबंधित अनेक प्रश्न पूछे जिनका उसने संतोषजनक ढंग से उत्तर दिया। फिर भी उसने कहा कि यदि चाहो तो भगवान से भी इन्हीं प्रश्नों को पूछो और जैसा वह कहें वैसे ही धारण करो।

उपासक विसाख द्वारा भगवान को धम्मदिन्ना भिक्षुणी के साथ हुए अपने कथा-संलाप का ब्यौरा दिए जाने पर उन्होंने कहा – “धम्मदिन्ना पंडिता है, महाप्राज्ञा है। यदि तुम मुझसे भी यही बात पूछते, तो मैं भी ऐसे ही उत्तर देता जैसा धम्मदिन्ना ने दिया है। अतः इसे इसी तरह धारण करो”।

५. चूळधम्मसमादानसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को चार प्रकार के धर्मसमादान बतलाए –

- (१) वर्तमान में सुखद परंतु आगे के लिए दुःख-परिणामी; और
- (२) वर्तमान में भी दुःखद और आगे के लिए भी दुःख-परिणामी;
- (३) वर्तमान में दुःखद परंतु आगे के लिए सुख-परिणामी; और
- (४) वर्तमान में भी सुखद और आगे के लिए भी सुख-परिणामी।

तदनंतर भगवान ने समझाया कि पहले धर्मसमादान के अंतर्गत व्यक्ति कामभोगों में डूबे रहते हैं और शरीर छोड़ने के बाद अपाय गति पाते हैं। दूसरे धर्मसमादान के अंतर्गत वे कायाके आतापन-संतापन में लगे रहते हैं और शरीर छोड़ने के बाद अपाय गति पाते हैं। तीसरे धर्मसमादान के अंतर्गत वे स्वभाव से ही तीव्र राग, द्वेष एवं मोह वाले होकर दुःख-दौर्मनस्य को झेलते हुए भी परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं और शरीर छोड़ने पर सुगति पाते हैं। चौथे धर्मसमादान के अंतर्गत वे स्वभाव से ही तीव्र राग, द्वेष एवं मोह वाले न होकर

दुःखदौर्मनस्य को अनुभव न करते हुए प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरते हैं और शरीर छोड़ने पर सुगति पाते हैं।

६. महाधम्मसमादानसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि अनाड़ी व्यक्ति न तो सेवन करने योग्य धर्मों को जानता है, न अ-सेवन करने योग्य धर्मों को। अतः वह अ-सेवनीय धर्मों के सेवन में लग जाता है, सेवनीय धर्मों के नहीं। इससे उसके अनिष्ट धर्म बढ़ने लगते हैं और इष्ट धर्म क्षीण होने लगते हैं। इसके विपरीत आर्य श्रावक सेवन करने योग्य धर्मों को भी जानता है और अ-सेवन करने योग्य धर्मों को भी। अतः वह अ-सेवनीय धर्मों का सेवन नहीं करता, बल्कि सेवनीय धर्मों के सेवन में लगता है। इससे उसके अनिष्ट धर्म क्षीण होते हैं और इष्ट धर्म बढ़ते हैं।

तत्पश्चात् भगवान ने उन्हें बतलाया कि चार धर्मसमादान होते हैं -

- (१) वर्तमान में दुःखद और भविष्य में भी दुःख-परिणामी,
- (२) वर्तमान में सुखद परंतु भविष्य में दुःख-परिणामी,
- (३) वर्तमान में दुःखद परंतु भविष्य में सुख-परिणामी, और
- (४) वर्तमान में सुखद और भविष्य में भी सुख-परिणामी।

अविद्या-ग्रस्त व्यक्ति इन धर्मसमादानों को यथार्थतः नहीं जानता। वह भविष्य में दुःखपरिणामी धर्मसमादानों का सेवन और सुखपरिणामी धर्मसमादानों का अ-सेवन करता है। इसके फलस्वरूप उसके अनिष्ट धर्म बढ़ते और इष्ट धर्म क्षीण होने लगते हैं। इसके विपरीत, विद्या को प्राप्त हुआ व्यक्ति इन धर्मसमादानों को यथार्थतः जानता है। वह भविष्य में दुःख-परिणामी धर्मसमादानों का अ-सेवन और सुखपरिणामी धर्मसमादानों का सेवन करता है। इसके फलस्वरूप उसके अनिष्ट धर्म क्षीण होते हैं और इष्ट धर्म बढ़ते हैं।

इसके अनंतर भगवान ने इन धर्मसमादानों के उदाहरण भी दिए और इन्हें स्पष्ट करने के लिए उपमाएं भी कहीं।

७. वीमंसक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को बताया कि दूसरे के मन की बात न जानने वाले मीमांसक भिक्षु को तथागत के बारे में जांच करनी चाहिये कि वह सम्यक संबुद्ध हैं अथवा नहीं। इसके लिए मीमांसक को अपनी जांच के फलस्वरूप, क्रमशः, इन निर्णयों पर पहुंचना चाहिए –

- * आंख और कान से जानने योग्य मलिन धर्म (पाप) तथागत में नहीं हैं।
- * आंख और कानसे जानने योग्य पाप-पुण्य-मिश्रित धर्म तथागत में नहीं हैं।
- * आंख और कान से जानने योग्य अवदात धर्म (पुण्य) तथागत में हैं।
- * यह दीर्घकालसे इस कुशलधर्म से युक्त हैं, हाल ही में युक्त नहीं हुए हैं।
- * यह ख्याति-प्राप्त, यश-प्राप्त हैं और इनमें कोई दोष नहीं आए हैं।

* यह भय से नहीं, बिना भय के विरक्त हुए हैं; और राग के क्षय के कारण वीतराग होने से काम-भोगोंका सेवन नहीं करते हैं। इसके पश्चात मीमांसक को तथागत से भी पूछना चाहिए कि उनमें आंख और कानसे जानने योग्य मलिन धर्म (पाप), पाप-पुण्य-मिश्रित धर्म, अवदात धर्म (पुण्य) क्या हैं? उनके उत्तर से भी पूर्वोक्त निर्णयों की पुष्टि ही होगी।

ऐसे शास्ता के पास धर्म सुनने के लिए जाना चाहिए। उनके उत्तमोत्तम धर्मोपदेश सुनकर उनके प्रति श्रद्धा जागती है – “भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है, उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है”।

जब किसी व्यक्ति में तथागत के प्रति इन व्यञ्जनों से दर्शन-मूलक दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है, तब वह किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा अथवा लोक में किसी भी व्यक्ति द्वारा हटाई नहीं जा सकती है।

८. कोसम्बियसुत्त

एक समय भगवान के कोसम्बी के घोसिताराम में विहरते समय कोसम्बी में भिक्षु परस्पर कलह एवं विवाद करते थे। भगवान ने उन्हें बुला कर कहा – “भिक्षुओ! जिस समय तुम परस्पर कलह एवं विवाद करते हो, उस समय अपने

सब्रह्मचारियों के प्रति तुम्हारा प्रच्छन्न अथवा प्रकट, मैत्रीपूर्ण, न तो कायिककर्म उपस्थित रहता है, न वाचिक कर्म, न मानसिक कर्म। यह चिरकाल तक तुम्हारे अहित एवं दुःख के लिए होगा।”

तत्पश्चात् उन्होंने सभी भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –“ये छः धर्म आपसी मेलजोल, अ-विवाद तथा एकीभाव के लिए होते हैं –(१) सब्रह्मचारियों के प्रति प्रच्छन्न अथवा प्रकट, मैत्रीपूर्ण, कायिक कर्म का उपस्थित होना; (२) ऐसे ही वाचिक कर्म का; (३) ऐसे ही मानसिक कर्म का; (४) धर्म से प्राप्त होने वाले लाभों को शीलवान सब्रह्मचारियों के साथ मिल-बांट कर उपभोग करना; (५) समाधि को प्राप्त कराने वाले निष्कलंक शीलों से युक्त होकर प्रच्छन्न एवं प्रकटरूप से सब्रह्मचारियों के साथ विहार करना; और (६) सम्यक रूप से दुःख का नाश कराने वाली आर्य दृष्टि से युक्त होकर प्रच्छन्न एवं प्रकटरूप से सब्रह्मचारियों के साथ विहरना”।

तदनंतर भगवान ने कहा –“इन छः धर्मों में जो सम्यक रूप से दुःख का नाश कराने वाली आर्य दृष्टि है, वह कूटागार के कूट (शिखर) के समान सब में अग्र (श्रेष्ठ) होती है।

“इस दृष्टि से सात लोकोत्तर आर्य-ज्ञान प्राप्त होते हैं – (१) सच्चाईयों को जानने के लिए मानस का स्थिर-संकल्प होना; (२) भीतर शांति एवं सुख अनुभव करना; (३) अन्य परंपरा वालों का ऐसी दृष्टि से संपन्न न होना; (४) दोष हो जाने पर अपने शास्ता अथवा विज्ञ सब्रह्मचारियों के सामने उसे प्रकट कर देना और भविष्य के लिए सतर्क रहना; (५) सब्रह्मचारियों के छोटे-बड़े करणियों को ध्यान में रखना; (६) तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय को मन लगा कर सुनना; और (७) इस धर्म-विनय के उपदेश के समय अर्थ-वेद, धर्म-वेद तथा धर्म से संसिक्त प्रमोद प्राप्त करना”।

अंत में भगवान ने कहा कि इन सात अंगों से युक्त आर्य-श्रावक ‘सोतापन्न’ हो जाता है।

९. ब्रह्मनिमन्तनिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार कर रहे थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –“भिक्षुओ! एक

समय मेरे उक्कट्टा के सुभगवन में विहरते समय बक नामक ब्रह्मा को यह पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई - 'यह (ब्रह्मलोक) नित्य, ध्रुव, शाश्वत, केवल, अच्यवनधर्मा है; यह न जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न च्युत होता है, न उपजता है। इससे आगे कोई दूसरा निस्सरण (निकास) नहीं है।

“तब मैं अपने चित्त से बक ब्रह्मा के चित्त की बात जानकर, वहीं अंतर्धान होकर, उस ब्रह्मलोक में जा प्रकट हुआ और उसे कहा कि तुम अविद्या में पड़े हो जो अ-नित्य को नित्य, अ-ध्रुव को ध्रुव, अ-शाश्वत को शाश्वत, अ-केवल को केवल, अच्यवनधर्मा को अ-च्यवनधर्मा कहते हो और जो जन्मता है, जीर्ण होता है, मरता है, च्युत होता है, उपजता है, उसे कहते हो - 'यह न जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न च्युत होता है, न उपजता है'; और आगे निस्सरण (निकास) होने पर भी यह कहते हो - 'इससे आगे कोई दूसरा निस्सरण नहीं है'।

“ब्रह्मा! मैं तुम्हारी गति और प्रभाव को जानता हूँ कि तुम कैसे महान ऋद्धि वाले, महानुभाव तथा महाशक्तिशाली हो। पर दूसरे भी काय (लोक समूह) हैं जिन्हें तुम न जानते हो, न देखते हो, कि तुम उन्हें जानता-देखता हूँ। तुम आभस्सर नामक लोक से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुए हो। यहाँ बहुत लंबा निवास करने से तुम्हें उसकी स्मृति नहीं है, पर मैं उसे जानता-देखता हूँ। ऐसे ही सुभकिण्ह, वेहप्फल, अभिभू नाम के लोक हैं जिन्हें तुम न जानते हो, न देखते हो, पर मैं उन्हें जानता-देखता हूँ। इस प्रकार मैं अभिज्ञा (ज्ञान) में तुम्हारे से बढ़ कर हूँ।

“ब्रह्मा! मैंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि को इनके सही स्वरूप में जानकर इनसे आसक्ति नहीं की और इनसे परे की सच्चाई (निर्वाण) को भी जाना। इससे भी मैं अभिज्ञा में तुम्हारे से बढ़ कर हूँ।

“तब बक ब्रह्मा ने मुझे अंतर्धान करने की चेष्टा की परंतु वह इसमें सफल नहीं हो पाया। इस पर मैंने बक से कहा कि यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें अंतर्धान करूँ। उसकी स्वीकृति मिलने पर मैंने इस प्रकार का ऋद्धि-बल प्रयोग किया जिससे ब्रह्मा, ब्रह्म-परिषद और ब्रह्म-पार्षद मेरे शब्द सुनते थे, पर मुझे देख नहीं पाते थे। उस समय मैंने यह गाथा कही - 'भव में भय को देख, और भव को वि-भव का इच्छुक देख, मैंने भव का स्वागत नहीं किया, और नंदी (तृष्णा) को स्वीकार नहीं किया।

“मेरी महान ऋद्धिमत्ता और महानुभावता को देखकर ब्रह्मा, ब्रह्म-परिषद तथा ब्रह्म पार्षद आश्चर्यचकित हो गए और कहने लगे कि शाक्यकुल से प्रव्रजित श्रमण गौतम के समान कोई दूसरा श्रमण अथवा ब्राह्मण हमने इससे पहले नहीं देखा।

“तब पापी मार ने एक ब्रह्म पार्षद में आविष्ट हो मुझे दूसरों को धर्मोपदेश देने से हतोत्साहित किया। इस पर मैंने उससे कहा कि मैं तुझे पहचानता हूँ, तू पापी मार है। तुझे लगता है कि श्रमण गौतम के धर्मोपदेश से लोग तेरे चंगुल से बाहर निकल जाएंगे, इसीलिए मुझे हतोत्साहित करता है”।

यह सुत्त मार के प्रलोभन में न पड़ने और ब्रह्मा के निमंत्रण से कहा गया, अतः इसका नाम ‘ब्रह्मनिमन्तनिक’ पड़ा।

१०. मारतज्जनीयसुत्त

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान भग्ग देश में सुसुमारगिरि के भेसक ळावन मृगदाय में विहार करते समय टहल रहे थे। उस समय पापी मार उनके पेट में घुसा था।

आयुष्मान महामोग्गल्लान को ऐसा हुआ कि क्यों मेरा पेट गुड़गुड़ा रहा है? तब वह विहार में प्रवेश कर, बिछे आसन पर बैठ अपने मन में इसका कारण खोजने लगे। उन्होंने पापी मार को पहचान लिया और उसे कहा – “निकल, पापी! मत तथागत या उसके श्रावक को सता, मत यह चिरकाल-पर्यंत तेरे लिए अहितकर, दुःखप्रद हो”।

तत्पश्चात् आयुष्मान महामोग्गल्लान ने मार को बतलाया – “भूतकाल में मैं दूसी नाम का मार था और तू मेरा भांजा था। उस समय भगवान ककुसन्ध अर्हत, सम्यक-संबुद्ध लोक में उत्पन्न हुए थे। विधुर और सज्जीव उनके मुख्य श्रावक-युगल थे।

“दूसी मार शीलवान, कल्याणधर्माभिक्षुओं की गति-अगति को नहीं जानता था, अतः ब्राह्मण-गृहपतियों को ही उकसाता रहता था जिससे उनके माध्यम से उसे उन भिक्षुओं को गिराने का अवसर मिलता रहे”।

“एक बार भगवान ककुसन्ध आयुष्मान विधुर को पीछे ले ग्राम में भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। तब दूसी मार ने एक बालक में आविष्ट हो एक कंकड़ले, उसे

आयुष्मान विधुर के सिर पर दे मारा जिससे उनका सिर फट गया। फिर भी आयुष्मान विधुर भगवान का अनुगमन करते रहे। तब भगवान ने नागावलोकन किया। इस अवलोकन मात्र से दूरी मार अपने स्थान से च्युत हो महानरक में उत्पन्न हुआ और वहां सहस्रों वर्षों तक पकता रहा।

“आग नहीं चाहती कि मैं मूर्ख को जलाऊं, मूर्ख ही जलती आग से भिड़ कर जलता है। ऐसे ही मार! तू भी तथागत से भिड़ कर आग पकड़ते मूर्ख के समान स्वयं जलेगा। मार ! तू बुद्ध से परे हट और भिक्षुओं से गिरने की आशा मत कर”।

इस प्रकार भेसक ढावन में भिक्षु ने मार को फटकारा जिससे वह खिन्न हो, वहीं अंतर्धान हो गया।

मज्झिमनिकाय भाग - २

१. गहपतिवग्ग

१. कन्दरकसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ चम्पा में गगगरा पुष्करिणी के तीर पर विहार करते थे। हाथीवान के पुत्र पेस्स और कन्दरकपरित्राजक वहां जा पहुंचे।

एक दम मौन धारण किए भिक्षु-संघ को देख कर कन्दरक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने भगवान से कहा कि जैसे आपने भिक्षु-संघ को सुप्रतिपन्न किया है, वैसे ही भूतकाल में सम्यक संबुद्धों ने किया होगा और ऐसे ही भविष्य में सम्यक संबुद्ध करेंगे।

भगवान ने इसकी पुष्टि की और उसे बतलाया कि इस भिक्षु-संघ में क्षीणास्रव अर्हत भी हैं और चारों स्मृति-प्रस्थानों में स्थिरचित्त हो विहरने वाले शैक्ष्य भी।

फिर उन्होंने पेस्स से चर्चा के दौरान उसे चार प्रकार के पुद्गलों की जानकारी दी - (१) आत्मंतप, (२) परंतप, (३) आत्मंतप-परंतप, तथा (४) न-आत्मंतप-न-परंतप। इनमें से पहले प्रकार का व्यक्ति अपने आप को संतापित करने वाले कामों में लगा होता है, दूसरे प्रकार का व्यक्ति दूसरों को संतापित करने वाले कामों में, तीसरे प्रकार का व्यक्ति अपने आप को भी और दूसरों को भी संतापित करने वाले कामों में, और चौथे प्रकार का व्यक्ति न अपने आप को और न दूसरों को संतापित करने वाले कामों में व्यापृत होता है।

पेस्स तथा कन्दरक के चले जाने के पश्चात् भगवान ने भिक्षुओं को चारों प्रकार के पुद्गलों की सोदाहरण विस्तृत जानकारी दी। न-आत्मंतप-न-परंतप पुद्गल की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि ऐसे व्यक्ति का चित्त पूरी तरह से आस्रव-विहीन हो जाने से उसमें ज्ञान जागता है - 'मैं विमुक्त हो गया! मैं

विमुक्त हो गया!’ और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’ वह इसी जीवन में वितृष्णा, शांत, शीतल, सुख का अनुभव करने वाला और स्वयं ब्रह्मभूत होकर विहार करने लगता है।

२. अट्टक नागरसुत्त

एक समय आयुष्मान आनन्द वेसाली के वेळुवगामक में विहार करते थे। वहां अट्टक नगर के दसम गृहपति ने उनसे पूछा – “भंते! क्या जाननहार, देखनहार, अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध भगवान ने कोई ऐसा एक धर्मोपदेश कि या है जिसमें प्रमादरहित, उद्योगशील, तत्पर होकर विहरते हुए, विमुक्त न हुआ चित्त विमुक्त हो जाए, पूरी तरह क्षीण न हुए आस्रव पूरी तरह क्षीण हो जाय, प्राप्त न हुआ अनुपम योगक्षेम (निर्वाण) प्राप्त हो जाय?”

इस पर आयुष्मान आनन्द ने गृहपति को इस धर्मोपदेश के बारे में समझाया। उन्होंने कहा कि जब कोई भिक्षु प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहरता है तब वह इसे अभिसंस्कृत (कृत) समझता हुआ इसे अपनी प्रज्ञा से अनित्य एवं निरोध स्वभाव वाला जानता है। इस ध्यान में अवस्थित हो वह आस्रवों के क्षय को प्राप्त होता है, अथवा पांचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक, अनागामी हो जाता है।

आयुष्मान आनन्द ने ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान एवं चतुर्थ ध्यान, चारों ब्रह्मविहारों, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन एवं आकिंचन्यायतन को लेकर भी गृहपति को समझाया।

तब गृहपति ने कहा – “भंते! जैसे कोई पुरुष एक निधि-मुख (खजाने के मुँह) को खोजते हुए एक ही बार ग्यारह निधिमुखों को पा जाए, ऐसे ही मैंने एक अमृत-द्वार को खोजते हुए एक ही बार ग्यारह अमृत-द्वार पा लिया है।”

३. सेखसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। उस समय कपिलवत्थु के शाक्यों ने हाल ही में एक नया संस्थागार बनवाया था। उन्होंने भगवान के पास जाकर अभ्यर्थना की कि प्रथम

बार आप ही इसका उपयोग करें। इसके बाद जब हम इसका उपयोग करेंगे, तब वह चिरकाल तक हमारे हित-सुख के लिए होगा।

इस पर भगवान ने संस्थागार में जाकर शाक्यों को बहुत रात तक धार्मिक कथा कह कर समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया और फिर आयुष्मान आनन्द को बाकी उपदेश देने के लिए कह कर स्वयं स्मृति-संप्रज्ञान के साथ विश्राम करने लगे।

तत्पश्चात् आयुष्मान आनन्द ने महानाम शाक्य को संबोधित करते हुए कहा –“महानाम ! आर्यश्रावक शील-सदाचार से युक्त, इंद्रियों में संयम रखने वाला, भोजन की मात्रा का जानकार, जागरण में तत्पर, सात सद्धर्मों सहित इसी जन्म में सुख-विहार के लिए उपयोगी चारों चैतसिक ध्यानों का इच्छानुसार एवं बिना किसी कठिनाई के प्राप्त करने वाला होता है।”

फिर आयुष्मान आनन्द ने इस पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि ऐसा आर्यश्रावक शैक्ष्य-प्रातिपद (निर्वाण-प्राप्ति के लिए मार्गरूढ़) कहलाता है। वह निर्भेदन करने, संबोधि प्राप्त करने तथा अनुपम योगक्षेम अधिगत करने के योग्य होता है। वह उपेक्षा और जागरूकता की परिशुद्धता को प्राप्त कर अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों को स्मरण करने लगता है, दिव्य चक्षु से कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है, आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है। ऐसा आर्यश्रावक विद्यासंपन्न कहलाता है, चरणसंपन्न भी, और विद्याचरणसंपन्न भी।

तदनंतर भगवान उठ खड़े हुए और उन्होंने आयुष्मान आनन्द की उनके भाषण के लिए सराहना की।

४. पोतलियसुत्त

एक समय भगवान अङ्कुराप जनपद में आपण नाम के निगम में विहार करते थे। उस काल में पोतलिय गृहपति ने उनके पास जाकर उनसे कहा कि मैंने सारा काम-धंधा छोड़ दिया है, संपत्ति पुत्रों को दे दी है, केवल खाने-पहनने भर से मेरा वास्ता रहा है – इस प्रकार मेरे सारे व्यवहारों का पूर्णतया उच्छेद हो गया है।

इस पर भगवान ने कहा कि आर्य-विनय में इसे व्यवहार-उच्छेद नहीं कहते।

तब गृहपति के अनुरोध पर भगवान ने उसे समझाया कि व्यवहार-उच्छेद के लिये ये आठ धर्म होते हैं -

- (१) अहिंसा का सहारा ले, हिंसा को छोड़ना;
- (२) अ-चौर्य का सहारा ले, चोरी को छोड़ना;
- (३) सच का सहारा ले, झूठ को छोड़ना;
- (४) अ-पिशुनता का सहारा ले, पिशुनता (चुगली) को छोड़ना;
- (५) अ-लोभ का सहारा ले, लोभ को छोड़ना;
- (६) अ-निंदादोष का सहारा ले, निंदादोष को छोड़ना;
- (७) अक्रोध-उपायास का सहारा ले, क्रोध-उपायास को छोड़ना; और
- (८) अन्-अतिमान का सहारा ले, अतिमान को छोड़ना।

फिर भगवान ने कहा कि इनसे भी पूरी तरह से व्यवहार-उच्छेद नहीं होता। पूरी तरह से व्यवहार-उच्छेद तब होता है जब कोई आर्य-श्रावक अनुपम उपेक्षा एवं स्मृति की परिशुद्धता को प्राप्त कर -

* अनेक प्रकार के पूर्व-निवासों को आकार एवं नाम सहित स्मरण करने लगता है;

* विशुद्ध, अमानुष, दिव्य चक्षु से मरते-जन्मते, कर्मानुसार गति प्राप्त करते प्राणियों को जानने लगता है; और

* इसी जन्म में आस्रवों के क्षय से, आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा पूर्ण विमुक्ति को स्वयं अभिज्ञा से जान कर विहरने लगता है।

यह सुन कर भाव-विभोर होकर गृहपति भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

५. जीवक सुत्त

एक समय जब भगवान राजगृह में जीवक कोमारभच्च के आम्रवन में विहार करते थे, तब जीवक ने उनके पास जाकर कहा -“भंते! मैंने सुना है कि लोग श्रमण गौतम के उद्देश्य से जीव को मारते हैं, और वह जानते हुए अपने उद्देश्य

से बनाए, अपने उद्देश्य से किये कर्म वाले मांस को खाते हैं। क्या ऐसा क हने वाले भगवान के विषय में सच क हते हैं? उन पर झूठा दोष तो नहीं लगाते?”

इस पर भगवान ने क हा –“ऐसा क हने वाले मेरे विषय में सच नहीं क हते हैं। वे मुझ पर झूठा दोष लगाते हैं। वस्तुतः जो कोई तथागत या उनके श्रावक के उद्देश्य से जीव को मारता है, वह पांच स्थानों से बहुत पाप क माता है। ये पांच स्थान हैं : (१) यह क हना –‘जाओ, अमुक जीव को ले आओ’; (२) गले में फंदा डाल जीव को खींच कर लाते देख दुःख, दौर्मनस्य अनुभव क रना; (३) यह क हना –‘जाओ, इस जीव को मारो’; (४) जीव को मारते समय दुःख, दौर्मनस्य अनुभव क रना; और (५) तथागत या उसके श्रावक को अनुचित पदार्थ खिलाना।

यह सुन कर अत्यंत भाव-विभोर हो जीवक को मार भच्च भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

६. उपालिसुत्त

एक समय भगवान नाळन्दा में पावारिक-आम्रवन में विहार क रते थे। उस काल में निर्ग्रथ नाटपुत्त भी निर्ग्रथों की एक बड़ी परिषद के साथ उसी नगर में विहरते थे।

एक दिन निर्ग्रथ दीघतपस्सी भगवान के पास चला गया। वहां उसने उनको बतलाया कि निर्ग्रथ नाटपुत्त पापकर्म क रने के लिए, पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए कर्मों का विधान नहीं क रते, केवल ‘दंड’ का विधान क रते हैं, और काय-दंड, वचन-दंड, मन-दंड में से ‘काय-दंड’ को महादोषयुक्त बतलाते हैं। भगवान ने क हा कि तथागत दंड का नहीं, ‘कर्मों’ का विधान क रते हैं, और काय-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म में से ‘मन-कर्म’ को महादोषयुक्त बतलाते हैं।

निर्ग्रथ नाटपुत्त को इसका पता चलने पर उनकी अनुमति प्राप्त कर उनका शिष्य उपालि गृहपति भगवान से इस बारे में वाद रोपने के लिए उनके पास गया। परंतु वहां वह उनकी युक्तियों से इतना प्रभावित हुआ कि वह उनकी शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

इस पर भगवान ने उससे क हा –“गृहपति! सोच समझ कर क रो।” यह सुन

करउपालि और अधिक प्रभावित हुआ, और दूसरी बार भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

भगवान फिर बोले – “गृहपति! लंबे समय से तुम्हारा कुल निर्ग्रथों के लिए प्याऊ की तरह रहा है, उनके आने पर ‘पिंड नहीं देना चाहिए’ – यह मत समझना।” यह सुन करउपालि और भी अधिक प्रभावित हुआ और तीसरी बार भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

तदुपरांत भगवान ने उसे आनुपूर्वी कथा कही, जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगों के दुष्परिणाम, अपकार, मलिनकरण, और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकाशित किया। जब भगवान ने उसे उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त (प्रसन्न-चित्त) जान लिया तब उसे बुद्धों का स्वयं जाना हुआ धर्मोपदेश – दुःख, समुदय, निरोध तथा मार्ग – प्रकाशित किया। तत्पश्चात् जैसे धवल, निर्मल वस्त्र को रंग अच्छी तरह पकड़ लेता है, वैसे ही उपालि को उसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, विमल, धर्मचक्षु – ‘जो कुछ उत्पन्न होने वाला (समुदयधर्मा) है, वह सब कुछ नाशवान (निरोधधर्मा) है’ – उत्पन्न हुआ।

तब से उपालि ने निर्ग्रथों, निर्ग्रथिनियों के लिए अपने घर के कपाट बंद कर दिए और भिक्षुओं-भिक्षुणियों तथा उपासकों-उपासिकाओं के लिए खोल दिए।

यह जानकारी मिलने पर कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम का श्रावक हो गया है, पहले दीघतपस्सी और बाद में निर्ग्रथ नाटपुत्त स्वयं उसके घर गए और इस बात को सही पाया। उपालि ने भगवान के अनेकानेक गुणों का बखान करते हुए सुस्पष्ट किया कि वह भगवान का ही श्रावक है।

७. कुक्कु रवतिक सुत्त

एक समय भगवान कोलिय जनपद में हलिद्वसन नाम के निगम में विहार करते थे। उस काल में गोव्रतिक (गाय के समान आचरण करने का व्रत लिये हुए) पुण्ण और कुक्कु रवतिक (कुत्ते के समान आचरण करने का व्रत लिये हुए) अचेल सेनिय वहां आकर उनसे मृत्यु के उपरांत एक दूसरे की गति के बारे में पूछने लगे।

भगवान ने कहा कि गोव्रतिक और कुक्कु रवतिक मिथ्या दृष्टि वाले होते हैं,

और मिथ्या दृष्टि वालों की इन दो में से एक ही गति होती है - नरक या पशु-योनि में जन्म।

यह सुन कर पुण्य और अचेत सेनिय दोनों रोने लगे। फिर पुण्य ने भगवान से याचना की कि हमें ऐसा धर्मोपदेश करें जिससे हम ये दोनों प्रकार के व्रत छोड़ दें।

तदुपरांत भगवान ने उन्हें बतलाया कि मैंने चार प्रकार के कर्मों को स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, अनुभव किया है। ये कर्म हैं -

- (१) कृष्ण और कृष्ण-विपाक (बुरे और बुरे परिणाम वाले);
- (२) शुक्ल और शुक्ल-विपाक (अच्छे और अच्छे परिणाम वाले);
- (३) कृष्ण-शुक्ल और कृष्ण-शुक्ल-विपाक; और
- (४) अकृष्ण-अशुक्ल और अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक।

फिर उन्होंने इनका खुलासा करते हुए बतलाया कि जो जैसा करता है, वैसी ही उसकी उत्पत्ति होती है। काया, वाणी और मन से व्यापाद के संस्कार बनाने वाला केवल दुःखमय वेदना अनुभव करते हुए व्यापाद-युक्त लोक में उत्पन्न होता है, जैसे निरयलोक। व्यापाद-रहित संस्कार बनाने वाला केवल सुखमय वेदना अनुभव करते हुए व्यापाद-रहित लोक में उत्पन्न होता है, जैसे देवलोक। व्यापाद-युक्त तथा व्यापाद-रहित संस्कार बनाने वाला दुःखद-सुखद वेदना को अनुभव करता हुआ मनुष्य-लोक में, अथवा देवलोक में अथवा विनिपातिक हो जन्म लेता है। पूर्वोक्त तीनों प्रकार के संस्कारों के क्षय के लिए उपयोगी मानसिक चेतना कहलाती है - अकृष्ण-अशुक्ल, अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक।

यह सुन कर पुण्य अत्यंत भाव-विभोर हो भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी। अचेत सेनिय ने भगवान से प्रव्रज्या, उपसंपदा पाई और कुछ ही काल के पश्चात एकान्तवास करते हुए, प्रमाद-रहित एवं आत्मसंयमी हो अर्हत अवस्था को प्राप्त हुआ।

८. अभयराजकुमारसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस काल में अभय राजकुमार के आमंत्रण पर वे उसके घर गए जहां उन्होंने उसको

बतलाया कि तथागत किस प्रकार के वचन बोलते हैं, और किस प्रकार के वचन नहीं बोलते हैं।

भगवान ने कहा कि तथागत इस प्रकार के वचन नहीं बोलते हैं –

- (१) अयथार्थ, असत्य, अनर्थयुक्त और दूसरों के लिये अप्रिय, अमनाप;
- (२) यथार्थ, सत्य, अनर्थयुक्त और दूसरों के लिये अप्रिय, अमनाप;
- (३) अयथार्थ, असत्य, अनर्थयुक्त पर दूसरों के लिये प्रिय, मनाप;
- (४) यथार्थ, सत्य, अनर्थयुक्त और दूसरों के लिये प्रिय, मनाप।

वह समय देखकर इस प्रकार के वचन बोलते हैं –

- (१) यथार्थ, सत्य, अर्थयुक्त पर दूसरों के लिये अप्रिय, अमनाप; और
- (२) यथार्थ, सत्य, अर्थयुक्त और दूसरों के लिये प्रिय, मनाप।

९. बहुवेदनीयसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में पञ्चकङ्कस्थपति तथा आयुष्मान उदायी में इस बात पर मतभेद था कि भगवान ने किस प्रकार की वेदनाएं कही हैं। एक कहता था तीन प्रकार की – सुखद, दुःखद एवं अदुःखद-असुखद। दूसरा कहता था दो प्रकार की – सुखद एवं दुःखद।

जब यह बात भगवान तक पहुँची, तब उन्होंने स्पष्ट किया कि मैंने पर्याय से दो वेदनाएं भी कही हैं, तीन भी, पांच भी, छः भी, अठारह भी, छत्तीस भी, एक सौ आठ भी।

तदनंतर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि पांच कामगुणों के आश्रय से जो सुख, सौमनस्य उत्पन्न होता है, वह काम-सुख कहलाता है। इस सुख से बढ़कर, उत्तरोत्तर, दूसरे सुख भी होते हैं, जैसे प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान, और फिर आकाशाशान्त्यायतन, विज्ञानान्त्यायतन, आर्किचन्त्यायतन तथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरना, और फिर इसका भी सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हो विहरना।

१०. अपण्णक सुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल (जनपद) में चारिका क रतेहुए साला नामक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। उनकी मंगल-कीर्तिसुनकर वहां के ब्राह्मण-गृहपति दर्शनार्थ उनके पास चले आए।

भगवान ने उनसे पूछा – “गृहपतियो! क्या तुम्हारे मनोनुकूल कोई शास्ता है जिसमें तुम्हारी गहरी श्रद्धा हो?”

गृहपतियों से नकारात्मक उत्तर मिलने पर भगवान ने उनसे कहा कि तब तो तुम्हें अपर्णक (द्विविधा-रहित) धर्म ग्रहण करना चाहिए।

तत्पश्चात् भगवान ने परस्पर-विरोधी वाद स्थापित करने वालों की मिथ्या-दृष्टि की तुलना बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सम्यक दृष्टि से की और उन्हें इसके लाभों से अवगत कराया।

अंत में उन्होंने उन्हें संसार में विद्यमान चार प्रकार के पुद्गलों की जानकारी दी – (१) आत्मंतप, (२) परंतप, (३) आत्मंतप-परंतप, तथा (४) न-आत्मंतप-न-परंतप। (विस्तार के लिए देखिए – “कन्दरक सुत्त”, पृष्ठ सं. १३१)

न-आत्मंतप-न-परंतप पुद्गल की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि ऐसे व्यक्ति का चित्त पूरी तरह से आस्रव-विहीन हो जाने से उसमें ज्ञान जागता है – ‘मैं विमुक्त हो गया! मैं विमुक्त हो गया!’ और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’ वह इसी जीवन में वितृष्ण, शांत, शीतल, सुख का अनुभव करने वाला और स्वयं ब्रह्मभूत हुआ विहार करने लगता है।

यह सुन कर, आश्चर्य-चकित हो, साला-निवासी ब्राह्मण गृहपति भगवान की शरण चले गए, और धर्म तथा संघ की भी।

२. भिक्षुवग्ग

१. अम्बलट्टिक राहुलोवादसुत्त

एक समय जब भगवान राजगह में वेळुवन क लन्दक निवापमें विहार क रतेथे, तब आयुष्मान राहुल अम्बलट्टिका में विहरते थे।

एक दिन भगवान सायंकाल ध्यान से उठ अम्बलट्टिका चले गए और वहां आयुष्मान राहुल को उपदेश देते हुए यह सीखने के लिए कहा -

* मैं हँसी में भी झूठ नहीं बोलूंगा।

* मैं बार-बार विवेचन करके काया, वाणी तथा मन के कर्मों को पूर्ण रूप से सुधारूंगा।

२. महाराहुलोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार क रतेथे। उस काल में उन्होंने आयुष्मान राहुल को समझाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को इस प्रकार यथाभूत, सम्यक प्रकार से जानना चाहिए - 'न यह मेरा है', 'न मैं यह हूँ', 'न यह मेरी आत्मा है'।

उन्होंने उसे यह भी समझाया कि किस प्रकार आनापानसति की भावना किये जाने पर वह महाफलदायिका, बड़े माहात्म्य वाली होती है। उन्होंने कहा कि भीतरी और बाहरी पांचों महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) में से प्रत्येक को इस प्रकार यथाभूत, सम्यक प्रकार से जानना चाहिये - 'न यह मेरा है', 'न मैं यह हूँ', 'न यह मेरी आत्मा है'। इनके समान भावना करने से चित्त को अच्छे या बुरे लगने वाले स्पर्श इससे चिपटते नहीं। ऐसे ही मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की भावना करने से द्वेष, विहिंसा, अरति तथा प्रतिहिंसा, क्रमशः, छूट जाते हैं। अशुभ की भावना करने से राग और अनित्य-संज्ञा की भावना करने से अहंकार छूट जाता है।

अंत में भगवान ने भिक्षु की विभिन्न अवस्थाओं में उसके द्वारा अपने आश्वास-प्रश्वास की जानकारी बनाये रखने के बारे में सारी प्रक्रिया को

समझाया। उन्होंने कहा कि इस प्रकार भावित की गई आनापानसति से अंतिम श्वास भी जानकारी में ही छूटते हैं, बिना जानकारी के नहीं।

३. चूळमालुक्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। मालुक्य-पुत्र ने वहां जाकर उनसे जानना चाहा कि जिन बातों को उन्होंने 'अ-व्याकृत' कहा है (जैसे कि 'लोक नित्य है', 'लोक अनित्य है', 'लोक अंतवान है', 'लोक अनंत है', इत्यादि) - इनके बारे में वह उसे साफ-साफ बतलाए कि वह इनके विषय में जानते भी हैं, अथवा नहीं।

भगवान ने कहा कि चाहे लोक नित्य हो अथवा अनित्य, लोक अंतवान हो अथवा अनंत, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, दुःख, दौर्मनस्य, परेशानी - ये सब तो हैं ही। मैं इसी जन्म में इनके विनाश का उपाय बतलाता हूं।

उन्होंने आगे कहा कि मेरे द्वारा 'अ-व्याकृत' धर्म सार्थक एवं आदि-ब्रह्मचर्य के लिये उपयोगी नहीं हैं; ये न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोधि, न निर्वाण के लिये हैं। मेरे द्वारा 'व्याकृत' धर्म हैं -

- (१) 'यह दुःख है';
- (२) 'यह दुःख का समुदय है';
- (३) 'यह दुःख का निरोध है';
- (४) 'यह दुःख का निरोध कराने वाली प्रतिपदा है।

ये सार्थक एवं आदि-ब्रह्मचर्य के लिये उपयोगी हैं; ये निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि, निर्वाण के लिये हैं। अतः मेरे द्वारा 'अ-व्याकृत' को 'अ-व्याकृत' के तौर पर और 'व्याकृत' को 'व्याकृत' के तौर पर ग्रहण करना चाहिए।

४. महामालुक्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां मालुक्य-पुत्र भगवान द्वारा उपदिष्ट पांच अवरभागीय संयोजनों के सम्बन्ध में यथार्थ उत्तर नहीं दे पाया। अतः भगवान ने इसे फिर से समझाया।

उन्होंने कहा कि पांच अवरभागीय संयोजन हैं -

- (१) सत्काम-दृष्टि;
- (२) विचिकित्सा;
- (३) शीलव्रतपरामर्श;
- (४) काम-राग; और
- (५) व्यापाद।

इनके विनाश के लिये उपाय है, उपधि को त्याग कर, अकुशलधर्मों को दूर कर, कायिकचंचलता को शांत कर, कामों से विरहित हो, प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरना; पांच स्कंधों से संबंध रखने वाले धर्मों को अनित्य, दुःख एवं अनात्म के तौर पर देख, उन धर्मों से चित्त को हटा, निर्वाण-धातु की ओर चित्त लगाना। इसमें स्थित होने से आस्रवों के क्षय को प्राप्त होना - और यदि ऐसा न हो, तो उसी धर्म-अनुराग से, पांचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से, औपपातिक, अनागामी हो जाना।

इन्हीं पांच अवरभागीय संयोजनों के विनाश के लिये अन्य उपाय हैं - द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरना; फिर रूप-संज्ञा को सर्वथा छोड़ने के उपरांत, क्रमशः, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आर्किचन्यायतन को प्राप्त हो विहरना और पूर्ववत् निर्वाण-धातु में स्थित हो आस्रवों के क्षय को प्राप्त होना, अथवा औपपातिक, अनागामी हो जाना।

तत्पश्चात् आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से पूछ लिया कि यदि पांच अवरभागीय संयोजनों के विनाश के लिए यही उपाय है, तो कोई भिक्षु चित्त की विमुक्ति वाले और कोई प्रज्ञा से पूर्ण विमुक्ति वाले क्यों होते हैं? भगवान् ने स्पष्ट किया कि इंद्रिय(मनःशक्ति)-भेद के कारण ऐसा होता है।

५. भद्दालिसुत्त

एक समय भगवान् सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा -“भिक्षुओ! मैं एक आसन-भोजन का सेवन करता हूं। इससे मैं आरोग्य, उत्साह, बल और सुख-विहार अनुभव करता हूं। तुम भी ऐसा ही करो।”

इस पर आयुष्मान भद्रालि ने कहा –“भंते! मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि इससे मुझे चिंता और उदासी होगी।” परंतु लगभग तीन माह पश्चात उन्होंने भविष्य में संवर रखने का संकल्प जतलाते हुए, इस अपराध के लिए भगवान से क्षमा-याचना की। भगवान ने यह कहते हुए उन्हें क्षमा कर दिया कि आर्य-विनय में यह वृद्धि ही क हलाती है जब कोई व्यक्ति अपराध को अपराध के तौर पर देखकर भविष्य में संवर रखने के लिए उसका धर्मानुसार प्रतिकार कर दे।

तत्पश्चात भगवान ने उन्हें समझाया कि –

* शास्ता की शिक्षा का पूरी तरह पालन करने से कैसे, उत्तरोत्तर, आध्यात्मिक लाभ होता जाता है।

* वह कौन सा हेतु है जिसके कारण कोई भिक्षु बार बार अपराध करता है और कोई भिक्षु नहीं करता है।

* वह कौन सा हेतु है जिसके कारण पूर्वकाल में शिक्षापद कम होते थे पर बहुत से भिक्षु उत्तम ज्ञान में अवस्थित थे, परंतु अब शिक्षापद बहुत हैं पर कम भिक्षु ही उत्तम ज्ञान में अवस्थित हैं।

तदनंतर भगवान ने उन्हें ‘आजानीयसूसूपम’ धर्मपर्याय का उपदेश दिया। इसमें उन्होंने यह बतलाया कि जैसे कोई चतुर सारथी किसी अच्छी नसल के घोड़े को पाकर उसे दस प्रकार से, क्रमवार, निरंतर शिक्षा देते हुए इस योग्य बना देता है, जिससे वह राजा का अंग क हलाने लगे; वैसे ही दस अंगों से युक्त भिक्षु भी आवाहन-योग्य, पाहुना बनाने योग्य, दक्षिणा दिए जाने योग्य, हाथ जोड़े जाने योग्य, लोक के पुण्य बोन के अनुपम क्षेत्र हो जाता है। भिक्षु के संदर्भ में ये दस अंग हैं –

- (१) अशेष सम्यक दृष्टि,
- (२) अशेष सम्यक संकल्प,
- (३) अशेष सम्यक वचन,
- (४) अशेष सम्यक कर्मांत
- (५) अशेष सम्यक आजीविका,
- (६) अशेष सम्यक व्यायाम,
- (७) अशेष सम्यक स्मृति,

- (८) अशेष सम्यक समाधि,
- (९) अशेष सम्यक ज्ञान, तथा
- (१०) अशेष सम्यक विमुक्ति।

६. लटुकि कोपमसुत्त

एक समय भगवान अङ्गुत्तराप (जनपद) में आपण नाम के निगम में विहार करते थे। वहां आयुष्मान उदायी द्वारा चर्चा छोड़ने पर भगवान ने कहा कि मैं जब किसी बात को छोड़ने के लिए कहता हूँ, तब कोई-कोई मोघपुरुष उसे नहीं छोड़ते, परंतु सीख चाहने वाले भिक्षु उसे अपने लिए दृढ़ बंधन मानते हुए उसे छोड़ देते हैं। पूति-लता के बंधन से बंधी हुई लटुकि का (गोरग्या) वहीं वध, बंधन अथवा मरण की प्रतीक्षा करती हुई दृढ़ बंधन से बंधी हुई ही मानी जा सकती है, किसी दुर्बल बंधन से नहीं।

भगवान ने आगे कहा कि संसार में चार प्रकार के व्यक्तियों में से जो व्यक्ति उपधि (आसक्ति) को दुःखों का मूल जानकर, उपधि-रहित हो जाता है, वही 'वि-संयोगी' कहलाता है; अन्य प्रकार के व्यक्ति नहीं। 'वि-संयोगी' के मन का झुकाव अलग प्रकार का होता है।

तत्पश्चात् उन्होंने पांच काम-गुणों की चर्चा करते हुए इनसे उत्पन्न होने वाले सुख को 'अनार्य सुख' कहा, जिससे भय खाना चाहिए। परंतु चार ध्यानों को प्राप्त हो उनमें विहरने से होने वाले सुख को 'नैष्कम्य सुख' कहा, जिससे भय करने का कोई कारण नहीं।

ध्यानों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि इनमें से पहले तीन प्रकार के ध्यान इंगित (अस्थिर) कहलाते हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक में कुछ-न-कुछ अ-निरुद्ध रह जाता है। चतुर्थ ध्यान अनिगित (स्थिर) कहलाता है।

फिर उन्होंने कहा कि मैं प्रथम ध्यान से लेकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक की प्रत्येक अवस्था को 'अपर्याप्त' बतलाते हुए उसका 'अतिक्रमण' करने के लिए कहता हूँ। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का सर्वथा अतिक्रमण "संज्ञावेदयितनिरोध" की अवस्था है।

अंत में भगवान ने आयुष्मान उदायी से पूछा कि क्या कोई ऐसा छोटा-बड़ा संयोजन (बंधन) देखते हो जिसे दूर करने के लिए मैं नहीं कहता?

आयुष्मान उदायी ने कहा - “नहीं, भंते!”

७. चातुमसुत्त

एक समय जब भगवान चातुमा के आमलकीवन में विहार करते थे, तब सारिपुत्त, मोग्गल्लान आदि पांच सौ भिक्षु उनके दर्शनार्थ वहां चले आए। चूंकि ये आंगंतुक भिक्षु कई कारणों से बहुत कोलाहल कर रहे थे, अतः भगवान ने उन्हें वहां से चले जाने के लिये कहा, परंतु बाद में उन पर अनुकंपा करते हुए उन्हें धर्मोपदेश दिया।

उन्होंने भिक्षुओं को कहा कि पानी में उतरने वाले को चार प्रकार के भय हो सकते हैं -

- (१) ऊर्मि-भय;
- (२) कुं भील-भय;
- (३) आवर्त-भय; तथा
- (४) सुसुका-भय।

यही चार भय उस व्यक्ति को भी हो सकते हैं, जो इस धर्म-विनय में घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हो।

तत्पश्चात् भगवान ने इन चार प्रकार के भयों के बारे में विस्तार से समझाते हुए बतलाया कि अनुशासन करने वाले के प्रति क्रोध, दुश्चिन्ता का होना ऊर्मि-भय है; ठूस-ठूस कर पेट भरना कुं भील-भय है; पांच कामगुणों का होना आवर्त-भय है; और स्त्रियों का ही नाम है सुसुका-भय।

८. नळक पानसुत्त

एक समय भगवान कोसलजनपद में नळक पान के पलासवन में विहार करते थे। उस काल में बहुत से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुलपुत्र भगवान के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए थे। उन्होंने उनको समझाया कि प्रव्रजित हो, कुलपुत्र को क्या करना चाहिये।

उन्होंने उनको यह भी स्पष्ट किया कि यह जो तथागत मरे हुए श्रावकों की उत्पत्ति बतलाते हैं - ‘वह वहां पैदा हुआ है, वह वहां पैदा हुआ है’ - यह

कि सलिए है। यह न लोगों को ठगने के लिए, न लोगों को बातचीत में लगाए रखने के लिए, न लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाने के लिए, और न इसलिए है कि लोग तथागत को ऐसा जानें। यह इसलिए है कि खूब उत्साह वाले, प्रमोद-प्राप्त, श्रद्धालु कु लपुत्र उसे सुनकर उसके लिये चित्त लगाएं। यह दीर्घ काल तक उनके हित-सुख के लिए होता है।

९. गोलियानिसुत्त

एक समय जब भगवान राजगृह में वेळुवन-क लन्दक निवापमें विहार करते थे तब आयुष्मान सारिपुत्त ने गोलियानि नामक भिक्षु को वनवासी भिक्षुओं द्वारा पालन करने योग्य अठारह धर्मों के बारे में उपदेश दिया।

उन्होंने कहा कि संघ में आये, संघ में रहते वनवासी भिक्षु को सब्रह्मचारियों के प्रति सम्मान-भाव रखना चाहिए; आसन-कुशल होना चाहिए (अर्थात् स्थविरों के बैठने से पूर्व स्वयं न बैठना और नये भिक्षुओं को आसन से न हटाना - यह जानना चाहिए); अपने छोटे-मोटे कर्तव्यों को जानना चाहिए; असमय में ग्राम में प्रवेश नहीं करना चाहिए; इत्यादि। इसके अतिरिक्त उसे इंद्रियों पर संयम रखने वाला, भोजन की मात्रा का जानकार, जागरण में तत्पर, उद्योगशील, स्मृतिमान, एकाग्रचित्त एवं प्रज्ञावान होना चाहिए। उसे अभिधर्म, रूप-रहित लोकों से संबंधित शांत विमोक्षों तथा उत्तर-मनुष्यधर्मों में भी मन लगाना चाहिए।

१०. कीटागिरिसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कासी [जनपद] में चारिका करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को आमंत्रित कर कहा - “भिक्षुओ! मैं रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करता हूं। इससे मैं आरोग्य, उत्साह, बल और सुख-विहार अनुभव करता हूं। तुम भी ऐसा ही करो।”

भिक्षुओं ने कहा - “अच्छा, भंते!”

जब चारिका करते हुए भगवान उसी जनपद के कीटागिरिनिगम में पहुँचे, तब इन भिक्षुओं ने वहां के निवासी भिक्षुओं अस्सजि और पुनब्बसु को भी रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करने के लिए कहा, परंतु वे नहीं माने। वे इसी बात पर अड़े रहे कि हम सायंकाल भी भोजन करेंगे, प्रातःकाल भी, दिन में भी,

विकालमें भी। उनका कहना था कि जब हमें इससे प्रत्यक्ष आरोग्य, उत्साह, बल और सुख-विहार अनुभव होता है, तब हम भविष्य के पीछे क्यों दौड़ें?

इस पर भगवान ने उन्हें अपने पास बुलाकर भांति-भांति से समझाया कि मैं उसी का उपदेश करता हूँ जो मुझे ज्ञात, दृष्ट, विदित, साक्षात्कृत और प्रज्ञा से अनुभूत होता है।

इस संदर्भ में उन्होंने यह भी समझाया कि मैं अर्हत-अवस्था-प्राप्त भिक्षुओं को 'प्रमाद-रहित हो करो' - ऐसा नहीं कहता, क्योंकि वे तो 'करणीय' को कर चुके होते हैं। 'प्रमाद-रहित हो करो' - मेरा यह उपदेश शैक्ष्यों के लिए होता है, जिन्हें अभी निर्वाण का साक्षात्कार करना होता है। ऐसे ही मैं सात प्रकार के पुद्गलों में से 'उभयतोभाग-विमुक्त' और 'प्रज्ञा-विमुक्त' - इन दो प्रकार के पुद्गलों को 'प्रमाद-रहित हो करो' - ऐसा नहीं कहता। ऐसा करने के लिए मैं अन्य पांच प्रकार के पुद्गलों को कहता हूँ। ये पुद्गल कहलाते हैं - काय-साक्षी, दृष्टि-प्राप्त, श्रद्धा-विमुक्त, धर्मानुसारी तथा श्रद्धानुसारी। इसके अतिरिक्त मैं आरंभ से ही परम ज्ञान की आराधना के लिए नहीं कहता; परम ज्ञान की आराधना, क्रमशः, शिक्षा, क्रिया तथा प्रतिपदा से होती है।

अंत में भगवान ने चतुष्पद व्याकरण की जानकारी भी दी, जिसका अर्थ करने पर बुद्धिमान व्यक्ति उसे जल्दी ही प्रज्ञा से जान लेता है।

३. परिव्राजक वग

१. तेविज्जवच्छगोत्तसुत्त

एक समय भगवान वेसाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे। वे एक पुण्डरीकपरिव्राजक राम में वास करने वाले वच्छगोत्त परिव्राजक के यहां चले गए।

वहां उन्होंने वच्छगोत्त की इस भ्रांति को दूर किया कि याकि श्रमण गौतम सर्वज्ञ हैं और चलते, ठहरते, सोते, जागते उन्हें हर समय ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि वास्तविकता तो यह है कि मैं तीन विद्याओं का वेत्ता हूँ –

(१) मैं जब चाहूँ, अपने अनेक पूर्वनिवासों (पूर्वजन्मों) को स्मरण कर सकता हूँ;

(२) मैं जब चाहूँ, अमानुष विशुद्ध दिव्य चक्षु से अपने-अपने कर्मानुसार गति को प्राप्त करने वाले प्राणियों को जान लेता हूँ; और

(३) मैं आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता हूँ।

२. अग्गिवच्छसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में वच्छगोत्त परिव्राजक ने वहां जाकर भगवान से लोक, जीव तथा तथागत को लेकर उस समय प्रचलित विभिन्न दृष्टियों की चर्चा करते हुए उनसे पूछा कि इनमें क्या दोष देखकर आप इन्हें ग्रहण नहीं करते?

भगवान ने कहा कि इनमें से प्रत्येक दृष्टि चंचल वा बांधने वाली है; दुःख, विघात, परेशानी एवं जलन पैदा करने वाली है; न निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोधि और न निर्वाण के लिये है। इनमें यही दोष देख कर मैं इन्हें ग्रहण नहीं करता।

तब वच्छगोत्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि आपकी क्या दृष्टि है, भगवान ने कहा कि तथागत की दृष्टि दूर हो गई है। अब तो तथागत का दृष्ट (साक्षात्कार कि याहुआ) यही है – 'यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का निरोध है;

और ऐसे ही वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में। कोई भी सारी मान्यताओं, सारे मंथनों, सारे अहंकार-ममकार-मानरूपी अनुशयों के क्षय, विराग, निरोध, त्याग और अनुत्पाद से विमुक्त हो जाता है – मैं यह कहता हूँ।’

फिर यह पूछे जाने पर कि ऐसा विमुक्त-चित्त व्यक्ति कहां पैदा होता है, भगवान ने कहा कि यह प्रश्न ऐसे ही है जैसे जलती हुई आग के बुझ जाने पर कोई यह जानना चाहे कि वह आग किस दिशा को गई – पूर्व को, पश्चिम को, उत्तर को या दक्षिण को? ऐसा ही तथागत के बारे में होता है। प्राण छोड़ने पर वह विज्ञान संज्ञा से मुक्त हो, महासागर के समान गंभीर, अप्रमेय, अवगाहन के अयोग्य हो जाता है। इसलिए उसके बारे में यह नहीं कहा जाता – ‘उत्पन्न होता है’; ‘उत्पन्न नहीं होता है’; ‘उत्पन्न होता भी है और नहीं भी होता है’; ‘न उत्पन्न होता है, न नहीं उत्पन्न होता है’।

यह सुनकर वच्छगोत्त परिव्राजक आश्चर्यचकित हो भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

३. महावच्छसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। वहां उन्होंने वच्छगोत्त परिव्राजक को उसके चाहने पर कुशल-अकुशल (भलाई-बुराई) का उपदेश दिया। फिर यह भी समझाया कि भिक्षु तृष्णा के समूल नष्ट हो जाने से अर्हत, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास पूरा किया हुआ, कृतकृत्य, भारमुक्त, सदर्थ-प्राप्त, भग्न-भवसंयोजन और सम्यक ज्ञान द्वारा विमुक्ति पाने वाला हो जाता है।

तत्पश्चात् परिव्राजक के अनेक प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने उसे बतलाया कि आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति एवं प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जन्म में साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने वाले; अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक, अनागामी हुए; और उनके शासन में अतिश्रद्धावान होकर विहरने वाले व्यक्तियों की संख्या काफी बड़ी है।

इस पर परिव्राजक को लगा कि भगवान का ब्रह्मचर्य पूर्ण है, क्योंकि वह स्वयं जिस धर्म की आराधना करते हैं, उनसे शिक्षा ग्रहण करने वाले भी उसी के आराधक हैं। जैसे गंगा नदी सागरोन्मुख होती है, वैसे ही भगवान की परिषद

निर्वाणोन्मुख है। तब वह आश्चर्यचकित हो, भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

समय आने पर वच्छगोत्त परिव्राजक ने भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाई और कालांतर में शमथ और विपश्यना का गहरा अभ्यास कर वह अर्हत अवस्था को प्राप्त हुआ।

४. दीघनखसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में गिज्झकूटपर्वत पर सूक रखत में विहार करते थे। दीघनख परिव्राजक ने वहां आकर उनसे कहा – “मैं इस वाद, दृष्टि को मानने वाला हूँ – सभी (मत) मुझे अच्छे नहीं लगते।”

इस पर भगवान ने उसे बतलाया कि श्रमण-ब्राह्मण अपनी-अपनी पसंद के अनुसार इन दृष्टियों को मानते हैं – (१) ‘हमें सभी मत अच्छे लगते हैं’; (२) ‘हमें सभी मत अच्छे नहीं लगते’; और (३) ‘हमें कोई-कोई मत अच्छे लगते हैं, कोई-कोई नहीं।’ इनमें से पहली दृष्टि अ-सराग, अ-संयोग, अ-उपादान के समीप होती है; दूसरी दृष्टि सराग, संयोग, उपादान के समीप; और तीसरी दृष्टि में दोनों का संमिश्रण रहता है। फिर उन्होंने बतलाया कि इन दृष्टियों को कैसे छोड़ा जाता है।

तदुपरांत उन्होंने यह भी बतलाया कि –

* चार महाभूतों से बनी इस काया की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता को सम्यक प्रकार से देखने से इसके प्रति आसक्ति जाती रहती है।

* सुखद, दुःखद तथा अदुःखद-असुखद वेदनाओं को अनित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न, क्षय-धर्मा, विराग-धर्मा, निरोध-धर्मा जानने से आर्य श्रावक इनसे निर्वेद को प्राप्त होता है, निर्वेद को प्राप्त हो विरक्त होता है, विराग को प्राप्त हो विमुक्त होता है, विमुक्त होने पर – ‘मैं विमुक्त हूँ!’ – यह ज्ञान जागता है, और वह प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।’ इस प्रकार विमुक्त-चित्त भिक्षु न किसी के साथ संवाद करता है, न विवाद।

भगवान के भाषित को सुन कर वहां पर विद्यमान आयुष्मान सारिपुत्त का चित्त आस्रवों से अलग हो मुक्त हो गया, क्योंकि उन्हें लगा कि भगवान उन्हें

उन-उन धर्मों को छोड़ने के लिए कह रहे हैं। उधर दीघनख परिव्राजक को भी यह विरज, विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ – ‘जो कुछ उत्पत्ति स्वभाव वाला है, वह निरोध स्वभाव वाला भी है ही।’

५. मागण्डियसुत्त

एक समय भगवान कुरु (जनपद) के कम्मासधम्म नामक निगम में भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण की अग्निशाला में तृण के आसन पर विहरते थे। वहां मागण्डिय परिव्राजक ने उस आसन को ‘भूनहु’ (अवनतिकारक) गौतम की शय्या कहा।

इस पर भगवान ने उसे पहले इंद्रियों के संवर और फिर इन इंद्रियों के विषयों के समुदय, निरोध, आस्वाद, आदीनव (दोष), तथा निस्सरण (इनसे बाहर निकलने के उपाय) के बारे में बतलाया। फिर यह भी बतलाया कि पहले गृहस्थ जीवन में मैं भी पांच कामगुणों से युक्त था, परंतु गृह त्यागने के पश्चात मैं कामभोगों के समुदय, निरोध, आस्वाद, आदीनव, निस्सरण को यथार्थतः जान कर, इनकी जलन को दूर कर, शांतचित्त हो विहरने लगा हूं। दिव्य सुखों को भी मात करने वाली इस रति में रमते हुए मैं पूर्वकालीन कामभोगों से होने वाली रति की स्पृहा नहीं करता। यह ऐसे ही है जैसे कोई रोगी व्यक्ति औषध के सेवन से रोग-रहित हो जाने पर औषध-सेवन की स्पृहा करना छोड़ दे।

फिर भगवान ने यह उदान कहा – “आरोग्य परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है। अमृत की ओर ले जाने वाले मार्गों में अष्टांगिक मार्ग मंगलकारी है।”

यह सुनकर मागण्डिय परिव्राजक को बहुत आश्चर्य हुआ और कहने लगा कि ‘आरोग्य परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है’ – यह कथन तो हमारे आचार्य-प्राचार्यों के कथन से मेल खाता है। जब भगवान ने उसे इसका आशय समझाने के लिए कहा तो वह इसका सही आशय समझाने में असमर्थ रहा। इस पर भगवान ने कहा कि पूर्व के अर्हत सम्यक संबुद्धों ने इस गाथा को कहा था जो धीरे-धीरे अनाड़ियों में चली गई और वे इसका सही आशय भूल गए।

भगवान ने मागण्डिय से कहा कि तुम्हें आर्य-चक्षु नहीं होने से तुम्हारे लिए आरोग्य को जान लेना, निर्वाण को देख पाना संभव नहीं है। परंतु जब मागण्डिय ने भगवान में अपनी अत्यधिक श्रद्धा व्यक्त की तब उन्होंने उसे सत्पुरुषों का

सेवन करने के लिए कहा जिससे वह सद्धर्म को सुन, और तदनुसार आचरण कर, स्वयं ही जान ले, देख ले – ‘यह रोग, गंड, शल्य है; यहां सारे रोग, गंड, शल्य निरुद्ध हो जाते हैं।’

कालांतर में आयुष्मान मागण्डिय ने भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाई और उसके थोड़े ही समय पश्चात एकाकी, एकांतवासी, प्रमादरहित, उद्योगी और आत्म-संयमी हो, विहरते हुए उन्होंने इसी जन्म में अनुपम ब्रह्मचर्य-फल का साक्षात्कार कर लिया, और वह अर्हतों में से एक हुआ।

६. सन्दक सुत्त

एक समय जब भगवान कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते थे, तब आयुष्मान आनन्द भिक्षुओं को देवक तसोब्भकीगुफा देखने के लिए ले गए। वहां सन्दक परिव्राजक ने परिव्राजकों की एक बड़ी परिषद के समक्ष आयुष्मान आनन्द को धार्मिक कथा कहने के लिए अनुरोध किया।

इस पर आयुष्मान आनन्द ने उन्हें बतलाया कि जाननहार, देखनहार सम्यक संबुद्ध भगवान ने चार अ-ब्रह्मचर्यवास कहे हैं, और चार आश्वासन न देने वाले ब्रह्मचर्यवास। इनका वास करने पर कोई सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को नहीं पा सकता। फिर उन्होंने इनमें से प्रत्येक की विस्तृत जानकारी दी।

तदनंतर सन्दक ने सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को प्राप्त कराने वाले ब्रह्मचर्यवास के बारे में पूछा।

इस पर आयुष्मान आनन्द ने बताया कि जब कोई तथागत संसार में उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किए गए धर्म को सुन कर कोई गृहपति उसके प्रति श्रद्धावान हो आर्य शील, आर्य इंद्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान का अभ्यासी हो, अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर, प्रथम ध्यान प्राप्त कर विहरने लगे, तब वह श्रावक शास्ता के पास अपनी पूरी शक्ति लगाकर ब्रह्मचर्यवास करता हुआ सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को पा सकता है। ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरते हुए; और फिर चित्त के समाहित, परिशुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु एवं अडोल होने पर इसे भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर पूर्व-निवासों की स्मृति उभरने, अथवा कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पाद, अथवा आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने

पर भी शास्ता के पास अपनी पूरी शक्ति लगा कर ब्रह्मचर्यवास करता हुआ सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को पा सकता है।

तब सन्दक द्वारा यह पूछे जाने पर कि इस धर्म-विनय में कि तने धर्मनायक हैं, आयुष्मान आनन्द ने उनकी संख्या पांच सौ से भी अधिक बतलाई। इससे सन्दक को बहुत आश्चर्य हुआ कि इतने अधिक धर्मनायक होने पर भी न अपने धर्म की बड़ाई करते हैं, न पर-धर्म की निंदा, बल्कि ठीक जगह पर धर्म उपदेशते हैं।

अंततः सन्दक परिव्राजक ने अपनी परिषद को भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करने के लिए प्रेरित किया।

७. महासकु लुदायिसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेलुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस काल में मोर-निवाप परिव्राजकाराम में सकु लुदायी जैसे प्रसिद्ध परिव्राजक वास करते थे।

एक दिन भगवान बहुत सवेरे मोर-निवाप परिव्राजकाराम चले गए। वहां सकु लुदायी परिव्राजक ने उनसे कहा कि पिछले दिनों श्रमण-ब्राह्मण यह चर्चा करते पाए गए कि पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल आदि आचार्य अपने श्रावकों से न सत्कृत हैं, न पूजित। केवल श्रमण गौतम ही अपने श्रावकों से सत्कृत, पूजित हैं।

भगवान द्वारा यह पूछे जाने पर कि मुझ में ऐसे कौनसे धर्म हैं जिनके कारण मैं श्रावकों से सत्कृत, पूजित हूं, उदायी ने ये पांच धर्म बताए - (१) अल्पाहारी होना, (२) जैसे-तैसे चीवर से संतुष्ट रहना, (३) जैसे-तैसे पिंडपात से संतुष्ट रहना, (४) जैसे-तैसे शयनासन में संतुष्ट रहना, और (५) एकान्तवासी होना।

इस पर भगवान ने कहा कि इन धर्मों के कारण मैं श्रावकों से सत्कृत, पूजित नहीं हूं। जिन धर्मों के कारण मैं सत्कृत, पूजित हूं, वे हैं -

- (१) उत्तम शील-स्कंध,
- (२) सुंदर ज्ञान-दर्शन,
- (३) उत्तम प्रज्ञा-स्कंध,
- (४) चार आर्य सत्त्यों का व्याख्यान, और

(५) श्रावकों को ऐसा मार्ग बतलाना जिस पर आरूढ़ हो वे चारों स्मृति-प्रस्थानों, चारों सम्यक-प्रधानों, चारों ऋद्धिपादों, पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों, आर्य अष्टांगिक मार्ग, आठ विमोक्षों, आठ अभिभू-आयतनों, दस कृत्स्न-आयतनों और चार ध्यानो की भावना करने लगते हैं। इस मार्ग पर आरूढ़ हो श्रावक जान लेते हैं कि चार महाभूतों से बना हुआ यह शरीर पूरी तरह अनित्यता से ग्रस्त है, यह विज्ञान उससे आबद्ध है। वे इस कायासे अन्य काया का निर्माण करने में सक्षम हो जाते हैं, अनेक प्रकारके ऋद्धिविध अनुभव करते हैं, दिव्य श्रोत्र एवं परचित्तज्ञान के लाभ हो जाते हैं, पूर्व-निवासों और कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पाद के जानकार हो जाते हैं, और आस्रवों के क्षय से चित्त की विमुक्ति, ज्ञान-विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगते हैं।

८. समणमुण्डिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पञ्चकङ्कस्थपति ने उनसे कहा कि मुझे उग्गाहमान परिव्राजक ने बतलाया है कि कायासे पाप-कर्मन करनेवाला, बुरे वचन न बोलने वाला, दुष्ट संकल्पन करनेवाला और दूषित आजीविकान करनेवाला – इन चार अंगों से युक्त व्यक्ति कुशलसंपन्न, परम कुशल, उत्तमता को प्राप्त, अयोध्य (जिससे लड़ा न जा सके) श्रमण कहलाता है।

भगवान ने कहा कि ऐसा होने पर तो उत्तान सोने वाला अबोध छोटा बच्चा ही कुशलसंपन्न, परम कुशल उत्तमता को प्राप्त अयोध्य श्रमण होगा, क्योंकि उसके अंग अ-परिपक्व होने के कारण वह पापाचार में प्रवृत्त ही नहीं हो सकता।

उन्होंने कहा कि मैं दस धर्मों से युक्त व्यक्ति को कुशलसंपन्न, परम कुशल, उत्तमता को प्राप्त, अयोध्य श्रमण कहता हूँ। ये धर्म हैं – (१) अशैक्ष्य (निर्वाणप्राप्त) की सम्यक दृष्टि, (२) अशैक्ष्य का सम्यक संकल्प, (३) अशैक्ष्य की सम्यक वाणी, (४) अशैक्ष्य का सम्यक कर्मात्, (५) अशैक्ष्य की सम्यक आजीविका, (६) अशैक्ष्य का सम्यक व्यायाम, (७) अशैक्ष्य की सम्यक स्मृति, (८) अशैक्ष्य की सम्यक समाधि, (९) अशैक्ष्य का सम्यक ज्ञान, और (१०) अशैक्ष्य की सम्यक विमुक्ति।

९. चूळसकु लुदायिसुत्त

एक समय जब भगवान राजगह में वेळुवन-क लन्दक निवापमें विहार करतेथे, तब वह एक दिन परिव्राजकाराममें एक बड़ी परिषद के साथ वास करने वाले सकु लुदायी परिव्राजक के यहां चले गए।

वहां प्रारंभिक चर्चा के उपरांत भगवान ने उसे धर्म का बखान किया –“ऐसा होने पर यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं होने पर यह नहीं होता है, इसका निरोध होने से यह निरुद्ध हो जाता है।”

उदायी परिव्राजक को धर्म का यह वर्णन बहुत अच्छा लगा।

तत्पश्चात् उसने भगवान से कहा –“भंते! हमारी परंपरा में यह कहा जाता है – ‘यह परम वर्ण है, यह परम वर्ण है।’”

भगवान द्वारा ‘परम वर्ण’ को स्पष्ट करने के लिए कहे जाने पर उदायी ने कहा –“जैसे शुभ्र, उत्तम जाति की अठकोणी, पालिश की हुई वैदूर्य-मणि पीले दोशाले में रखी हुई भासित होती है, मृत्यु के उपरांत आत्मा भी इसी प्रकार के वर्ण वाली होकर निरोग होती है।”

फिर भगवान द्वारा पूछे जाने पर उदायी ने स्वीकार किया कि इस वैदूर्य-मणि के वर्ण से अधिक चमकीला तो रात्रि के अंधकार में चमकने वाला जुगनू कीड़ा ही होता है। इस पर भगवान ने उसे कहा कि जो वर्ण जुगनू कीड़े से भी गया-बीता है, तुम इसी को ‘परम वर्ण’ बतलाकर उसी की प्रशंसा कर रहे हो?

तदुपरांत उदायी ने अपनी परंपरा की अन्य बात बताई –“एकान्तसुख वाला लोक है, उसका साक्षात्कार करने के लिए तर्क संगत मार्ग भी है।” परंतु इस बारे में भगवान द्वारा प्रश्न किए जाने पर वह इसे स्पष्ट नहीं कर पाया।

इस पर भगवान ने स्वयं इस पर प्रकाश डालते हुए उसे बतलाया कि एकान्तसुख वाले लोक का साक्षात्कार करने के लिए जो प्रतिपदा है उसमें होता है – प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान को, क्रमशः, प्राप्त कर इनमें विहरना; और चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरते समय एकान्तसुख वाले लोक में उत्पन्न हुए देवताओं के साथ ठहरना, संलाप करना और उनका साक्षात्कार करना।

फिर भगवान ने कहा कि केवल इसी के लिए भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य का पालन

नहीं करते। इससे उत्तम दूसरे ही धर्म हैं जिनका साक्षात्कार करने के लिए वे मेरे पास ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि इसके अंतर्गत पूर्व-निवासों की अनुस्मृति, प्राणियों की कर्मानुसार च्युति और उत्पाद और आस्रवों के क्षय का ज्ञान हो जाता है। आस्रवों के क्षय से भिक्षु को यह बोध होता है – ‘मैं विमुक्त हो गया, मैं विमुक्त हो गया!’ और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’

यह सुनकर, आश्चर्य-चकित हो, सकुलुदायी परिव्राजक ने भगवान, और धर्म तथा संघ की भी, शरण जाने का अपना मंतव्य प्रकट किया, परंतु उसकी परिषद ने उसको भगवान के पास ब्रह्मचर्य पालन करने में विघ्न डाला।

१०. वेखनससुत्त

एक समय जब भगवान सावल्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे, तब वेखनस परिव्राजक ने उनके पास आकर यह उदान कहा – “यह परम वर्ण है! यह परम वर्ण है!!”

भगवान द्वारा ‘परम वर्ण’ को स्पष्ट करने के लिये कहे जाने पर परिव्राजक ने कहा – “जैसे शुभ्र, उत्तम जाति की अठकोणी, पालिश की हुई वैदूर्य-मणि पीले दोशाले में रखी हुई भासित होती है, मृत्यु के उपरांत आत्मा भी इसी प्रकार के वर्ण वाली होकर निरोग होती है।”

तब भगवान द्वारा पूछे जाने पर परिव्राजक ने स्वीकार किया कि इस वैदूर्य-मणि के वर्ण से अधिक चमकीला तो रात्रि के अंधकार में चमकने वाला जुगनू कीड़ा ही होता है। इस पर भगवान ने उसे कहा कि जो वर्ण जुगनू कीड़े से भी गया-बीता है, तुम उसी को ‘परम वर्ण’ बतलाकर उसी की प्रशंसा कर रहे हो।

तदनंतर भगवान ने उसे यह भी कहा कि कामों से काम-सुख, और काम-सुख से कामाग्र-सुख श्रेष्ठ कहलाता है, परंतु दूसरी दृष्टि और अन्य प्रकार की रुचि रखने के कारण तुम्हारे लिये इसे समझ पाना दुष्कर है। इसे तो वही भिक्षु जान सकते हैं जो अर्हत, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास पूरा किये हुए, कृतक रणीय,

भारमुक्त, सदर्थ-प्राप्त, क्षीण-भवसंयोजन और सम्यक प्रकार से विमुक्त हो निर्वाण प्राप्त किए हुए हों।

भगवान ने यह भी कहा कि यदि कोई धोखाधड़ी, ठगी न करने वाला, सरल प्रकृतिक विज्ञ पुरुष मेरे पास आए और मैं उसे अनुशासित कर धर्म सिखाऊँ, और वह मेरे अनुशासन में रहते हुए इसका अभ्यास करे, तो वह शीघ्र ही, स्वयं ही जान लेगा, देख लेगा कि कैसे सम्यक प्रकार से अविद्या-रूपी बंधन से मुक्ति होती है।

४. राजवग्ग

१. घटिकारसुत्त

एक समय एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल जनपद में चारिका करते हुए भगवान एक स्थान पर मुस्करा उठे। जब आयुष्मान आनन्द ने इसका कारण जानना चाहा, तब उन्होंने बतलाया कि पूर्वकालमें इस प्रदेश में वेगलिङ्ग नाम का ग्रामनिगम था जो अत्यंत समृद्ध और घनी आबादी वाला था। इसके समीप सम्यकसंबुद्ध भगवान कस्सप का आराम था, जहां वह भिक्षु-संघ को उपदेश दिया करते थे।

तदनंतर उन्होंने बतलाया कि इसी ग्रामनिगम में घटिकार नाम का कुम्हार रहता था, जो भगवान कस्सप का उपस्थाक (प्रधान सेवक) था। जोतिपाल नाम का माणव उसका प्रिय मित्र था। घटिकार के बार-बार आग्रह करने पर जोतिपाल भगवान के दर्शन करने चला गया, जहां उन्होंने उसको धार्मिक कथा कहकर समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। बाद में फिर भगवान के पास जाकर जोतिपाल ने उनसे प्रव्रज्या, उपसंपदा ग्रहण की। इसके थोड़े ही दिन बाद भगवान वहां से वाराणसी जाकर इसिपतन मिगदाय में विहार करने लगे।

कसि-नरेशकि कीने भगवान से अनुरोध किया कि वह वाराणसी में वर्षावास करना स्वीकार करें, परंतु उन्होंने यह कहते हुए कि मेरा वर्षावास हो चुका है, उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इससे उसे दुःख, दौर्मनस्य हुआ।

तदनंतर कसि-नरेश ने भगवान से पूछा कि क्या मुझसे अच्छा आपका कोई उपस्थाक है ? इस पर उन्होंने कहा कि घटिकार कुम्हार मेरा अग्र-उपस्थाक है। जैसे तुम्हें मेरे द्वारा वर्षावास स्वीकारन करनेसे दुःख, दौर्मनस्य हुआ है, वैसा घटिकार को न होता, न होगा। घटिकार बुद्ध, धर्म और संघ में अत्यंत श्रद्धा-भाव रखता है। वह आर्य शीलें से युक्त है। वह चारों आर्य सत्त्यों में संशय-रहित है। वह अंधे माता-पिता का पोषण करता है। वह पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक, अनागामी हो, निर्वाण प्राप्त करने वाला है।

अंत में भगवान ने कहा कि उस समय का जोतिपाल माणव मैं ही था।

२. रडुपालसुत्त

एक समय भगवान् कुरु (जनपद) में एक बड़े भिक्षुसंघ के साथ चारिका करते हुए थुल्लकोट्टिक नाम के निगम में पहुँचे। 'अर्हत्तों का दर्शन करना अच्छा होता है' - यह सोच कर निगम के ब्राह्मण-गृहपति उनके पास चले आए। वहाँ भगवान् ने धार्मिक कथा कह उनको समुत्तेजित-संप्रहर्षित किया।

उस परिपद में वहाँ के अग्र-कुलिककापुत्र रडुपाल भी बैठा था। वह भगवान् की वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि उसने घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की ठान ली। जब उसने भगवान् के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाने के लिए याचना की तो उन्होंने इसके लिए उसके माता-पिता की पूर्वानुमति का होना आवश्यक बतलाया। माता-पिता ने इस शर्त पर अनुमति दी कि प्रव्रजित होने के उपरांत वह उनको दर्शन देगा। तत्पश्चात् भगवान् से प्रव्रज्या, उपसंपदा पा कर आत्म-संयमी हो विहरते आयुष्मान् रडुपाल ने जल्दी ही अर्हत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

तदनंतर भगवान् की अनुमति प्राप्त कर आयुष्मान् रडुपाल माता-पिता को दर्शन देने के लिए अपने पिता के घर गए। वहाँ पर उनके पिता ने उन्हें अपार धन कालालच देकर गृहस्थ बन, भोगों को भोगने और पुण्य करने के लिए कहा। आयुष्मान् रडुपाल ने वह धन गंगा नदी में बहा देने का सुझाव दिया। उन्होंने जाते-जाते यह भी कहा कि मुझ मृग के लिए जो जाल फैलाया गया था, मैं उसमें नहीं फँसा।

वहाँ से आयुष्मान् रडुपाल राजा कोरव्य के मिगचीर उद्यान में चले गए। राजा कोरव्य भी वहाँ आ पहुँचा और उनसे घर से बेघर हो, प्रव्रजित होने का कारण पूछा। इस पर उन्होंने कहा कि जाननहार, देखनहार भगवान् बुद्ध ने चार धर्म-उद्देश कहे हैं जिनको जान कर, देख कर, सुन कर मैंने ऐसा किया है। ये धर्म-उद्देश हैं -

- (१) यह नश्वर संसार ले जाया जा रहा है;
- (२) यह लोक त्राण-रहित, आश्वासन-रहित है;
- (३) लोक अपना नहीं है, सब कुछ छोड़ कर जाना होता है; और
- (४) लोक कमियों वाला, तृप्ति-रहित और तृष्णा का दास है।

आयुष्मान रट्टपाल ने इन धर्म-उद्देशों का आशय भी विस्तार से समझाया, और अंत में कहा कि कामभोगों के दुष्परिणाम को देख कर मैं प्रव्रजित हुआ हूं; दोष-रहित होने से श्रामण्य ही श्रेष्ठ है।

३. मघदेवसुत्त

एक समय भगवान मिथिला में मघदेव-आम्रवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि पूर्वकाल में इसी मिथिला में मघदेव नाम का एक धार्मिक राजा हुआ था। अपने सिर में पके के शदेखकर उसने सोचा कि मैंने मानुष-काम भोग लिया है, अब दिव्य भोगों के खोजने का समय है। अतः वह दाढ़ी-मूंछ मुंडवा, कापायवस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया। जाते समय उसने अपने श्रेष्ठ पुत्र कुमार को भी समय आने पर ऐसा ही करने के लिए कहा, जिससे यह कल्याणकारीमार्ग अनुप्रवर्तित रहे। उसने उसे इस बात के लिए भी सचेत किया कि कहीं वह इस उत्तम परंपरा का समुच्छेदक बन इसका अंतिम पुरुष न हो जाए।

कालांतर में प्रव्रजित हुआ राजा मघदेव चार ब्रह्मविहारों की भावना कर शरीर छोड़ने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ।

राजा मघदेव के पुत्र, पौत्रादि इसी मघदेव आम्रवन में इसी प्रकार प्रव्रजित हुए। इस परंपरा का निर्वाह करने वाला अंतिम राजा निमि हुआ। इस राजा के पुत्र कळारजनक ने घर-बार नहीं छोड़ा, जिससे वह इस कल्याणकारीमार्ग का समुच्छेदक और इस परंपरा का अंतिम पुरुष हुआ।

तत्पश्चात् भगवान ने प्रकट किया कि उस समय का राजा मघदेव मैं ही था। उस समय का कल्याणकारीमार्ग न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोधि, न निर्वाण के लिए था; यह केवल ब्रह्मलोक पाने तक था। परंतु अब जो आठ अंगों वाला मार्ग मेरे द्वारा प्रज्ञप्त किया गया है वह एकान्त निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि तथा निर्वाण के लिए है।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को सचेत किया कि कहीं तुम मेरे द्वारा प्रवर्तित इस कल्याणकारी मार्ग के अंतिम पुरुष मत हो जाना।

४. मधुरसुत्त

एक समय आयुष्मान महाक च्चानमधुरा में गुन्दावन में विहार करते थे। उस काल में माधुर राजा अवन्तिपुत्त ने वहां आकर उनसे पूछा – “भो क च्चान! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं – ‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, मुख से उत्पन्न, ब्रह्मज, ब्रह्म-निर्मित, ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं। इस बारे में आपको क्या कहना है?”

इस पर आयुष्मान महाक च्चान ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर यह सिद्ध कर दिया कि ब्राह्मण-समेत किसी भी वर्ण का व्यक्ति दुष्कर्म करने पर अपायगति और सत्कर्म करने पर सद्गति का भागी हो सकता है। वस्तुतः चारों वर्ण समान हैं, और लोक में यह प्रलाप ही है कि ‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं; इत्यादि।’

तदनंतर अत्यंत भावविभोर हो माधुर राजा बुद्ध की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

५. बोधिराजकु मारसुत्त

एक समय भगवान भग्ग (जनपद) में सुसुमारगिरि के भेसक ळावनमृगदाय में विहार करते थे। उस काल में बोधि राजकु मार ने उन्हें नव-निर्मित कोक नदनाम के प्रासाद पर आमंत्रित कर भिक्षुसंघ सहित भोजन करवाने के पश्चात् कहा – “भंते! मुझे ऐसा होता है कि सुख से सुख नहीं प्राप्त करना चाहिये, बल्कि दुःख से सुख प्राप्त करना चाहिये।”

इस पर भगवान ने कहा – “बुद्ध बनने से पहले मुझे भी ऐसा ही होता था। तब मैं तरुण अवस्था में ही घरबार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल पड़ा। आचार्य आळार कालाम ने मुझे आकिं चन्धायतन तक और आचार्य उद्दक रामपुत्त ने इससे आगे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक विद्या सिखाई और अपने बराबर के पदों पर स्थापित किया। परंतु चूंकि इनके द्वारा सिखाए गए धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोध और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

“वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां मैंने दांतों पर दांत रख कर, जिह्वा द्वारा तालु को दबा कर, चित्त का चित्त से निग्रह किया। इससे मेरी कांख से पसीना छूटता था। फिर मैंने श्वासरहित ध्यान करना शुरू किया। इससे शरीर पर अनेक प्रकार के उपद्रव प्रकट होने लगे और मैं मृत-समान हो गया। परंतु हर अवस्था में मेरा वीर्य न दबने वाला था, मेरी स्मृति अमुषित थी, मेरी काया तत्पर थी, भले साधना से पीड़ित होने के कारण अशांत हो जाती थी।

“तब एक बार मैंने आहार को बिल्कुल छोड़ देने की सोची, परंतु बाद में थोड़ा-थोड़ा आहार लेना आरंभ कर दिया। उस समय मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा पर पहुँच गया था। मेरी पीठ के कंठे और पेट की खाल आपस में सट गए थे। उस समय मुझे लगता था कि जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण तप करके दुःखपूर्ण, तीव्र, कठोर, कटुवेदना अनुभव करते रहे थे, कर रहे हैं अथवा करेंगे, वे इससे अधिक नहीं हो सकती। परंतु इस दुष्कर कारिकासे भी मुझे उत्तर-मनुष्यधर्म अलमार्यज्ञान-दर्शनविशेष की उपलब्धि नहीं हुई। तब मैंने सोचा कि क्या बोधि प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय भी हो सकता है?

“तब मैंने स्थूल आहार ग्रहण कर, सबल हो, प्रथम ध्यान में विहरने का उपक्रम किया। फिर द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगा।

“फिर एक रात्रि हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु, अडोल चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर मुझे पूर्वनिवासों की स्मृति उभर आई, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति का ज्ञान होने लगा और आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने से स्पष्ट हो गया कि जन्म समाप्त हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे करने को कुछ रहा नहीं। इस प्रकार प्रमादरहित, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए मेरी अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, अंधकार नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ।

“तब सहम्पति ब्रह्मा के सुझाव पर प्राप्त विद्या को मैंने लोगों में बांटने का निर्णय लिया। अपने आचार्यों—आळार कालाम तथा उद्दक रामपुत्त—का देहांत हो चुकने के कारण मैं उन्हें यह विद्या नहीं सिखला पाया। तब मैंने अपने पुराने साथियों—पंचवर्गीय भिक्षुओं—को धर्मोपदेश दिया, जिसके फलस्वरूप वे भी

उत्तम ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे।”

बोधि राजकुमार के एक प्रश्न के उत्तर में भगवान ने उसे पांच आध्यात्मिक प्रयास के अंगों की जानकारी भी दी। ये अंग हैं -

- (१) तथागत की बोधि के प्रति श्रद्धा का भाव,
- (२) नीरोगता एवं फुर्तीलापन,
- (३) अशठता,
- (४) दृढ़ पराक्रम, तथा
- (५) बींधने वाली आर्य प्रज्ञा।

फिर उन्होंने कहा कि इन अंगों से युक्त भिक्षु तथागत को विनायक पाकर अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में सात वर्षों में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार कर सकता है। फिर उन्होंने सात वर्ष की अवधि को शनैः शनैः कम करते हुए यहां तक कह दिया कि इन अंगों से युक्त भिक्षु सायंकाल को अनुशासित किया जाने पर प्रातःकाल और प्रातःकाल अनुशासित किया जाने पर सायंकाल (विशेष) निर्वाणपद प्राप्त कर सकता है।

६. अङ्गुलिमालसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में राजा पसेनदि के कोसलराज्य में अङ्गुलिमाल नाम का एक निर्दयी डाकू रहता था। वह मनुष्यों को जान से मार कर उनकी अंगुलियों की माला धारण करता था। उसके आतंक से ग्राम अ-ग्राम, निगम अ-निगम और जनपद अ-जनपद हो गए थे।

एक बार भगवान उसी रास्ते से जा रहे थे जहां अङ्गुलिमाल रहता था। इस पर अङ्गुलिमाल अपने हथियार ले उनके पीछे हो लिया, परंतु वह बड़े वेग से दौड़कर भी उनको पकड़ नहीं पाया। तब खड़ा होकर वह भगवान से बोला - “ठहर जा, श्रमण!”

भगवान ने कहा - “मैं तो ठहरा हुआ हूं, अङ्गुलिमाल! तू चल रहा है।”

अङ्गुलिमाल को यह समझ में नहीं आया कि यह श्रमण स्वयं चलते हुए को

ठहरा हुआ और मुझ ठहरे हुए को चलायमान कैसे बता रहा है। अतः उसने इस बारे में उनसे पूछा।

भगवान ने कहा –“अङ्गुलिमाल! सारे प्राणियों के प्रति दंड छोड़ देने से मैं सदा स्थिर हूँ, और तू प्राणियों में अ-संयमी होने से अ-स्थिर है।”

भगवान के धार्मिक वचन सुनकर अङ्गुलिमाल ने अपने हथियार फेंक दिये, और उनसे वहीं पर प्रव्रज्या मांगी। भगवान ने उसे कहा –“आओ, भिक्षु!” यही उसकी प्रव्रज्या हुई।

तब भगवान आयुष्मान अङ्गुलिमाल को अनुगामी-श्रमण बना, चारिका करते हुए, सावत्थी ले गए। वहाँ पर उन्हें भिक्षु के रूप में ध्यान करते हुए देखकर राजा पसेनदि को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिसे हम दंड से भी, शस्त्र से भी दान्त नहीं बना सके, उसे भगवान ने बिना दण्ड, बिना शस्त्र दान्त बना दिया है।

कालांतर में आयुष्मान अङ्गुलिमाल अर्हत अवस्था को प्राप्त हुए। विमुक्ति का सुख अनुभव करते हुए उन्होंने यह उदान कहा –

“जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघ से मुक्त हुए चंद्रमा के समान इहलोक को प्रकाशित करता है।

“कोई दंड से दमन करते हैं, कोई अंकुश और कोई से। तथागत द्वारा मैं बिना दंड, बिना शस्त्र ही दमित किया गया हूँ।

“हिंसक होने से पहले मेरा नाम अहिंसक था। आज मैं यथार्थ नाम वाला हो गया हूँ, क्योंकि मैं किसी की हिंसा नहीं करता।

“मैंने तीनों विद्याओं को पा लिया है, बुद्ध का शासन कर लिया है।”

७. प्रियजातिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में एक गृहपति का प्रिय, एक लौता पुत्र मर गया। इससे उसे न तो कोई काम अच्छा लगता, न भोजन, और वह श्मशान में जाकर विलाप करता रहता।

वह भगवान के पास गया, तो उन्होंने कहा कि प्रियजातिक से उत्पन्न होते ही

हैं - शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास (परेशानी)। उसे भगवान का यह कथन अच्छा नहीं लगा और वह वहां से चला गया।

उस समय थोड़ी ही दूर पर बहुत से जुआरी जुआ खेल रहे थे। गृहपति ने उन्हें यह सारी बात बतलाई, तो उन्होंने कहा कि प्रियजातिक से उत्पन्न होते हैं - आनंद, सौमनस्य। उसे उनका कथन अच्छा लगा - अपने चिंतन के अनुरूप।

यह चर्चा, क्रमशः, राजा के रनिवास में भी पहुँच गयी। वहां कोसल-नरेश पसेनदि ने रानी मल्लिका को भगवान के कहेको अनादर के भाव से कहा। तब रानी ने नाळिजङ्घ नाम के ब्राह्मण को भगवान के पास उनके कथन की पुष्टि करवाने के लिये भेजा। भगवान ने अनेक उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की।

तब रानी ने राजा को एक-एक करके पूछा कि क्या उन्हें कुमारी वजिरी, क्षत्रिया वासभा, सेनापति विटटूभ और वह स्वयं प्रिय हैं। राजा ने इन सबका प्रिय होना बतलाया। फिर रानी ने पूछ लिया कि यदि इन पर कोई संकट आ जाये, अथवा अन्यथात्व हो, तो क्या आपको शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास होंगे या नहीं? राजा ने कहा कि इससे तो मेरे जीवन का भी अन्यथात्व हो सकता है, शोक।दि उत्पन्न होने का तो कहना ही क्या है। फिर रानी ने कहा - “महाराज! इसीलिये जाननहार, देखनहार, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध भगवान ने कहा था कि प्रियजातिक से उत्पन्न होते ही हैं - शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास।”

तब राजा ने कहा - “आश्चर्य! मल्लिके !! आश्चर्य! मल्लिके !! मुझे लगता है भगवान प्रज्ञा से खूब बंध-बंध कर देखते हैं।” फिर उसने जिधर भगवान थे, उधर हाथ जोड़कर तीन बार यह उदान कहा -

“नमस्कार है उन भगवान, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को!”

८. बाह्यिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में एक बार कोसल के राजा पसेनदि ने अचिरवती नदी के तीर पर आयुष्मान आनन्द से कथा-संलाप करते हुए पूछा कि क्या भगवान

श्रमणों, ब्राह्मणों तथा विज्ञों से निन्दित कायिक, वाचिक अथवा मानसिक आचरण कर सकते हैं?

आयुष्मान आनन्द ने कहा – “नहीं, महाराज।”

तदनंतर राजा पसेनदि के अन्य प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान आनन्द ने बतलाया –

* अकुशल आचरण स-दोष होता है।

* स-दोष आचरण हिंसा-युक्त होता है।

* हिंसा-युक्त आचरण दुःख-परिणामी होता है।

* दुःख-परिणामी आचरण वह होता है जो अपनी पीड़ा, पर-पीड़ा, दोनों की पीड़ा के लिये होता है।

फिर यह भी बतलाया –

* कुशल आचरण अ-दोष होता है।

* अ-दोष आचरण हिंसा-रहित होता है।

* हिंसा-रहित आचरण सुख-परिणामी होता है।

* सुख-परिणामी आचरण वह होता है जो न अपनी पीड़ा, न पर-पीड़ा, न दोनों की पीड़ा के लिये होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि भगवान सभी अकुशल धर्मों से रहित और सभी कुशल धर्मों से युक्त हैं।

आयुष्मान आनन्द के कथा-संलाप से अत्यंत प्रसन्न हो कर राजा पसेनदि ने उन्हें एक सोलह हाथ लंबा, आठ हाथ चौड़ा बाह्यिक (वस्त्र-विशेष) भेंट किया, जो उन्होंने बाद में भगवान को समर्पित कर दिया।

९. धम्मचेतियसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में मेदाल्लुप नामक निगम में विहार करते थे। कोसलके राजा पसेनदि ने वहां जाकर उनसे कहा कि भगवान में मुझे धर्म-दर्शन होता है – भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है, संघ सुमार्ग पर आरूढ़ है। अपने इस कथन की पुष्टि में उसने कहा –

* कोई-कोईश्रमण-ब्राह्मण कुछ समय तक ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और फिर पांच कामगुणों के सेवन में लग जाते हैं। परंतु यहां भिक्षु जीवनभर परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

* बाहर विवाद ही विवाद चलते रहते हैं, परंतु यहां भिक्षु विवाद-रहित हो, दूध-जल के मिश्रण के समान, एकजुट होकर विहरते हैं।

* कोई-कोईश्रमण-ब्राह्मण कृश, दुर्वर्ण, रोगी दिखलाई देते हैं, पर यहां भिक्षु हृष्ट-पुष्ट, उदग्र (आनंदित) एवं प्रसन्नेन्द्रिय दिखलाई देते हैं।

* बाहर की परिषद में काम के समय लोग बीच-बीच में अपनी बात डालते रहते हैं, पर यहां परिषद ऐसी विनय-संपन्न होती है कि भगवान के धर्मोपदेश करते हुए श्रावकों के थूकने, खांसने तक का भी शब्द सुनाई नहीं देता।

* कई शास्त्रार्थ करने वाले भगवान के साथ वाद रोपने की तैयारी करते हैं, परंतु उनके सामने आने पर उनकी धार्मिक कथा से प्रेरित हो, वाद रोपना भूल, उल्टे उन्हीं के श्रावक बन, उनसे प्रब्रज्या की मांग करने लगते हैं।

* मैं जिनको आजीविका देता हूँ, यश लाता हूँ, वे भी मेरा उतना सम्मान नहीं करते, जितना भगवान का करते हैं। ये भगवान के शासन में अवश्य कोई विशेष बात देखते होंगे।

जब राजा पसेनदि धर्म-चैत्यों का बखान कर चला गया, तब भगवान ने भिक्षुओं को कहा – “भिक्षुओ! धर्म-चैत्यों को सीखो, धर्म-चैत्यों को पूरा करो, धर्म-चैत्यों को धारण करो। धर्म-चैत्य सार्थक एवं ब्रह्मचर्य के मूल हैं।”

१०. कण्णकत्थलसुत्त

एक समय भगवान उरुञ्जा में कण्णकत्थलमिगदाय में विहार करते थे। उस समय एक बार कोसल-नरेश पसेनदि ने वहां आकर उनसे सर्वज्ञता, चारों वर्णों की शुद्धि, देवों तथा ब्रह्मा के बारे में पूछा। भगवान ने उसके प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया।

लौटते समय कोसल-नरेश ने कहा – “भंते! जो-जो हमने भगवान से पूछा, वही-वही उन्होंने बतलाया। वह हमको रुचता है, अच्छा लगता है, उससे हम संतुष्ट हैं।”

५. ब्राह्मणवग्ग

१. ब्रह्मायुसुत्त

एक समय भगवान पांच सौ भिक्षुओं के महा-भिक्षुसंघ के साथ विदेह (जनपद) में चारिका कर रहे थे। उस समय मिथिला-निवासी १२०-वर्षीय ब्रह्मायु नाम के महाविद्वान ब्राह्मण को यह जानने की इच्छा हुई कि भगवान के बारे में जो यह ख्याति फैल रही है कि वह अरहंत, सम्यकसंबुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, अच्छी गति वाले, लोकों के जानकार, सर्वश्रेष्ठ, लोगों को राह पर लाने वाले सारथि, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं, इत्यादि – यह कहां तक सत्य है।

इस कार्य के लिये ब्रह्मायु ने उत्तर नाम के अपने शिष्य को भेजा। शिष्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि मुझे यह कैसे मालूम होगा कि भगवान की ख्याति सही है अथवा नहीं, उसने बतलाया कि मंत्रों के अनुसार महापुरुषों के बत्तीस शरीर लक्षण होते हैं। यदि वे घर में रहते हैं तो चक्रवर्ती राजा बनते हैं और घर त्याग दें तो सम्यकसंबुद्ध होते हैं।

तदनंतर उत्तर ने भगवान के पास जाकर उनके शरीर में बत्तीसों महापुरुष-लक्षणों को खोज लिया और छः माह तक छाया के समान उनका पीछा करते हुए उनकी चाल-ढाल को भी देखा। तब पूर्णतया संतुष्ट होकर उसने अपने आचार्य से भगवान की ख्याति सही होने के बारे में निवेदन कर दिया।

कालांतर में जब चारिका करते हुए भगवान मिथिला पहुँचे, तब ब्रह्मायु स्वयं दर्शनार्थ उनके पास चला गया और उसने भी उनके शरीर पर बत्तीसों महापुरुष-लक्षणों को जान लिया। भगवान ने भी उसे इस बारे में अपना संशय दूर करने के लिये कहा। उन्होंने यह भी कहा कि 'मुझे अभिज्ञेय अभिज्ञात हो गया है, मैंने भावनीय को भावित कर लिया है और प्रहातव्य को प्रहीण कर दिया है, इसीलिए मैं बुद्ध हूँ'।

तदनंतर ब्रह्मायु की जिज्ञासा शांत करने के लिये भगवान ने उसे 'ब्राह्मण', 'वेदगू', 'त्रैविद्य', 'श्रोत्रिय', 'अर्हत', 'केवली', 'मुनि' तथा 'बुद्ध' – इन शब्दों का सही आशय भी समझाया। यह सुनते ही ब्रह्मायु भगवान के पांव चूमने और

सहलाने लगा और इस प्रकार उनके प्रति अत्यंत विनम्रता का भाव प्रदर्शित करने में लग गया।

तब भगवान ने उसे रोक कर उसको आनुपूर्वी कथा कहती जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगों के दुष्परिणाम, अपकार, मलीनता, और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकाशित किया। जब उन्होंने ब्रह्मायु को उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्वृत-चित्त (प्रसन्न-चित्त) जान लिया तब उसे बुद्धों का स्वयं जाना हुआ धर्मोपदेश – दुःख, समुदय, निरोध, मार्ग – प्रकाशित किया। तत्पश्चात् जैसे धवल, निर्मल वस्त्र रंग को अच्छी तरह पकड़ लेता है, वैसे ही ब्रह्मायु को उसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, विमल, धर्मचक्षु – ‘जो कुछ उत्पन्न होने वाला (समुदयधर्मा) है, वह सब कुछ नाशवान (निरोधधर्मा) है’ – उत्पन्न हुआ।

इस पर आश्चर्यचकित, एवं भावविभोर हो, ब्रह्मायु भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

इसके कुछ ही दिन बाद ब्रह्मायु का देहांत हो गया। भिक्षुओं द्वारा उसकी गति के बारे में पूछे जाने पर भगवान ने बतलाया कि ब्रह्मायु पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक (देवता) हो, वहीं निर्वाण प्राप्त करने वाला है, उस लोक से लौट कर आने वाला नहीं है।

२. सेलसुत्त

एक समय भगवान साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ अङ्कुराप जनपद में चारिका करते हुए आपण नाम के निगम में पहुँचे। वहाँ के णियजटिल उनसे मिलने के लिये आया, और उनके धर्मोपदेश से समुत्तेजित, संप्रहर्षित हो उसने उन्हें भिक्षु-संघ सहित अगले दिन अपने यहाँ भोजन करने के लिये आमंत्रित किया।

जब अपने आश्रम पर पहुँच कर के णियजटिल व्यवस्था में जुट गया, तब तीन सौ विद्यार्थियों को वेद पढ़ाने वाले सेल नामक ब्राह्मण को भी उससे यह पता चल गया कि अगले दिन भिक्षु-संघ सहित ‘बुद्ध’ वहाँ आ रहे हैं। यह सोचकर कि ‘बुद्ध’ – ऐसा घोष भी संसार में दुर्लभ है, और सम्यकसंबुद्ध में महापुरुषों के

बत्तीस शरीर-लक्षण होते हैं, वह अपने तीन सौ माणवकों के साथ भगवान के पास मिलने के लिये चला गया।

वहां पहुँच कर सेल ने भगवान के शरीर पर बत्तीसों महापुरुष-लक्षण देख लिये, और अपना यह संशय भी दूर किया कि वह सचमुच सम्यक संबुद्ध हैं। तदुपरांत उसने अपनी परिषद के साथ भगवान के पास प्रव्रज्या एवं उपसंपदा पाई। कालांतर में वह और उसकी परिषद अर्हत अवस्था को प्राप्त हुए।

३. अस्सलायनसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार कर रहे थे। उस समय अस्सलायन ब्राह्मण ने उनके पास जाकर कहा –“भो गोतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं – ‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं। ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण है, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, मुख से उत्पन्न, ब्रह्मज, ब्रह्म-निर्मित, ब्रह्मा के दायद हैं।’ इस विषय में आपका क्या कहना है?”

इस पर भगवान ने अस्सलायन से ही एक-एक कर कई प्रश्न पूछे जिनका उत्तर देते हुए उसने स्वीकार किया कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र में से कोई भी प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, मिथ्या दृष्टि वाला हो, काया छोड़, मृत्यु के उपरांत दुर्गति को प्राप्त होगा, और यदि वह इनसे विरत रहेगा, तो सद्गति को प्राप्त होगा।

अस्सलायन ने यह भी स्वीकार किया कि चारों वर्णों में से किसी भी वर्ण का व्यक्ति वैर-रहित, द्वेष-रहित, मैत्री-चित्त की भावना कर सकता है, केवल ब्राह्मण ही नहीं। किसी भी वर्ण का व्यक्ति शुक्ति (सुतुही, सितुआ) और स्नान-चूर्ण लेकर नदी पर जाकर मैल धो सकता है, केवल ब्राह्मण ही नहीं। किसी भी वर्ण का व्यक्ति आग जलाए, वह जाज्वल्यमान होगी और उससे आग का काम लिया जा सकेगा।

अंत में भगवान ने अस्सलायन को पूर्व-काल की बात बताई जबकि सात ब्राह्मण-ऋषियों को भी ऐसी ही पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई थी कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, इत्यादि। परंतु वे असित देवल नाम के एक अन्य ऋषिके समक्ष अपनी धारणा को सिद्ध नहीं कर पाए।

यह सुन कर, आश्चर्य-चकित हो, अस्सलायन भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

४. घोटमुखसुत्त

एक समय आयुष्मान उदेन वाराणसी में खेमिय अंबवन में विहार करते थे। वहां धार्मिक प्रव्रज्या को लेकर उनका घोटमुख ब्राह्मण के साथ कथा-संलाप आरंभ हुआ।

इस कथा-संलाप के दौरान आयुष्मान उदेन ने घोटमुख को चार प्रकार के पुद्गलों की जानकारी दी - (१) आत्मंतप, (२) परंतप, (३) आत्मंतप-परंतप, तथा (४) न-आत्मंतप-न-परंतप। (विस्तार के लिए देखिए “कन्दरकसुत्त” शृष्ट सं. [१३१])

घोटमुख ब्राह्मण ने कहा कि इनमें से मुझे चौथे प्रकार का पुद्गल रुचता है।

तत्पश्चात् आयुष्मान उदेन ने उसे दो प्रकार की परिषदों की जानकारी दी - (१) मणि-कुंडल, पुत्र-भार्या, दास-दासी, खेत-मकान, सोना-चांदी में अनुरक्त; और (२) मणि-कुंडल, पुत्र-भार्या, दास-दासी, खेत-मकान, सोना-चांदी को छोड़, घर से बेघर हो, प्रव्रज्या-प्राप्त।

घोटमुख ब्राह्मण ने स्वीकार किया कि चौथे प्रकार के पुद्गल अधिकतर दूसरी प्रकार की परिषद में मिलते हैं। इसके साथ ही धार्मिक प्रव्रज्या के बारे में जो उसकी गलतफहमी थी, वह भी दूर हो गयी।

तदनंतर आयुष्मान उदेन ने घोटमुख के चाहने पर उसे चार प्रकार के पुद्गलों के बारे में बड़े विस्तार से जानकारी दी। इस पर आश्चर्य-चकित हो घोटमुख ने कहा कि मैं आयुष्मान उदेन की शरण जाता हूँ, और धर्म तथा संघ की भी। पर आयुष्मान उदेन ने उसे अपनी बजाय भगवान की शरण जाने के लिये प्रेरित किया।

घोटमुख ब्राह्मण ने पाटलिपुत्र में संघ के लिये उपस्थान-शाला भी बनवाई, जो ‘घोटमुखी’ कहलाई।

५. चङ्गीसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल में चारिका करते हुए ओपासाद नाम के ब्राह्मण-ग्राम में जा पहुँचे। उस समय चङ्गी नाम का ब्राह्मण कोसल-नरेश पसेनदि द्वारा प्रदत्त ओपासाद का स्वामी हो कर रहता था।

चङ्गी ब्राह्मण का मन हुआ कि वह भी अन्य ब्राह्मणों के साथ भगवान के दर्शनार्थ जाए परंतु कुछ लोगों ने उसे वहां जाने के लिए हतोत्साहित किया और अनेक प्रकार की युक्तियां देते हुए कहा कि श्रमण गौतम को ही उसके दर्शनार्थ आना चाहिए। इस पर उसने उनकी सभी युक्तियों का खंडन करते हुए, भगवान के कितने ही अन्य गुणों का बखान करते हुए, कहा कि ओपासाद में आने के कारण वह हमारे अतिथि हैं। अतः मुझे ही उनके दर्शनार्थ जाना चाहिए।

तब वह अन्य ब्राह्मणों के साथ भगवान के विहार करने के स्थान पर जा पहुँचा। वहां कापटिक नाम के तरुण ब्राह्मण ने भगवान से अनेक प्रकार के प्रश्न किए जिनका उन्होंने समुचित समाधान किया इसके पश्चात् कापटिक हने लगा -

“सत्य-अनुरक्षण को हमने आप गौतम से पूछा। आपने उसे हमें बतलाया। वह हमें रुचता है। हम उससे संतुष्ट हैं। ऐसे ही सत्य-अनुबोध, सत्य-प्राप्ति, सत्य-प्राप्ति के बहुकारी धर्म और अन्य बातों के बारे में भी जो कुछ हमने पूछा, वह सब आपने हमें बतलाया। वह हमें रुचता है। हम उससे संतुष्ट हैं।

“हे गौतम! पहले हम ऐसा जानते थे कि कहां नीच, काले, ब्रह्मा के पांव से उत्पन्न, मुंडक-श्रमण और कहां धर्म का ज्ञान! परंतु अब आप गौतम ने मुझ में श्रमणों के प्रति प्रेम, श्रद्धा एवं सम्मान का भाव पैदा कर दिया है।”

तत्पश्चात् आश्चर्य-चकित हो कापटिक भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

६. एसुकारीसुत्त

एक समय भगवान सावथी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां जाकर एसुकारी ब्राह्मण ने उनसे कहा कि ब्राह्मण लोग चारों वर्णों को लेकर चार प्रकार की परिचर्या प्रज्ञप्त करते हैं - इस बारे में आपका क्या कथन है?

भगवान ने उसी से पूछा कि क्या संसार के लोगों ने ब्राह्मणों को कोई ऐसा अधिकार दे रखा है कि वे दूसरों के लिये भी परिचर्या का प्रज्ञापन करें? फिर भी मैं उसे परिचर्या के योग्य मानता हूँ जिसकी परिचर्या करने से श्रद्धा, शील-सदाचार, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा में वृद्धि होती हो।

फिर एसुकारी ने उनसे पूछा कि ब्राह्मण लोग हर वर्ण के लिये कि सी-न-कि सी निजी संपत्ति का प्रज्ञापन करते हैं, जैसे ब्राह्मण के लिये भिक्षाचार, क्षत्रिय के लिये धनुष-कलाप, वैश्य के लिये कृषि एवं गोरक्षा, और शूद्र के लिये लकड़ी काटना, ढोना, आदि - इस बारे में आपका क्या कथन है?

भगवान ने फिर उसी से पूछा कि क्या संसार के लोगों ने ब्राह्मणों को अधिकृत कर रखा है कि वे दूसरों के लिये निजी संपत्ति का प्रज्ञापन करें! फिर भी मैं लोकोत्तर आर्य धर्म को पुरुष की निजी संपत्ति प्रज्ञप्त करता हूँ। माता-पिता के पुराने कुल-वंश के कारण, जन्म लेने पर, कोई व्यक्ति क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र कहलाता है, परंतु जब इनमें से कोई भी घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है और तथागत द्वारा स्वयं जाने गए धर्म-विनय को पाकर, शील-सदाचार में पुष्ट होकर, चित्त से राग-द्वेष को दूर कर, सम्यक दृष्टि वाला हो जाता है, तब वह न्याय पर आधारित कुशल धर्म का आराधक हो जाता है।

यह सुनकर आश्चर्य व्यक्त करते हुए, भावविभोर हो, एसुकारी ब्राह्मण भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

७. धनञ्जानिसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में वेळुवन कलन्दक निवाष्में विहार करते थे। उस काल में आयुष्मान सारिपुत्त को यह पता चलने पर कि धनञ्जानि नाम का ब्राह्मण अब धर्म में प्रमाद करने लगा है, उन्होंने उससे इसका कारण जानना चाहा। धनञ्जानि ने बतलाया कि माता-पिता, पुत्र-भार्या, नौकर-चाकर आदि के पालन-पोषण में लगे रहने से ऐसा होने लगा है।

इस पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उसे समझाया कि दूसरे भी धार्मिक कर्मात्त होते हैं जिनसे इन सबका पालन-पोषण किया जा सकता है, किंतु पाप-कर्म को न करते हुए, अपना तो पुण्य-मार्ग को ही चाहिए।

कालांतर में धनञ्जानि बहुत बीमार हो गया और उसने आयुष्मान सारिपुत्त

को अपने घर बुलवा भेजा। उनके वहां पहुँचने पर धनञ्जानि ने उन्हें अपनी असह्य, मरणांतक वेदना से अवगत कराया।

यह जानकर आयुष्मान सारिपुत्र को लगा कि मैं क्यों न इसे ब्रह्माओं की सायुज्यता का मार्ग उपदेशूँ, जैसा कि ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोक के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं।

तदनंतर उन्होंने उसे इस मार्ग के बारे में बतलाया कि कैसे कोई भिक्षु मैत्री-भरे, विपुल, प्रमाद-रहित, वैर-रहित, द्वेष-रहित चित्त से एक-एक करके सभी दिशाओं को व्याप्त करके विहरता है, और फिर इसी प्रकार, क्रमशः, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा-भरे चित्त से विहरता है।

तत्पश्चात् आयुष्मान सारिपुत्र धनञ्जानि ब्राह्मण को, स-क रणीय होते हुए भी (जहां पहुँच कर आगे भी करने को कुछ शेष रहता है), हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर वहां से चल दिए। इसके कुछ ही समय पश्चात् ब्राह्मण ने अपने प्राण छोड़ दिए।

आयुष्मान सारिपुत्र ने भगवान के पास जाकर उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। इस पर उन्होंने पूछा कि तुम स-क रणीय होते हुए उसे हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर वहां से क्यों चले आए? आयुष्मान सारिपुत्र ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण लोग ब्रह्म-लोक के प्रति बहुत श्रद्धा-भाव रखते हैं, इसीलिए मैंने धनञ्जानि को ब्रह्माओं की सायुज्यता का मार्ग उपदेशित किया।

भगवान ने कहा कि धनञ्जानि मरकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ है।

८. वासेट्सुत्त

एक समय भगवान इच्छानङ्गल के वनखंड में विहार करते थे। उस काल में वासेट्ट और भारद्वाज माणवों ने उनके पास जाकर यह जानना चाहा कि कोई व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण होता है, अथवा कर्म से।

भगवान ने उन्हें समझाया कि जन्म से न ब्राह्मण होता है, न अ-ब्राह्मण। कर्म से ब्राह्मण होता है, और अ-ब्राह्मण भी। चलते हुए रथ के चक्के की मेख के समान प्राणी कर्म में बंधे हैं। तप, ब्रह्मचर्य, संयम और दम – इनसे ही ब्राह्मण होता है। जो पूर्वजन्म को जानता है, स्वर्ग और अपाय गति को जानता है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है – उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

यह सुनकर दोनों माणव भाव-विभोर हो, भगवान की शरण चले गये, और धर्म तथा संघ की भी।

९. सुभसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने तोदेय्य-पुत्र सुभ माणवक की इन भ्रांतियों को दूर किया कि - गृहस्थ ही न्याय-कुशल-धर्म (निर्वाण) का आराधक होता है, प्रव्रजित नहीं; घर में रह कर किया जाने वाला कर्म बड़ा फलप्रद होता है, प्रव्रज्या वाला नहीं।

तत्पश्चात् सुभ माणवक ने बतलाया कि ब्राह्मण पुण्य करने तथा कुशल की आराधना के लिए इन पांच धर्मों का प्रज्ञापन करते हैं -

- (१) सत्य,
- (२) तप,
- (३) ब्रह्मचर्य,
- (४) अध्ययन, तथा
- (५) त्याग।

परंतु भगवान द्वारा पूछे जाने पर उसने स्वीकार किया कि कोई भी ब्राह्मण, उनका आचार्य, आचार्य-प्राचार्य, मंत्रों के प्रवक्ता ऋषि ऐसे नहीं हैं जो यह कहते हों कि हम इन पांच धर्मों को स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, इनके विपाक को बतलाते हैं। इससे ब्राह्मणों का कथन अंध-वेणी-परंपरा-समान हो जाता है।

सुभ माणवक ने कहा कि पोक्खरसाति ब्राह्मण का कथन है कि जो कोई श्रमण-ब्राह्मण उत्तर-मनुष्यधर्म अलमार्यज्ञानदर्शन-विशेष की उपलब्धि का दम भरते हैं वह उपहासास्पद है, क्योंकि मनुष्य होकर कोई कैसे इसका साक्षात्कार कर सकता है? इस पर भगवान ने कहा कि पोक्खरसाति का यह दृष्टिकोण इसलिए है क्योंकि वह स्वयं पांच नीवरणों (राग, द्वेष, तन-मन का आलस्य, उद्धतपन-संकोच, तथा संशय) से ग्रस्त है।

तदुपरांत सुभ माणवक के चाहने पर भगवान ने उसे ब्रह्माओं की सलोकता के मार्ग का उपदेश दिया, जिसे सुन कर आश्चर्यचकित हो वह माणवक भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

१०. सङ्गारवसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल जनपद में चारिका करते हुए चञ्चलिकप्प ग्राम में पहुँचे। वहाँ सङ्गारव नाम के माणव ने उनसे पूछा – “भो गौतम! कोई-कोईश्रमण-ब्राह्मण आदि-ब्रह्मचर्य के बारे में यह दावा करते हैं कि उन्होंने इसी जन्म में निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया है। इनमें आप कौन हैं?”

इस पर भगवान ने कहा – “भारद्वाज! कोई-कोईश्रमण-ब्राह्मण केवल सुनकर ही आदि-ब्रह्मचर्य का दावा करते हैं, जैसे त्रैविद्य ब्राह्मण; कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण श्रद्धा-मात्र से ऐसा दावा करते हैं, जैसे तार्किक-विमर्शी; और कोई-कोईश्रमण-ब्राह्मण पहले न सुने गए धर्मों में से धर्म को स्वयं जानकर ऐसा दावा करते हैं – मैं इनमें से हूँ।”

तदनंतर भगवान ने बुद्ध बनने से पहले घर-बार छोड़ने से लेकर विमुक्त होने तक अपनी जीवनी का परिचय दिया। यह जानकर सङ्गारव माणव ने कहा – “आप गौतम का ‘पधान’ (प्रयास) श्रेष्ठ था, सत्पुरुष के अनुरूप था – अर्हत, सम्यक संबुद्ध जैसा था।”

अंततः सङ्गारव माणव भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

मज्झिमनिकाय भाग - ३

१. देवदहवग्ग

१. देवदहसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में देवदह नाम के निगम में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बतलाया कि निर्ग्रथ इस मान्यता वाले हैं कि 'जो कुछ भी यह पुरुष-पुद्गल सुख, दुःख अथवा अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पहले किये गये कर्मों के कारण होता है। पुराने कर्मों का तपस्या द्वारा अंत करने से, नये कर्मों के न करने से, भविष्य में विपाक नहीं होता। भविष्य में विपाक नहीं होने से कर्म-क्षय, कर्म-क्षय से दुःख-क्षय, दुःख-क्षय से वेदना-क्षय और वेदना-क्षय से सभी दुःख जीर्ण हो जाते हैं।'

उन्होंने कहा कि निर्ग्रथों से पूछे जाने पर वे यह नहीं बतला पाते कि वे पहले थे भी या नहीं; उन्होंने पूर्व में पाप-कर्म किया भी है या नहीं; उन्होंने ऐसा-ऐसा पाप-कर्म कर रखा है; इतना दुःख नष्ट हो गया है, इतना अभी नष्ट करना है, इतना दुःख नष्ट होने पर सारा दुःख नष्ट हो जायेगा; इत्यादि। उनकी इस अनभिज्ञता से उनकी मान्यता संगत नहीं टहरती।

फिर भगवान ने विस्तार से समझाया कि निर्ग्रथों का उपक्रम, प्रयास क्योंकर निष्फल होता है, और वस्तुतः सफल उपक्रम, प्रयास क्या होता है।

सफल उपक्रम, प्रयास का विस्तृत विवरण देते हुए भगवान ने अंत में कहा कि जब कोई व्यक्ति तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर घर-बार छोड़ आर्य शील-स्कंध, आर्य इंद्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो, नीवरणों को चित्त से दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगता है, तब उसका उपक्रम, प्रयास सफल होता है। ऐसे ही उसका उपक्रम, प्रयास तब सफल होता है जब वह, क्रमशः, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान वा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त

कर विहरने लगता है, अपने अनेक प्रकार के पूर्व-निवासों का अनुस्मरण करने लगता है, विशुद्ध दिव्य चक्षु से प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति को जानने लगता है, और अंततः आस्रवों के क्षय से उसे यह बोध होता है – ‘मैं विमुक्त हो गया!’ और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’

२. पञ्चतयसुत्त

एक समय भगवान सावथी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बतलाया कि कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण अपरांत दृष्टि वाले और कोई-कोईपूर्वांत दृष्टि वाले होते हैं। अपरांत दृष्टि वाले ऐसे मत प्रतिपादित करते हैं जैसे कि ‘मरने के बाद आत्मा संज्ञी (होश वाली) और नीरोग होती है’; ‘मरने के बाद आत्मा अ-संज्ञी और नीरोग होती है’; ‘मरने के बाद आत्मा न-संज्ञी-न-असंज्ञी और नीरोग होती है’; इत्यादि। पूर्वांत दृष्टि वाले ऐसे मतों का प्रतिपादन करते हैं जैसे कि ‘लोक और आत्मा शाश्वत हैं – यही सच है, बाकी सब झूठ है’; ‘लोक और आत्मा अ-शाश्वत हैं – यही सच है, बाकी सब झूठ है’; ‘लोक और आत्मा शाश्वत भी हैं और अ-शाश्वत भी – यही सच है, बाकी सब झूठ है; इत्यादि।

भगवान ने कहा कि तथागत इन सभी वादों, मतों को अभिज्ञा के स्तर पर जानते हैं। वे जानते हैं कि ‘यह संस्कृत (बने हुए) होने से स्थूल हैं और जो कुछ संस्कृत है उसका निरोध होता ही है’ – अतः इनसे निकलने का मार्ग देख कर, वह इनसे परे चले जाते हैं।

उन्होंने आगे कहा कि कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण अपरांत तथा पूर्वांत – दोनों प्रकार की दृष्टियों को छोड़, काम-संयोजनों से परे हट, एकांत ध्यान से होने वाली ‘प्रीति’, ‘निरामिष सुख’, ‘अदुःखद-असुखद वेदना’ की अवस्था को प्राप्त कर विहरते हैं, और कोई-कोई तो इससे भी आगे बढ़कर कहने लगते हैं – ‘मैं शांत हूं, उपादान-रहित हूं, निर्वाण-प्राप्त हूं’। तथागत इन अवस्थाओं के बारे में भी जानते हैं कि ‘ये संस्कृत (बनी हुई) होने से स्थूल हैं, और जो कुछ संस्कृत है उसका निरोध होता ही है’ – अतः इनसे निकलने का मार्ग देख कर, वह इनसे परे चले जाते हैं।

अंत में भगवान ने कहा कि तथागत ने अनुत्तर, श्रेष्ठ शांति-पद का ज्ञान प्राप्त

कर लिया है, जो कि यह छः स्पर्शयतनों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया और मन तथा इनके विषयों) के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दुष्परिणाम और निस्सरण (बाहर निकलने के मार्ग) को जानकर, बिना उपादान किए, विमुक्ति (छुटकारा) है।

३. कि न्तिसुत्त

एक समय भगवान् कुसिनारा में बलिहरण वनखंड में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि क्या श्रमण गौतम चीवर, पिंडपात, शयनासन अथवा अमुक भवाभव के लिए धर्मोपदेश करते हैं? भिक्षुओं ने कहा –‘नहीं; वे अनुकंपक एवं हितैषी हैं, अनुकंपक पाकर धर्मोपदेश करते हैं।’ इस पर भगवान् ने कहा कि यदि ऐसा है, तो मेरे द्वारा जान कर उपदेश किए गए धर्मों का सभी एक जुट होकर, प्रसन्नचित्त से, बिना विवाद किये अभ्यास करो। ये धर्म हैं – चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग।

भगवान् ने आगे कहा कि बिना विवाद किये, मिल-जुल कर रहने पर भी भिक्षुओं में धर्म के विषय में किन्हीं आयुष्मानों के कथन को लेकर चार प्रकार के मत हो सकते हैं – ‘अर्थ में भिन्नता, शब्द में भी भिन्नता’; ‘अर्थ में भिन्नता, शब्द में समानता’; ‘अर्थ में समानता, व्यंजन में भिन्नता’; ‘अर्थ में समानता, शब्द में भी समानता।’ ऐसी दशा में सुवचतर भिक्षु को सारी बात बता कर दुर्गृहीत को दुर्गृहीत और सुगृहीत को सुगृहीत जान कर, धर्म और विनय को ही बोलना चाहिए।

तदुपरांत भगवान् ने कहा कि यदि किसी भिक्षु से कोई अपराध हो जाए, तो उसके प्रति अभियोग लाने की जल्दी नहीं करनी चाहिये, बल्कि यह जांच करनी चाहिये कि क्या अभियोग लाने से –

- (१) मुझे परेशानी होगी, उसको चोट पहुँचेगी;
- (२) मुझे परेशानी नहीं होगी, पर उसको चोट पहुँचेगी;
- (३) मुझे परेशानी होगी, पर उसको चोट नहीं पहुँचेगी;
- (४) मुझे भी परेशानी होगी और उसको भी परेशानी होगी? यदि सचमुच

उस भिक्षु को बुराई से हटा कर भलाई में प्रतिष्ठित किया जा सकता हो, तो दोष कह देना चाहिए, अन्यथा उपेक्षा करनी चाहिए।

ऐसे ही कभी परस्पर वचन का अंतर पड़ जाए, अथवा चित्त में दुर्भावना, अविश्वास, असंतोष जाग जाए, तब भी सुवचन भिक्षु के पास जाकर उसे यह बात बतानी चाहिए। वह यही कहेगा – ‘आवुसो! इस बात को छोड़ें बिना निर्वाण का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है।’

४. सामगामसुत्त

एक समय भगवान् सक्क (शाक्य) जनपद में सामगाम में विहार करते थे। वहां आयुष्मान् आनन्द ने श्रामणेय चुन्द द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर उनसे कहा कि पावा में हाल ही में निर्ग्रथ नातपुत्र के प्राण छोड़ने के पश्चात् निर्ग्रथों में विभाजन होकर उनमें आपस में कलह, वाद-विवाद होने लगा है। फिर उन्होंने आशंका व्यक्त की कि कहीं भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद भी संघ में ऐसा कुछ न होने लगे, जो बहुतों के अहित, असुख के लिए होगा।

इस पर भगवान् ने कहा – “आनन्द! मैंने साक्षात्कार कर जिन धर्मों का उपदेश किया है, वे हैं – चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग। क्या इनके बारे में कोई दो भिक्षु अलग-अलग मत रखते हैं ?”

आयुष्मान् आनन्द ने प्रत्युत्तर दिया – “नहीं। लेकिन जो भगवान् के सहारे विहरते हैं, वे भगवान् के न रहने पर, संघ में आजीविका अथवा भिक्षु-नियमों के बारे में विवाद खड़ा कर सकते हैं। यह विवाद बहुतों के अहित, असुख के लिए होगा।”

तब भगवान् बोले – “संघ में आजीविका अथवा भिक्षु-नियमों के बारे में विवाद सामान्य बात है। मार्ग अथवा प्रतिपदा के बारे में यदि संघ में विवाद उठ खड़ा हो, तो वह बहुतों के अहित, असुख के लिए होगा।”

तत्पश्चात् उन्होंने विवाद के छः कारणों पर प्रकाश डाला। फिर उन्होंने चार अधिकरण और सात अधिकरण-शमथ बतलाया। फिर यह समझाया कि समय-समय पर उत्पन्न होने वाले अधिकरणों (झगड़ों) को शांत करने के लिये अधिकरण-शमथ को कैसे काम में लेना चाहिए।

अंत में भगवान ने विवादरहित हो, एक जुट बने रहने के लिए याद रखने योग्य छः धर्म बतलाए।

५. सुनक्खत्तसुत्त

एक समय भगवान वेसाली में महावन की कू टागारशाला में विहार करते थे। उस समय बहुत से भिक्षुओं ने उनके सामने अपनी निर्वाण-प्राप्ति का इस प्रकार बखाना किया –“हम प्रज्ञापूर्वक जान गए हैं कि जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।”

लिच्छवि-पुत्र सुनक्खत्त ने भगवान से यह जानना चाहा कि जिन भिक्षुओं ने अपनी निर्वाण-प्राप्ति का बखाना किया है, वह ठीक बखाना किया है, या कि नहीं-कि नहीं ने अभिमानवश ऐसा किया है?

भगवान ने बतलाया कि इनमें दोनों ही प्रकारके भिक्षु हैं –ठीक बखान करने वाले और अभिमानवश ऐसा करने वाले।

तदुपरांत भगवान ने कहा कि सांसारिक लाभ चाहने वाला व्यक्ति अपने जैसे व्यक्ति की ही संगति करता है, उसी से प्रीति करता है; आनेज्ज (स्थिर) समाधि की बात करने पर उस पर कान नहीं देता, और न ऐसी बात कहने वाले की संगति करता है, न उससे प्रीति करता है। वह आनेज्ज के संयोजन से वि-संयुक्त होता है। ऐसे ही आनेज्ज का अनुरागी सांसारिक लाभ के संयोजन से, आर्किं चन्यायतन का अनुरागी आनेज्ज के संयोजन से, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अनुरागी आर्किं चन्यायतन के संयोजन से, सम्यक निर्वाण का अनुरागी नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के संयोजन से वि-संयुक्त होता है।

भगवान ने आगे कहा कि यदि कोई भिक्षु यह समझे कि मैंने तृष्णा-रूपी शल्य को फेंक दिया है और अविद्या-रूपी विष-दोष को दूर कर दिया है, और इस प्रकार अपने आप को सम्यक निर्वाण का अनुरागी समझे, परंतु जो बातें ऐसे व्यक्ति के लिए अ-हितकर हों उनमें लगा रहे, तो उसका चित्त राग से ध्वस्त होगा, और वह ऐसे ही चित्त से मृत्यु अथवा मृत्यु-समान दुःख को प्राप्त होगा। परंतु यदि वह अ-हितकर बातों में न लगे तो उसका चित्त राग से ध्वस्त नहीं होगा, और वह ऐसे चित्त से न मृत्यु, न मृत्यु-समान दुःख को प्राप्त होगा।

भगवान ने और आगे कहा कि जो भिक्षु छः स्पर्शायतनों में संयमी हो, ‘उपधि

(आसक्ति) दुःख का मूल है' –इसे जान उपधि-रहित हो, उपधि के क्षय से मुक्त हो गया हो, वह उपधि में काया को लगाए, या चित्त को दे –ऐसा नहीं हो सकता।

६. आनेञ्जसप्पायसुत्त

एक समय भगवान् कु रुजनपद में कम्मासधम्मनाम के निगम में विहार करते थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि काम (विषय-भोग) अनित्य, तुच्छ, असत्य एवं नाशवान् है। ऐहिक और पारलौकिक काम तथा काम-संज्ञाएं मार का फंदा हैं। यहाँ पापपूर्ण, अकुशल मन लोभ, द्वेष आदि के भाव को जगाता है जो अभ्यास करने वाले आर्य-श्रावक का अंतराय (विघ्न) होता है।

फिर भगवान् ने कहा कि आर्य-श्रावक विपुल, विशाल चित्त से लोक को अभिभूत कर, मन से अधिष्ठित कर, विहरता है, जिससे उसकी मानसिक बुराइयाँ दूर हो, चित्त प्रसन्नता से भर जाता है, और वह आनेञ्ज (अचंचलता) को प्राप्त होता है, या प्रज्ञा द्वारा मुक्त होता है। इस बात की संभावना रहती है कि काया छोड़ने के पश्चात् उसका विज्ञान आनेञ्ज को प्राप्त होवे। यह 'आनेञ्ज-सप्पाय' (अचंचलता के लिए लाभप्रद) प्रतिपदा कहलाती है, जो तीन प्रकार की होती है।

इसके पश्चात् भगवान् ने इससे प्रणीततर 'आकिं चन्त्यायतन-सप्पाय' की तीन प्रतिपदाओं, और फिर 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' की तीन प्रतिपदाओं के बारे में बतलाया।

तदनंतर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से पूछा कि यदि कोई भिक्षु ऐसे मार्गारूढ़ हो – 'यह न होता, यह मेरा न होता; नहीं होगा, न मेरा होगा; जो है, जो हो गया है – उसे मैं प्रज्ञापूर्वक छोड़ता हूँ' – इस प्रकार उपेक्षाभाव जगा ले, तो क्या वह परिनिर्वाण-लाभ कर पायेगा अथवा नहीं?

भगवान् ने कहा कि जो कोई उपेक्षा-भाव का अभिनंदन कर, उससे चिपकाव कर लेगा, वह परिनिवृत्त नहीं होगा, और जो इसका अभिनंदन न कर, उससे चिपकाव पैदा नहीं करेगा, वह परिनिवृत्त होगा।

तत्पश्चात् 'आर्य विमोक्ष' के बारे में पूछे जाने पर भगवान् ने कहा कि ऐहिक

तथा पारलौकिक काम, काम-संज्ञा, रूप, रूप-संज्ञा, आनेञ्ज-संज्ञा, आर्किं चन्यायतन-संज्ञा, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन-संज्ञा – यहाँ तक सत्काय होता है। इससे चिपकावन कर जो चित्त का विमोक्ष (छूटना) है, वह अमृत (निर्वाण) है।

अंत में भगवान ने कहा –“आनन्द! जो कुछ अनुकंपा करके, अनुकंपक, हितचिंतक शास्ता को करना चाहिये, वह सब मैंने तुम्हारे लिये कर दिया है। अब ये रहे वृक्ष-मूल, ये रहे शून्यागार! इनमें बैठ कर ध्यान करो, मत प्रमाद करो, मत पीछे पछतावा करना – तुम्हारे लिये यह हमारी सीख है।”

७. गणक मोग्गल्लानसुत्त

एक समय भगवान सावथी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। वहाँ गणक मोग्गल्लान ने उनसे पूछा कि जैसे लोक में क्रमिक शिक्षा, क्रमिक क्रिया, क्रमिक प्रतिपदा का विधान देखने में आता है, क्या आपके धर्म-विनय में भी इसी प्रकार क्रमिक शिक्षा, क्रमिक क्रिया, क्रमिक प्रतिपदा बतलाई जा सकती है?

इस पर भगवान ने कहा –“जैसे कोई चतुर सारथी उत्तम घोड़े को पाकर उसे पहले मुँह में लगाम पकड़ाने की क्रिया सिखलाता है और फिर आगे की क्रिया बतलाता है, ऐसे ही तथागत संयत किए जाने योग्य पुरुष को पाकर पहले उसे शीलवान, प्रातिमोक्षसंवर-संवृत, आचारगोचर-संपन्न, अणुमात्र दोषों में भी भय देखने वाला, शिक्षापदों को ग्रहण कर उनका अभ्यासी होने के लिये विनीत करते हैं।”

“उसके इस प्रकार विनय-संपन्न हो जाने पर उसे आगे का विनय देते हैं – इंद्रियों का संयम; फिर भोजन में मात्रज्ञता; फिर जागरण में तत्परता; फिर स्मृति-संप्रज्ञान से युक्तता। तदुपरांत पांच नीवरणों से चित्त का शोधन होने पर, क्रमशः, प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान का विहार।”

फिर भगवान ने कहा कि मेरी यह शिक्षा शैक्ष्यों के लिये है, जो अभी निर्वाण को प्राप्त नहीं हुए हैं। क्षीणास्रव अर्हत्तों के लिये ये धर्म इसी शरीर में सुखपूर्वक विहार करने तथा स्मृति-संप्रज्ञान के लिये होते हैं।

इसके पश्चात् गणक मोग्गल्लान ने भगवान से प्रश्न किया कि क्या आपके उपदेश सुनने पर सभी निर्वाणलाभ कर लेते हैं, या कोई-कोई नहीं कर पाते हैं?

भगवान ने उत्तर दिया कि कोई-कोईनिर्वाणलाभ कर लेते हैं, और कोई-कोईनहीं कर पाते हैं। गणक मोग्गल्लान द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर भगवान ने एक उपमा देते हुए कहा –“मेरे द्वारा प्रेरित कुछो निर्वाण प्राप्ति में लग जाते हैं, कुछ नहीं लगते हैं, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ, मैं तो केवल मार्ग का आख्यान कर सकता हूँ।”

८. गोपक मोग्गल्लानसुत्त

एक समय भगवान के परिनिर्वाण के थोड़े ही समय पश्चात, आयुष्मान आनन्द राजगह में वेलुवन कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। एक दिन प्रातः भिक्षाचार से पूर्व वे गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण के यहां चले गए। वहां ब्राह्मण ने उनसे पूछा कि क्या एक भी भिक्षु ऐसा है जो सारे के सारे, और सर्व प्रकार से, उन धर्मों से युक्त हो जिनसे गौतम अर्हत सम्यक संबुद्ध युक्त थे ?

आयुष्मान आनन्द ने उत्तर दिया – “नहीं। ऐसा एक भी भिक्षु नहीं है। भगवान अनुत्पन्न मार्ग के उत्पादक, असंजात मार्ग के संज्ञापक, अनाख्यात मार्ग के आख्याता, मार्गज्ञ, मार्गविदू, मार्गकोविद थे; पीछे से आए इस समय के श्रावक उनके मार्ग पर चलने वाले हैं।”

इसी समय मगध का महामात्य वस्सकार ब्राह्मण भी वहां आ पहुँचा। उसने भी आयुष्मान आनन्द से कई प्रश्न पूछे जिनका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि –

* भगवान ने एक भी ऐसे भिक्षु स्थापित नहीं किये हैं जो उनके बाद हमारा प्रतिशरण हो।

* संघ-सम्मत एक भी भिक्षु ऐसा नहीं है जो भगवान के बाद हमारा प्रतिशरण हो।

* ऐसा होने पर भी हम प्रतिशरण-रहित नहीं हैं; हम धर्म-प्रतिशरण हैं।

* ‘धर्म-प्रतिशरण’ होने से तात्पर्य है उपोसथ के दिन एक स्थान पर एक त्रित हो, भगवान द्वारा उद्दिष्ट प्रातिमोक्ष का वाचन करते समय, दोष किए भिक्षु द्वारा उसका धर्मानुसार प्रतिकार करना।

* भगवान द्वारा कहे गए दस प्रसादनीय (श्रद्धोत्पादक) धर्मों के धारक भिक्षु का अन्य भिक्षु सत्कार, गुरुकार, मानन, पूजन करते हैं और उसके समीप विहरते हैं।

* भगवान राग, द्वेष, स्थानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य तथा संशय से युक्त ध्यान की प्रशंसा नहीं करते थे। वे प्रथम ध्यान से लेकर रचतुर्थ ध्यान की प्रशंसा करते थे।

९. महापुण्यमसुत्त

एक समय भगवान सावथी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। एक पूर्णिमा की रात को वे भिक्षु-संघ से घिरे हुए खुले स्थान पर बैठे थे। उस समय उनकी अनुमति प्राप्त कर एक भिक्षु ने उनसे कई प्रश्न पूछे, जैसे –

- * पांच उपादान-स्कंधों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) का क्या मूल है?
- * उपादान और पांच उपादान-स्कंध एक ही हैं, या अलग-अलग?
- * क्या पांच उपादान-स्कंधों में छंद, राग की विभिन्नता हो सकती है?
- * स्कंधों में कितने तक का नामस्कंध होता है?
- * उपादान-स्कंधों के प्रज्ञापन में क्या हेतु है?
- * उपादान-स्कंधों के आस्वाद, आदीनव तथा निस्सरण क्या हैं?
- * सत्काय-दृष्टि कैसे होती है? कैसे नहीं होती है?

भगवान ने इन प्रश्नों का यथोचित समाधान किया।

तभी एक भिक्षु के मन में ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ कि जब रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान – ये सभी अनात्म हैं, तो अनात्म के किये कर्म किस आत्मा में संयुक्त होंगे? इस संदर्भ में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि जो कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान, अतीत, अनागत अथवा प्रत्युत्पन्न, भीतरी अथवा बाहरी, स्थूल अथवा सूक्ष्म, निकृष्ट अथवा उत्कृष्ट, दूरस्थ अथवा निकटस्थ हों, वे सब – ‘यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है’ – इस प्रकार यथार्थतः सम्यक् रूप से प्रज्ञापूर्वक देखना चाहिए। ऐसा करने से आर्यश्रावक रूपादि से निर्वेद को प्राप्त होता है, निर्वेद को प्राप्त हो विरक्त होता है, विराग के कारण विमुक्त होता है। विमुक्त होने पर ‘मैं विमुक्त हो गया!’ – यह ज्ञान जागता है और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’

इस प्रवचन के कहे जाते समय साठ भिक्षुओं के चित्त उपादान-रहित हो, आस्रवों से विमुक्त हो गये।

१०. चूळपुण्णमसुत्त

एक समय जब भगवान सावथी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार कर रहे थे तब एक पूर्णिमा की रात को उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि इस बात की संभावना नहीं होती है कि कोई अ-सत्पुरुष अ-सत्पुरुष को जान सके - 'यह आप अ-सत्पुरुष हैं', अथवा सत्पुरुष को जान सके - 'यह आप सत्पुरुष हैं।' यह इसलिए होता है क्योंकि अ-सत्पुरुष असद्धर्म-युक्त, असत्पुरुष-भक्त, असत्पुरुष-चिंती, असत्पुरुष-मंत्री, असत्पुरुष-भाषी, असत्पुरुष-कर्मांत, असत्पुरुष-दृष्टि और असत्पुरुष-दानी होता है।

तदुपरांत भगवान ने समझाया कि अ-सत्पुरुष कैसे असद्धर्म-युक्त, असत्पुरुष-भक्त (असत्पुरुषों का भक्त), असत्पुरुष-चिंती, असत्पुरुष-मंत्री, असत्पुरुष-भाषी, असत्पुरुष-कर्मांत, असत्पुरुष-दृष्टि और असत्पुरुष-दानी (असत्पुरुषों को दान देने वाला) होता है, और यह भी बतलाया कि शरीर छोड़ने के पश्चात अ-सत्पुरुष नरक अथवा पशुयोनि को प्राप्त होते हैं।

फिर भगवान ने कहा कि इस बात की संभावना रहती है कि कोई सत्पुरुष सत्पुरुष को जान सके - 'यह आप सत्पुरुष हैं', अथवा अ-सत्पुरुष को जान सके - 'यह आप अ-सत्पुरुष हैं।' यह इसलिए होता है क्योंकि सत्पुरुष सद्धर्म-युक्त, सत्पुरुष-भक्त (सत्पुरुषों का भक्त), सत्पुरुष-चिंती, सत्पुरुष-मंत्री, सत्पुरुष-भाषी, सत्पुरुष-कर्मांत, सत्पुरुष-दृष्टि और सत्पुरुष-दानी (सत्पुरुषों को दान देने वाला) होता है।

तदनंतर भगवान ने समझाया कि सत्पुरुष कैसे सद्धर्म-युक्त, सत्पुरुष-भक्त, सत्पुरुष-चिंती, सत्पुरुष-मंत्री, सत्पुरुष-भाषी, सत्पुरुष-कर्मांत, सत्पुरुष-दृष्टि और सत्पुरुष-दानी होता है, और यह भी बतलाया कि शरीर छोड़ने के पश्चात सत्पुरुष देवता होकर अथवा श्रेष्ठ मनुष्य-कुल में जन्म पाते हैं।

२. अनुपदवग

१. अनुपदसुत्त

एक समय भगवान सावथी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए सारिपुत्त को पंडित, विविध प्रकार से प्रज्ञा-संपन्न और अर्ध-मास तक अनुपद-धर्म विपश्यना करने वाला बतलाया।

फिर उन्होंने यह भी बतलाया कि सारिपुत्त की अनुपद-धर्म विपश्यना क्या होती है। इसके अंतर्गत सारिपुत्त प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरते हैं। उस समय इसके प्रथम ध्यान के धर्म एक-के-पीछे-एकव्यवस्थित होते हैं। ये धर्म इनकी जानकारी में उत्पन्न होते हैं, इनकी जानकारी में विद्यमान रहते हैं, और इनकी जानकारी में लुप्त हो जाते हैं। वे इन धर्मों में आसक्त नहीं होते, और प्रज्ञापूर्वक जानते हैं – ‘इससे आगे भी निस्सरण (निकलने का मार्ग) है।’

फिर वे इसी प्रकार, क्रमशः, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन तथा आकिं चन्त्यायतन को प्राप्त कर विहरते हैं। जब वे आकिं चन्त्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था को प्राप्त कर विहरते हैं और इसकी समापत्ति लाभ कर स्मृति-सहित उठते हैं, तो पहले के निरुद्ध हुए धर्मों को सम्यक प्रकार से देखते हैं। वे इन धर्मों में आसक्त नहीं होते, और प्रज्ञापूर्वक जानते हैं – ‘इससे आगे भी निस्सरण (निकलने का मार्ग) है।’

परंतु जब वे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरते हैं, तब प्रज्ञा से देख कर उनके आस्रव पूर्णतया क्षीण हो जाते हैं। जब वे इसकी समापत्ति लाभ कर स्मृति-सहित उठते हैं, तब पहले के निरुद्ध हुए धर्मों को सम्यक प्रकार से देखते हैं। वे इन धर्मों में आसक्त नहीं होते, और प्रज्ञापूर्वक जान लेते हैं – ‘इससे आगे निस्सरण (निकलने का मार्ग) नहीं है।’

अंत में भगवान ने कहा कि सारिपुत्त तथागत द्वारा प्रवर्तित अद्वितीय धर्मचक्र को सम्यक रूप से अनु-प्रवर्तित कर रहे हैं।

२. छबिसोधनसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा – “यदि कोई भिक्षु अर्हत्पद-प्राप्ति का ऐसे बखान करे – ‘मैं प्रज्ञापूर्वक जानता हूँ कि जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है’ – तो न तो इस कहे का अभिनंदन करना चाहिए, न खंडन, बल्कि यह प्रश्न पूछना चाहिए कि जाननहार, देखनहार, अर्हत, सम्यक संबुद्ध भगवान ने जो चार व्यवहार अच्छी तरह बतलाये हैं, इनमें जानते, देखते, आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हो गया ?

“उससे संतोषजनक उत्तर मिलने पर, ‘साधुकार’ कर, उससे अगला प्रश्न पूछना चाहिए – भगवान द्वारा प्रज्ञप्त पांच उपादान-स्कंधों से आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हुआ ?

“संतोषप्रद उत्तर मिलने पर, ‘साधुकार’ कर, अगला प्रश्न पूछना चाहिए – भगवान द्वारा प्रज्ञप्त छः धातुओं से आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हुआ ?

“ऐसे ही अगला प्रश्न – भगवान द्वारा प्रज्ञप्त छः भीतरी और बाहरी आयतनों से आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हुआ ?

“फिर आगे का प्रश्न – विज्ञान से संयुक्त इस काया में और बाहर के सारे निमित्तों में जानते, देखते अहंकार, ममकार, मान, अनुशय कैसे सम्यक रूप से नष्ट हुए ?

“इस प्रश्न का भी संतोषप्रद उत्तर मिलने पर, ‘साधुकार’ कर, उस भिक्षु को कहना चाहिये – ‘लाभ है हमें आवुस! सुलाभ मिला हमें आवुस! जो कि हम आप जैसे सब्रह्मचारी को प्रत्यक्ष देखते हैं।’”

३. सप्पुरिसधम्मसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सत्पुरुष-धर्म और असत्पुरुष-धर्म के बारे में उपदेश दिया।

उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति अपनी उच्चकुलीनता, प्रतिष्ठा, भौतिक उपलब्धियों, विद्वत्ता, रहन-सहन आदि के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा मानता है, वह असत्पुरुष होता है। सत्पुरुष समझता है कि उच्चकुलीनता, आदि के कारण राग, द्वेष, मोह नष्ट नहीं हुआ करते। जो सम्यक मार्ग पर आरूढ़ हो धर्माचरण करे, वही पूज्य, प्रशंसनीय होना चाहिये। अतः सत्पुरुष वह होता है जो यह समझदारी रखते हुए उच्चकुलीनता आदि के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा नहीं मानता है।

भगवान ने आगे कहा कि जो व्यक्ति प्रथम ध्यान से लेकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक किसी भी समापत्ति को प्राप्त कर विहरता है, और अपनी इस समापत्ति के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा मानता है, वह असत्पुरुष होता है। सत्पुरुष सोचता है कि भगवान ने इन समापत्तियों के उपरांत भी तृष्णा के नहीं होने की बात कही है। अतः सत्पुरुष वह होता है जो इस तृष्णा के नहीं होने की बात को दृष्टि में रखते हुए अपनी ध्यान-समापत्ति के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा नहीं मानता है।

अंत में भगवान ने कहा कि सत्पुरुष नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरता है। प्रज्ञा से इसे देखकर उसके आस्रव पूर्णतया क्षीण हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति न कुछ मान करता है, न कहीं मान करता है, न किसी के साथ मान करता है।

४. सेवितब्बासेवितब्बसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सेवनीय, असेवनीय धर्म-पर्याय की देशना दी।

भगवान ने कहा मैं इन्हें सेवनीय, असेवनीय – दो प्रकार का कहता हूँ –

* कायिक आचरण। वाचिक आचरण। मानसिक आचरण। चित्त-उत्पाद। संज्ञा-लाभ। दृष्टि-लाभ। शरीर-लाभ।

* चक्षुर्विज्ञेय रूप। श्रोत्रविज्ञेय शब्द। घ्राणविज्ञेय गंध। जिह्वाविज्ञेय रस। कायविज्ञेय स्पृष्टव्य। मनोविज्ञेय धर्म।

* चीवर। पिंडपात। शयनासन। ग्राम। निगम। नगर। जनपद। पुद्गल (व्यक्ति)।

आयुष्मान सारिपुत्त ने संक्षेप में कीर्गई भगवान कीदेशना का विस्तार से अर्थ बतलाया । उनका कहना था कि जिसके सेवन से अकुशलधर्म बढ़ते हों, कुशलधर्म क्षीण होते हों उसका सेवन नहीं करना चाहिए, और जिसके सेवन से अकुशलधर्म क्षीण होते हों, कुशलधर्म बढ़ते हों उसका सेवन करना चाहिए ।

भगवान ने इसका अनुमोदन किया और स्वयं भी उसके व्याख्यान को दोहराया । उन्होंने यह भी कहा कि मेरे संक्षिप्त भाषण का इस प्रकार विस्तार से किया गया अर्थ कि सी भी वर्ण का व्यक्ति जान ले, तो वह दीर्घकाल तक उसके हित-सुख के लिए होगा ।

५. बहुधातुक सुत्त

एक समय भगवान सावली में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे । वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि जो कोई भय, उपद्रव, उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं । अतः तुम्हें सीखना चाहिए – हम पंडित, मीमांसक बनेंगे ।

तब आयुष्मान आनन्द द्वारा यह पूछे जाने पर कि कितने से भिक्षु को पंडित, मीमांसक कहा जा सकता है, भगवान ने कहा कि जब वह धातु-कुशल, आयतन-कुशल, प्रतीत्यसमुत्पाद-कुशल तथा स्थानास्थान-कुशल होता है, तब वह वैसा कहे जाने का अधिकारी होता है ।

तत्पश्चात् भगवान ने इनमें से एक-एक पर प्रकाश डाला । उन्होंने कहा कि ‘धातुकुशल’ वह होता है जो पर्यायानुसार धातुओं को जानता-देखता है; ‘आयतनकुशल’ वह होता है जो भीतर और बाहर के छह आयतनों को जानता-देखता है; ‘प्रतीत्यसमुत्पाद-कुशल’ वह होता है जो यह प्रज्ञापूर्वक जानता है – ‘इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके न होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है’; और ‘स्थानास्थान-कुशल’ वह होता है जो युक्तायुक्त के बारे में प्रज्ञापूर्वक जानकारी रखता है ।

भगवान ने यह भी बतलाया कि इस धर्म-पर्याय को ‘बहुधातुक’, ‘चतुपरिवट्ट’, ‘धम्मादास’, ‘अमतदुन्दुभि’, अथवा ‘अनुत्तर सङ्गामविजय’ भी जाना जा सकता है ।

६. इसिगलिसुत्त

एक समय भगवान राजगह में इसिगलि पर्वत पर विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को बतलाया कि पूर्वकाल में इस पर्वत पर पांच सौ प्रत्येक बुद्ध लंबे समय से रह रहे थे। वे इस पर्वत में प्रवेश करते हुए तो दिखलाई दिये थे, पर प्रविष्ट हो जाने के पश्चात् दिखलाई नहीं दिये। यह देख, लोग कहने लगे – “यह पर्वत इन ऋषियों को निगलता है।” इससे इसका नाम ‘इसिगलि’ (ऋषियों को निगलने वाला) हो गया।

तत्पश्चात् भगवान ने प्रत्येक बुद्धों के नाम बतलाए और भिक्षुओं से कहा कि परिनिर्वाण-प्राप्त महर्षियों की वंदना करो।

७. महाचत्तारीसक सुत्त

एक समय भगवान सावथी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को प्रत्यय-सहित, परिष्कार-सहित आर्य सम्यक समाधि का उपदेश दिया। उन्होंने कहा इसका आशय होता है सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम तथा सम्यक स्मृति – इन सात अंगों से चित्त की एक गताक परिष्कृत होना।

तत्पश्चात् उन्होंने समझाया कि पूर्व-वर्णित अंगों में ‘सम्यक दृष्टि’ पूर्वगामी होती है क्योंकि कोई इसी से ‘मिथ्या दृष्टि’ को ‘मिथ्या दृष्टि’, ‘सम्यक दृष्टि’ को ‘सम्यक दृष्टि’; ‘मिथ्या संकल्प’ को ‘मिथ्या संकल्प’, ‘सम्यक संकल्प’ को ‘सम्यक संकल्प’; ‘मिथ्या वचन’ को ‘मिथ्या वचन’, ‘सम्यक वचन’ को ‘सम्यक वचन’; ‘मिथ्या कर्मात्’ को ‘मिथ्या कर्मात्’, ‘सम्यक कर्मात्’ को ‘सम्यक कर्मात्’; और ‘मिथ्या आजीविका’ को ‘मिथ्या आजीविका’, ‘सम्यक आजीविका’ को ‘सम्यक आजीविका’ – इस प्रकार प्रज्ञापूर्वक जान पाता है।

‘सम्यक दृष्टि’ इसलिये भी पूर्वगामी होती है क्योंकि सम्यक दृष्टि वाले को सम्यक संकल्प होता है, सम्यक संकल्प वाले को सम्यक वचन, सम्यक वचन वाले को सम्यक कर्मात्, सम्यक कर्मात् वाले को सम्यक आजीविका, सम्यक आजीविका वाले को सम्यक व्यायाम, सम्यक व्यायाम वाले को सम्यक स्मृति, सम्यक स्मृति वाले को सम्यक समाधि, सम्यक समाधि वाले को सम्यक ज्ञान

और सम्यक ज्ञान वाले को सम्यक विमुक्ति होती है। शैक्ष्य (निर्वाण-पथ पर आरूढ़ व्यक्ति) आठ अंगों से युक्त होता है, और अर्हत दस अंगों से।

‘सम्यक दृष्टि’ इसलिए भी पूर्वगामी होती है क्योंकि इससे मिथ्या दृष्टि हास को प्राप्त होती है, जिससे मिथ्या दृष्टि के कारण होने वाले अनेक अकुशलधर्म नष्ट हो जाते हैं, और सम्यक दृष्टि के कारण अनेक कुशलधर्म भावना की परिपूर्णता को प्राप्त होते हैं। ऐसे ही सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक विमुक्ति अपने-अपने क्षेत्र में प्रभावी होते हैं।

अंत में भगवान ने कहा कि इस प्रकार कुशलपक्ष के बीस और अकुशलपक्ष के बीस (दोनों मिला कर चालीस धर्मों वाले) ‘महाचत्तारीसक’ धर्म-पर्याय का प्रवर्तन किया गया है जिसका कोई भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या लोक में अन्य कोई अ-प्रवर्तन नहीं कर सकता।

८. आनापानसतिसुत्त

एक समय भगवान ने सावल्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते हुए भिक्षुओं को कहा कि आनापानसति की भावना करने से वह महाफलप्रद, महालाभप्रद होती है। इसकी भावना से चार स्मृति-प्रस्थान परिपूर्ण होते हैं, चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना से सात बोध्यंग परिपूर्ण होते हैं, सात बोध्यंगों की भावना से विद्या और विमुक्ति परिपूर्ण होती हैं।

इसके पश्चात् उन्होंने सर्वप्रथम यह बतलाया कि किस प्रकार आनापानसति की भावना करने से वह महाफलप्रद, महालाभप्रद होती है। इसके लिये भिक्षु एकान्त स्थान में पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द स्मृतिमान हो, नैसर्गिक तौर पर आने-जाने वाले श्वास-प्रश्वास को प्रज्ञापूर्वक जानने से काम प्रारम्भ करता है और शनैः-शनैः उस अवस्था पर जा पहुँचता है जहाँ वह अनित्यता, विराग, निरोध, प्रतिनिसर्ग का अनुपश्यी होकर श्वास-प्रश्वास को जानने लगता है।

आनापानसति की भावना चार स्मृति-प्रस्थानों को तब परिपूर्ण करती है जब भिक्षु आनापानसति का अभ्यास करता हुआ लोक में अभिध्या (लोभ) और दौर्मनस्य को दूर कर, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होकर, काया में कायानुपशयना,

वेदना में वेदानुपशयना, चित्त में चित्तानुपशयना और धर्मों में धर्मानुपशयना करने लगता है।

फिर भगवान ने यह भी बतलाया कि चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना से सात बोध्यंग, और सात बोध्यंगों की भावना से विद्या और विमुक्ति कैसे परिपूर्ण होती हैं।

९. कायगतासतिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि कैसे भावित किये जाने पर कायगता स्मृति बहुत फलप्रद, बहुत लाभप्रद होती है।

सर्वप्रथम भगवान ने यह बतलाया कि कायगता स्मृति को कैसे भावित किया जाता है। इसके लिये अप्रमत्त एवं संयमशील हो आनापान (श्वास-प्रश्वास), ईर्यापथ (अंग-संचालन), शरीर के भीतर की बत्तीस प्रकार की गंदगी, चार धातुओं, अथवा कच्चे श्मशान में छोड़े हुए मृत शरीर के प्रति जागरूक रहने का दृढ़ अभ्यास करना होता है। इससे साधक की सांसारिक स्मृतियाँ और महत्त्वाकांक्षाएं (संकल्प) नष्ट हो जाती हैं और चित्त एकाग्र होकर सिमट जाता है। ऐसा ही प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने पर भी होता है।

भगवान ने आगे कहा कि जो कायगता स्मृति को भावित कर लेता है, उसके भीतर सभी विद्याभागीय कुशलधर्म समा जाते हैं। जो इसे भावित नहीं करता है, उस पर मार छा जाता है।

कायगता स्मृति को भावित किए व्यक्ति को ये दस लाभ होने चाहिए -

- (१) अ-रति और रति के प्रति सहनशीलता;
- (२) भय-भैरव के प्रति सहनशीलता;
- (३) सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, डंक, दुर्वचन आदि तथा दुःखद से दुःखद शारीरिक वेदनाओं के प्रति सहनशीलता;
- (४) चारों ध्यानों को इच्छानुसार आसानी से प्राप्त करने का सामर्थ्य;
- (५) अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव;

- (६) दिव्य श्रोत्र;
- (७) पर-चित्त-ज्ञान;
- (८) पूर्व-निवासों की अनुस्मृति;
- (९) दिव्य चक्षु;

(१०) आस्रवों के क्षय हो जाने से जो आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति है, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति है, उसे इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरना।

१०. सङ्घारूपपत्तिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संस्कार-उत्पत्ति के बारे में उपदेश दिया।

उन्होंने कहा –“कोई भिक्षु श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग एवं प्रज्ञा से युक्त होता है। उसको ऐसा होता है –‘अहो! शरीर छोड़ने पर मैं महाधनी क्षत्रियों के बीच जन्म लूं।’ वह इस पर मन लगाता है, ठहराता है, भावित करता है। उसके वे संस्कार तथा विहार इस प्रकार भावित, बहुलीकृत होकर उसकी वहां उत्पत्ति के लिये ही होते हैं। वहां उत्पन्न होने के लिये यह मार्ग है।

महाधनी ब्राह्मणों, वैश्यों, विभिन्न देवलोकों में उत्पन्न होने के लिये भी यही मार्ग है; केवल वैसा-वैसा संकल्प कर उस पर मन लगाना, ठहराना, भावित करना अभीष्ट होता है।

“यदि किसी को ऐसा होता है –‘अहो! मैं आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरूं’, तो वह वैसे ही विहरता है, और कहीं उत्पन्न नहीं होता।”

३. सुञ्जतवग्ग

१. चूळसुञ्जतसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि मैं पहले भी अधिकतर शून्यता-विहार से विहरता था, और अब भी ऐसे ही विहरता हूँ। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि कैसे, क्रमशः, स्थूल संज्ञाओं को मन में न लाने से वे शून्य होती जाती हैं और उनकी पीड़ाएं समाप्त होती जाती हैं, और अपेक्षाकृत सूक्ष्म संज्ञाओं को मन में लाने से मन वहां-वहां टिकने लगता है और केवल उन्हीं की पीड़ाएं शेष रहती जाती हैं। इस प्रकार भिक्षु का यथार्थ एवं परिशुद्ध शून्यता में प्रवेश होता है।

भगवान ने कहा कि जब आकिंचन्यायतन संज्ञा को, और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा को भी, मन में न लाकर, केवल अनिमित्त चेतःसमाधि को लेकर मन में अभ्यास किया जाता है, तब भिक्षु का चित्त अनिमित्त चेतःसमाधि में ठहरता है। वह ऐसा जानता है कि यह चेतःसमाधि अभिसंस्कृत है, और अभिसंस्कृत होने से अनित्य है। इस प्रकार जानते-देखते उसका चित्त कामास्रवों, भवास्रवों, अविद्यास्रवों से मुक्त हो जाता है। 'मैं मुक्त हो गया!' - उसमें यह ज्ञान जागता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है - 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' ऐसी अवस्था में कामास्रवों, भवास्रवों, अविद्यास्रवों को लेकर होने वाली पीड़ाएं नहीं रहती हैं, परंतु जीवन के कारण, इस छह आयतन वाली काया को लेकर तो पीड़ाएं रहती ही हैं। ऐसी अवस्था में भिक्षु यथार्थ, परिशुद्ध एवं परम अनुत्तर शून्यता में प्रविष्ट होता है।

अंत में भगवान ने कहा कि तीनों कालों में श्रमणों अथवा ब्राह्मणों के लिए यही परम अनुत्तर शून्यता-विहार है, अतः 'परिशुद्ध, परम अनुत्तर शून्यता को प्राप्त कर विहरूंगा' - यह सीखना चाहिए।

२. महासुञ्जतसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में

विहार करते थे। एक बार वे दिवा-विहार के लिए कालखेमकशाक्य के विहार में चले गए, जहां उन्होंने बहुत से शयनासन लगे हुए देखे। इससे उन्हें ज्ञात हुआ कि वहां बहुत से भिक्षु विहरते होंगे।

सायंकालवे घटाय शाक्य के विहार में गए जहां आयुष्मान आनन्द भिक्षुओं के साथ चीवरकर्मकर रहे थे। वहां आयुष्मान आनन्द ने इस बात की पुष्टि की कि कालखेमक शाक्य के विहार में बहुत से भिक्षु विहरते हैं।

यह जान कर भगवान ने आयुष्मान आनन्द को कहा कि जमातबंदी में रहता हुआ भिक्षु शोभा नहीं देता। ऐसा भिक्षु नैष्कर्म्य, एकान्त, उपशम, संबोधि तथा चित्त की एकाग्रता से होने वाले सुख का इच्छानुसार लभी हो सके – इसकी संभावना नहीं होती है। न ही इस बात की संभावना होती है कि वह किसी प्रकार की चित्त की विमुक्ति प्राप्त कर सकेगा।

भगवान ने आगे कहा कि तथागत ने सभी निमित्तों को मन में न ला कर भीतरी शून्यता को प्राप्त कर विहरने की संबोधि प्राप्त की थी। अतः यदि कोई भिक्षु चाहे कि मैं भीतरी शून्यता को प्राप्त कर विहरूं, तो उसे भीतर ही अपने चित्त को संस्थापित करना चाहिए। ऐसा करते समय वह चाहे कैसी भी परिस्थिति में से गुजरे, संप्रज्ञान बना ही रहना चाहिए।

अंत में भगवान ने कहा कि हितैषी शास्ता अनुकंपा करके श्रावकों को धर्मोपदेश करते हैं – ‘यह तुम्हारे हित के लिए है, यह तुम्हारे सुख के लिए है।’ परंतु कोई-कोई श्रावक उसे सुनना नहीं चाहते, उस पर ध्यान नहीं देते और उपदेश का उल्लंघन करते हैं। इस प्रकार वे शास्ता को शत्रुवत मानते हैं, मित्रवत नहीं। पर कोई-कोई श्रावक धर्मोपदेश को सुनना चाहते हैं, उस पर ध्यान देते हैं और उसका उल्लंघन नहीं करते। ऐसे श्रावक शास्ता को मित्रवत मानते हैं, शत्रुवत नहीं। तुम्हें मुझे भी मित्रवत बनाना चाहिये, शत्रुवत नहीं। यह दीर्घ काल तक तुम्हारे हित-सुख के लिए होगा।

३. अच्छरियअब्भुतसुत्त

एक समय भगवान अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान आनन्द ने भगवान के सम्मुख तथागत के आश्चर्य, अब्भुत धर्म का बखान किया।

उन्होंने कहा कि भगवान के मुख से इन्हें सुनकर मैं इन्हें धारण किये हुये हूँ, जैसे कि बोधिसत्त्व स्मृति और संप्रज्ञान के साथ तुसित लोक में उत्पन्न हुए थे; स्मृति और संप्रज्ञान के साथ वहां रहे; आयु-पर्यंत तुसित लोक में रहे; तुसित लोक से च्युत होकर स्मृति और संप्रज्ञान के साथ माता की कोख में प्रविष्ट हुए; इत्यादि।

अंत में भगवान ने कहा कि तुम इसे भी तथागत का आश्चर्य, अद्भुतधर्म जानो – “तथागत की जानकारी में वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, जानकारी में स्थित रहती हैं और जानकारी में अस्त हो जाती हैं। ऐसे ही संज्ञाएं, और ऐसे ही वितर्क भी!”

४. बाकुलसुत्त

एक समय आयुष्मान बाकुल राजगृह में वेळुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे। वहां उन्होंने अचेल कस्सपके पूछने पर उसे बतलाया कि मुझे प्रव्रजित हुए अस्सी वर्ष हो गए हैं और इस काल में ‘मुझे काम-संज्ञा का उत्पन्न होना’ मैं नहीं जानता। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

इसी प्रकार आयुष्मान बाकुल ने इन अस्सी वर्षों में व्यापाद-संज्ञा, विहिंसा-संज्ञा; काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क; आदि उत्पन्न होने की भी अनभिज्ञता प्रकट की। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

अंत में आयुष्मान बाकुल ने बतलाया कि मैंने सात दिन ही स-रण (चित्तमल-युक्त) हो राष्ट्र का अन्न खाया, फिर आठवें दिन अर्हत्व की प्राप्ति की। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

फिर अचेल कस्सप ने इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या, उपसंपदा पाने की कामना व्यक्त की और इन्हें पाकर थोड़े ही समय बाद वे अर्हत हो गए।

एक दिन आयुष्मान बाकुल ने घोषणा की कि आज मेरा परिनिर्वाण होगा। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!) आयुष्मान बाकुल भिक्षु-संघ के बीच बैठे-बैठे परिनिर्वाण को प्राप्त हुये! (आयुष्मान का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

५. दन्तभूमिसुत्त

एक समय जब भगवान राजगृह में वेळुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे,

उस समय अचिरवत नाम का श्रामणेर अरण्य-कुटी में विहरता था। उस समय जयसेन राजकुमार ने श्रामणेर के पास जा उसे इस विषय पर धर्मोपदेश देने के लिये कहा कि भिक्षु प्रमादरहित, उद्योगी, संयमी हो विहरते चित्त की एकाग्रता को कैसे प्राप्त होता है। श्रामणेर ने धर्मोपदेश दिया, परंतु राजकुमार 'ऐसा नहीं हो सकता' - यह कह कर वहां से चला गया।

तब श्रामणेर ने भगवान के पास जाकर उन्हें यह बात बतलाई। इस पर उन्होंने कहा कि जो नैष्कर्म्य से ज्ञातव्य, द्रष्टव्य, प्राप्तव्य और साक्षात्कार के योग्य है, उसे कामभोगों के मध्य बसता, कामों को भोगता, काम-वितर्कों से खाया जाता हुआ, काम-दाह से जलाया जाता हुआ, कामों की खोज के लिये उत्सुक राजकुमार जान पाये, देख पाये - ऐसा नहीं हो सकता।

फिर भगवान ने हस्ति-दमक द्वारा राजा के कहने पर जंगली हाथी को दान्त, विनीत बनाए जाने की उपमा देते हुए यह बतलाया कि कैसे पांच काम-गुणों में आसक्त व्यक्ति को तथागत दान्त, विनीत बनाते हैं जिससे वह शनैः-शनैः उस अवस्था पर जा पहुँचता है जहां उसे यह ज्ञान जागता है - 'मैं मुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है - "जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।"

भगवान ने आगे कहा कि किसी भी उम्र का हाथी अ-दान्त हो मरे, तो यही कहा जाता है - 'हाथी अ-दान्त ही मरा'; और यदि वह दान्त हो मरे, तो कहा जाता है - 'हाथी दान्त हो मरा।' ऐसे ही किसी भी उम्र का भिक्षु क्षीणास्रव (अर्हत) हुये बिना मरे, तो यही कहा जाता है - 'भिक्षु ने अ-दान्त हो मृत्यु पाई'; और यदि वह क्षीणास्रव होकर प्राण छोड़े, तो कहा जाता है - "भिक्षु ने दान्त हो प्राण छोड़े।"

६. भूमिजसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान भूमिज जयसेन राजकुमार के घर गए। वहां राजकुमार ने आयुष्मान भूमिज से कहा - "कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण यह मानते हैं कि यदि कोई आशा करके, अथवा अनाशा करके, अथवा आशा-अनाशा करके, अथवा न-आशा-न-अनाशा करके ब्रह्मचर्यवास करता है, तो भी वह फल पाने के अयोग्य होता है। इस बारे में आपके शास्ता का क्या कहना है?"

इस पर आयुष्मान भूमिज ने कहा –“मैंने भगवान के मुख से यह नहीं सुना, पर यह संभव है कि वह ऐसे व्याख्यान करें कि आशा करके ,अथवा अनाशा करके ,अथवा आशा-अनाशा करके ,अथवा न-आशा-न-अनाशा करके भी यदि कोई अ-योनिशः (कार्य-कारणकामन में ध्यान न रखते हुए) ब्रह्मचर्यवास करता है, तो वह फलपाने के अयोग्य होता है। पर यदि योनिशः ब्रह्मचर्यवास करता है, तो वह फलपाने के योग्य हो जाता है।”

यह सुनकर जयसेन राजकुमार कहने लगे – “यदि आपके शास्ता का यह आख्यान है, तो वह सभी श्रमणों-ब्राह्मणों को मात देने वाला है।”

बाद में आयुष्मान भूमिज ने भगवान को यह सारा वृत्तांत कह सुनाया और पूछा कि क्या वैसा उत्तर देकर मैंने भगवान पर असत्य कहने का आरोप तो नहीं लगाया ?

भगवान ने उनके कथन को युक्त ठहराया और यह भी कहा कि जो श्रमण-ब्राह्मण मिथ्या दृष्टि, मिथ्या संकल्प, मिथ्या वचन, मिथ्या कर्मात्, मिथ्या आजीव, मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति, मिथ्या समाधि वाले हैं वे आशा करके, अथवा अनाशा करके, अथवा आशा-अनाशा करके, अथवा न-आशा-न-अनाशा करके यदि ब्रह्मचर्यवास करते हैं, तो भी वे फलपाने के अयोग्य होते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह फल प्राप्त करने की विधि नहीं है।

अपने कहे का आशय स्पष्ट करने के लिये भगवान ने चार सुंदर उपमाएं भी सुनाईं।

७. अनुरुद्धसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय पञ्चङ्ग स्थपति ने आयुष्मान अनुरुद्ध को अपने यहां आमंत्रित कर उनसे ‘अप्रमाणा चेतोविमुक्ति’ तथा ‘महद्गता चेतोविमुक्ति’ के बारे में यह जानना चाहा कि ये दो धर्म भिन्न अर्थ वाले, भिन्न व्यंजन वाले हैं, या एक अर्थ वाले हैं और केवल व्यंजन ही नाना हैं।

इस पर आयुष्मान अनुरुद्ध ने कहा कि ये दोनों धर्म नाना अर्थ वाले और नाना व्यंजन वाले हैं। ‘अप्रमाणा चेतोविमुक्ति’ तब होती है जब कोई भिक्षु मैत्रीयुक्त चित्त से एक-एक करके सारी दिशाओं को परिपूर्ण कर, विपुल,

प्रमाण-रहित, वैर-रहित, द्वेष-रहित चित्त से सारे लोक को व्याप्त कर विहरता है, और फिर ऐसे ही, क्रमशः, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा युक्त चित्त से विहरता है। 'महद्गता चेतोविमुक्ति' तब होती है जब भिक्षु एक वृक्षमूल के बराबर महद्गत को व्याप्त कर, अधिमुक्त होकर विहरता है, और फिर ऐसे ही दो या तीन वृक्षमूल, अथवा एक ग्रामक्षेत्र, अथवा दो या तीन ग्रामक्षेत्र, अथवा एक साम्राज्य, अथवा दो या तीन साम्राज्य, अथवा समुद्रपर्यंत पृथ्वी के बराबर महद्गत को व्याप्त कर, अधिमुक्त होकर विहरता है। इस पर्याय से भी समझना चाहिए कि ये धर्म नानार्थ भी हैं और नाना-व्यंजन भी।

इसके पश्चात आयुष्मान अनुरुद्ध ने स्थपति को चार भव-उपपत्तियों के बारे में बतलाया कि कोई व्यक्ति कैसे शरीर छोड़ने पर परित्त (अल्प), अप्रमाण, संक्लिष्ट अथवा परिशुद्ध आभा वाले देवताओं के बीच जा उत्पन्न होता है।

ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान सभिय क च्वानने इससे आगे के प्रश्न भी पूछे जिनका आयुष्मान अनुरुद्ध ने यथोचित उत्तर दिया, और यह भी प्रकट किया कि मैं जान कर ऐसा कहता हूँ क्योंकि मैं दीर्घकाल तक देवताओं के साथ रहा हूँ, उनसे मैंने संलाप किया है, और उनका साक्षात्कार किया है।

८. उपक्कि लेससुत्त

एक समय भगवान कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते थे। उस समय कोसम्बी में भिक्षु आपस में कलह एवं विवाद करते थे। भगवान ने उन्हें ऐसा न करने की सीख दी, परंतु यह बात उनकी समझ में नहीं आई। इस पर भगवान कोसम्बी से बालक लोणकार ग्राम होते हुए पाचीनवंसदाय चले गए, जहां आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान नन्दिय और आयुष्मान कि मिलविहार करते थे।

वहां भगवान द्वारा आयुष्मानों का कुशलक्षेम आदि पूछे जाने पर उन्होंने बतलाया कि हमारा निर्वाह भली प्रकार हो रहा है। हम एक जुट होकर, मोद-भरे चित्त से, बिना विवाद किए, दूध-पानी के मिश्रण के समान, एक-दूसरे को प्यार-भरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं। हमारे शरीर अलग-अलग हैं, पर चित्त एक है।

तत्पश्चात आयुष्मानों ने भगवान से यह जानना चाहा कि हमें ध्यान करते

समय अवभास और रूपों के दर्शन होते हैं, परंतु ये जल्दी ही अंतर्धान हो जाते हैं - इसका क्या कारण है?

इस पर भगवान ने कहा कि संबोधि प्राप्त करने से पहले मुझे भी ऐसा ही होता था, परंतु इसका कारण खोजने पर मुझे मालूम हुआ कि इसके हेतु हैं - (१) विचिकित्सा; (२) अमनसिकार; (३) स्त्यानमृद्ध; (४) स्तंभित्तत्व (भय से जड़ीभूत होना); (५) उत्पीड़ा; (६) दुःस्थौल्य (फूहड़पना); (७) अत्यधिक अभ्यास; (८) अत्यल्प अभ्यास; (९) अभिजल्प; (१०) नानात्व-संज्ञा; तथा (११) अतिनिध्यायित्तत्व (अत्यधिक ध्यान लगाना)। तब मैंने इन्हें चित्त के उपक्लेश जान कर इनको छोड़ दिया। इसके बाद प्रमादरहित, निरालस, संयमी हो विहार करने पर मैं अवभास को जानता, और रूपों को नहीं देखता था; रूपों को देखता, और अवभास को नहीं पहचानता था कि केवल रात है, या केवल दिन, या केवल रात-दिन। फिर मैंने इसका भी कारण खोज लिया।

भगवान ने आगे कहा कि मेरे चित्त के उपक्लेश छूट जाने पर मैं जिस प्रकार से समाधि भावना करने लगा उससे मुझे ज्ञान-दर्शन हुआ, और मेरी चित्त की विमुक्ति अचल हो गई - "यह अंतिम जन्म है, अब कोई नया भव नहीं है"।

९. बालपण्डितसुत

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को मूर्ख के तीन लक्षण बतलाए - (१) दुष्चित्त की चिन्ता करने वाला, (२) दुर्भाषित को बोलने वाला, (३) दुष्कृत कर्मको करने वाला। फिर यह बतलाया कि वह इसी जन्म में कि तने प्रकार के दुःख-दौर्मनस्य अनुभव करता है, और शरीर छोड़ने पर नरक में उत्पन्न होता है। नरक में जितना दुःख है उसकी उपमा देना आसान नहीं है।

गंदगी में ही जन्मने, बूढ़े होने और मरने वाले तिर्यग्योनि के प्राणियों की चर्चा करते समय भगवान ने कहा कि यदि एक छेद वाले जुए को महासमुद्र में फेंक दिया जाए और उसे पवन अलग-अलग दिशाओं में बहाती रहे, और वहां एक काना कछुवा हो जो सौ-सौ वर्ष बाद उतराता हो, तो वह शायद कभी कि सी समय दीर्घकाल के पश्चात् उस छेद वाले जुए में अपनी गर्दन घुसा सके। इसमें जितना समय लगता हो, उससे कहीं अधिक समय एक बार पतित हुए मूर्ख को फिर मनुष्यत्व की प्राप्ति में लगेगा। कारण? - तिर्यग्योनि में धर्मचर्या, समचर्या,

कुशलक्रिया, पुण्यक्रिया का अभाव रहता है। यहां एक दूसरे के भक्षक ही रहते हैं। फिर भी इस योनि का प्राणी जब कभी मनुष्यत्व-लाभ करता है, तब नीच कुल में ही, दुर्वर्ण, दुर्दर्शन, विपन्नता-ग्रस्त हो उत्पन्न होता है।

इसके पश्चात भगवान ने पंडित के तीन लक्षण बतलाए -

- (१) सुचिंतित की चिंता करने वाला,
- (२) सुभाषित को बोलने वाला,
- (३) सुकृत कर्म का करने वाला।

फिर यह बतलाया कि वह इसी जन्म में कि तने प्रकार के सुख-सौमनस्य का अनुभव करता है, और शरीर छोड़ने पर स्वर्ग में उत्पन्न होता है। और स्वर्ग में जितना सुख है उसकी उपमा देना आसान नहीं है। ऐसा व्यक्ति जब मनुष्य-योनि में आता है, तब उच्चकुल में ही, वर्णवान, दर्शनीय, वैभव-संपन्न हो, उत्पन्न होता है।

१०. देवदूतसुत

एक समय भगवान सावथी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बतलाया कि मैं अमानुष, विशुद्ध, दिव्यचक्षु से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति वाले, दुर्गति वाले प्राणियों को मरते-जन्मते जानता हूँ। इनमें से काया, वाणी तथा मन से दुराचार करने वाले, आर्यों के निन्दक, मिथ्या-दृष्टि वाले नरक में उत्पन्न होते हैं।

तदुपरांत भगवान ने कहा कि नरक में उत्पन्न हुए को यमराज बारी-बारी से इन पांच देवदूतों के बारे में पूछते हैं - (१) उत्तान सोने वाला, मल-मूत्र में लिपटा, अबोध छोटा बालक; (२) डंडे के सहारे चलता हुआ, कं पायमान, गत-यौवन, टूटे दांत एवं सफेद बालों वाला जीर्ण व्यक्ति; (३) दूसरों द्वारा सेवा किया जाता अत्यंत रुग्ण व्यक्ति; (४) अनाचार के कारण शासक द्वारा दंडित किया जाता व्यक्ति; और (५) फूला हुआ, विवर्ण, पीब से भरा मृत व्यक्ति। जब वह व्यक्ति इनकी जानकारी होना अंगीकार करता है, तब यमराज उसे कहते हैं कि इन्हें देख कर तो तुम्हें होश जागना चाहिए था कि मैं भी जातिधर्मा, जराधर्मा, व्याधिधर्मा, दुष्कर्मों के कारण दंड भोगने वाला और मरणधर्मा हूँ, और मैं काया, वाणी तथा मन से अच्छा काम करूं। जब वह व्यक्ति अपनी भूल

स्वीकार करता है, तब यमराज उसे कहते हैं कि पाप-कर्मतूने ही कि या है, कि सी दूसरे ने नहीं, अतः इसका फल तुझे ही भुगतना होगा।

तत्पश्चात् यमदूत उस व्यक्ति को पंचविधबंधन नाम की यातना देते हैं, जिससे उसे अति-दुःखद वेदना अनुभव होती है। फिर नरक और नारकीय यातनाओं का विशद वर्णन मिलता है।

अंत में भगवान ने अपनी स्वयं की जानकारी के आधार पर कहा कि पूर्वकाल में यमराज को ऐसा हुआ था कि संसार में अकुशलकर्म करनेवाले इस प्रकार की यातनाएं पाते हैं। अहो ! मैं मनुष्यत्व को प्राप्त होऊँ और लोक में तथागत अर्हत सम्यकसंबुद्ध उत्पन्न होवें, मैं उनकी पर्युपासना करूँ, वह मुझे धर्म सिखाएँ और मैं धर्म को भली प्रकार समझूँ।

इसके उपरांत भगवान ने यह भी कहा कि देवदूत से प्रेरित होकर भी जो लोग प्रमाद करते हैं, वे नीची योनि प्राप्त कर लंबे समय तक शोक करते हैं, और जो आर्य-धर्म में कभी प्रमाद नहीं करते, वे जन्म-मरण के क्षय से उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाते हैं।

४. विभङ्गवग्ग

१. भद्देक रत्तसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –“अतीत के पीछे न पड़े, भविष्य की चिंता न करे। अतीत तो नष्ट हो चुका है और भविष्य अभी आया नहीं है। जो प्रत्युत्पन्न (इस समय प्रकट हुआ) धर्म है, उसे जहां-तहां विचय (टुकड़े-टुकड़े) करते हुए देखें। जो अविनाशी, अचल है उसका बढ़ावा करें”।

“आज ही से उद्योग आरंभ कर देना चाहिए, कौन जाने कल मरना हो जाए! बड़ी सेना वाले मृत्युराज के साथ हमारा कोई इकरार नहीं है। रात-दिन, बिना आलस किए, उद्योगी हो, इस प्रकार विहार करने वाले को शांत मुनि-जन ‘भद्देक रत्त’ कहते हैं।”

इसके बाद भगवान ने समझाया कि कोई व्यक्ति कैसे अतीत के पीछे पड़ता है और कैसे इसके पीछे नहीं पड़ता है; कैसे भविष्य की चिंता करता है और कैसे चिंता नहीं करता है; कैसे प्रत्युत्पन्न धर्मों में आसक्त होता है और कैसे आसक्त नहीं होता है।

२. आनन्दभद्देक रत्तसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में आयुष्मान आनन्द ने भिक्षुओं को भद्देक रत्त के उद्देश और विभाग को कहा। भगवान ने इसका न केवल अनुमोदन ही किया, बल्कि स्वयं भी इसको दोहराया।

३. महाक च्चानभद्देक रत्तसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में तपोदाराम में विहार करते थे। वहां आयुष्मान समिद्धि ने एक देवता से प्रेरणा पाकर उन्हें भद्देक रत्त के उद्देश और विभाग का उपदेश करने के लिए निवेदन किया।

इस पर भगवान ने यह उपदेश किया (देखिए 'भद्रेक रत्तसुत्त' - सुत्त सं. १३१) और इसके बाद विहार में चले गए।

उनके चले जाने के थोड़े ही समय पश्चात भिक्षुओं को हुआ कि भगवान संक्षेप से उद्देश्य कह कर, बिना विस्तार से विभाग किए, विहार में चले गए हैं। अतः उन्होंने शास्ता से प्रशंसित, और विज्ञ सत्त्वचारियों से संभावित (सत्कृत), आयुष्मान महाक च्चान को भगवान के कहे को विस्तार से अर्थ-विभाग करने के लिए अनुरोध किया।

आयुष्मान महाक च्चान ने भिक्षुओं को समझाया कि कोई कैसे अतीत का अनुगमन करता है, कैसे अनुगमन नहीं करता है; कैसे अनागत की चिंता करता है, कैसे चिंता नहीं करता है; कैसे प्रत्युत्पन्न धर्मों में आसक्त होता है, कैसे आसक्त नहीं होता है।

आयुष्मान महाक च्चान ने कहा कि भगवान के संक्षेप में कहे भाषण का अर्थ मैं इस प्रकार विस्तार से जानता हूँ। यदि आप चाहो तो भगवान से भी इस बारे में पूछ लो, और जैसा वे कहें वैसा धारण करो।

वे भिक्षु भगवान के पास गए और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। भगवान ने उन्हें कहा कि महाक च्चान पंडित है, महाप्रज्ञावान है। यदि तुम मुझसे यही बात पूछते, तो मैं भी इसका इसी प्रकार व्याख्यान करता, जैसा कि महाक च्चान ने किया है। यही इसका अर्थ है, इसे इसी प्रकार धारण करो।

४. लोमसक झियभद्रेक रत्तसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहाँ उन्होंने आयुष्मान लोमसक झियके अनुरोध पर उन्हें भद्रेक रत्तके उद्देश्य और विभंग को कहा।

५. चूळक म्मविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहाँ तोदेय्य-पुत्र सुभ नाम के तरुण ने उनसे यह जानना चाहा कि किस कारणसे मनुष्यों में अल्पायु, दीर्घायु; बहुरोगी, अल्परोगी; दुर्वर्ण, वर्णवान;

अल्प-सामर्थ्यवान, महा-सामर्थ्यवान; अल्पभोग वाले, महाभोग वाले; नीच कुल वाले, ऊंचे कुल वाले; दुष्प्रज्ञ, प्रज्ञावान होते हैं।

भगवान ने कहा कि प्राणी कर्म-स्वक (कर्म ही धन है जिनका), कर्म-दायाद, कर्म-योनि, कर्म-बंधु, कर्म-प्रतिशरण होते हैं। कर्म ही प्राणियों को इस हीनता-प्रणीतता में विभक्त करता है।

फिर उन्होंने विस्तार से यह भी समझाया कि कैसे-कैसे कर्मों से मनुष्यों में हीनता अथवा प्रणीतता आती है।

६. महाकम्मविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में वेलुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को महाकम्मविभङ्गका विभाजन करके सुनाया।

उन्होंने कहा कि संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं -

(१) दुःशील, लोभी, द्वेषयुक्त चित्त एवं मिथ्या दृष्टि वाला, जो शरीर छोड़ने पर नरक में उत्पन्न होता है;

(२) ऐसा ही, जो शरीर छोड़ने पर स्वर्ग में उत्पन्न होता है;

(३) शीलवान, निर्लोभी, द्वेषरहित चित्त एवं सम्यक दृष्टि वाला, जो शरीर छोड़ने पर स्वर्ग में उत्पन्न होता है; और

(४) ऐसा ही, जो शरीर छोड़ने पर नरक में उत्पन्न होता है।

जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण अपनी समाधि के बल पर दिव्य चक्षु से दुःशील व्यक्ति को नरक में जन्मा देखते हैं, उन्हें लगता है कि पाप कर्म होता है और उसका फल भी होता है; ऐसे व्यक्ति को स्वर्ग में जन्मा देख कर उन्हें लगता है कि कोई पाप-कर्म नहीं होता, न इसका फल होता है। शीलवान व्यक्ति को स्वर्ग में जन्मा देख कर उन्हें लगता है कि पुण्य कर्म होता है और उसका फल भी होता है; पर ऐसे व्यक्ति को नरक में जन्मा देख कर उन्हें लगता है कि कोई पुण्य कर्म नहीं होता, न इसका फल ही होता है।

भगवान ने कहा -

* पहले प्रकार का व्यक्ति दुःखवेदनीय पाप कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है, या उसने मृत्यु के समय मिथ्या दृष्टि ग्रहण की

होती है। वह यहां अपने किये का फल या तो इसी जन्म में भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

* दूसरे प्रकार का व्यक्ति सुखवेदनीय पुण्य कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है; या उसने मृत्यु के समय सम्यक दृष्टि ग्रहण की होती है। वह यहां अपने किये का फल या तो इसी जन्म में भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

* तीसरे प्रकार का व्यक्ति पुण्य कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है, या उसने मृत्यु के समय सम्यक दृष्टि ग्रहण की होती है। वह यहां अपने किये का फल या तो इसी जन्म में भोगता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

* चौथे प्रकार का व्यक्ति पाप कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है, या उसने मृत्यु के समय मिथ्या दृष्टि ग्रहण की होती है। वह यहां अपने किये का फल या तो इसी जन्म में भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

इस प्रकार अभव्य प्रतीत होने वाले अभव्य कर्म होते हैं; भव्य प्रतीत होने वाले अभव्य कर्म होते हैं; भव्य प्रतीत होने वाले भव्य कर्म भी होते हैं; और अभव्य प्रतीत होने वाले भव्य कर्म भी होते हैं।

७. सळायतनविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सळायतनविभङ्ग का उपदेश देते हुए कहा – “इन-इन को जानना चाहिए – छः भीतर के आयतन, छः बाहर के आयतन, छः विज्ञान-काय, छः स्पर्श-काय, अटारह मनोपविचार तथा छत्तीस सत्त्वपद। वहां (करना होता है) – ‘इसके द्वारा इसे छोड़ो’। तीन स्मृति-प्रस्थान हैं, जिन्हें आर्य सेवन करते हैं। इन्हें सेवन करने वाला आर्य शास्ता, गण (अनुयायी-वर्ग) का अनुशासन कर सकता है। ऐसा शास्ता प्रशिक्षण देने वाले आचार्यों में अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी (पुरुषों को विनय सिखलाने वाला चाबुक-सवार) कहलाता है।”

तदुपरांत भगवान ने समझाया –

- * छः भीतर के आयतन हैं – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन।
- * छः बाहर के आयतन हैं – रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म।
- * छः विज्ञान-काय हैं – चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान।
- * छः स्पर्श-काय हैं – चक्षुःसंस्पर्श, श्रोत्रसंस्पर्श, घ्राणसंस्पर्श, जिह्वासंस्पर्श, कायसंस्पर्श, मनःसंस्पर्श।
- * अठारह मनोपविचार हैं – छः भीतर के आयतनों द्वारा अपने से संबद्ध बाहर के आयतनों को ग्रहण करने से सौमनस्य, दौर्मनस्य अथवा उपेक्षाभाव का उप-विचार आना।
- * छत्तीस सत्त्वपद हैं – छः गेध (लोभ) संबंधी सौमनस्य, छः नैष्कर्म्य-संबंधी सौमनस्य, छः गेध-संबंधी दौर्मनस्य, छः नैष्कर्म्य-संबंधी दौर्मनस्य, छः गेध-संबंधी उपेक्षाभाव, छः नैष्कर्म्य-संबंधी उपेक्षाभाव।
- * ‘इसके द्वारा इसे छोड़ो’ – इससे तात्पर्य है नैष्कर्म्य से संबद्ध सौमनस्य, दौर्मनस्य अथवा उपेक्षा का आश्रय लेकर, क्रमशः, गेध (लोभ) से संबद्ध सौमनस्य, दौर्मनस्य, अथवा उपेक्षा को छोड़ देना; और इसी प्रकार नैष्कर्म्य से संबद्ध सौमनस्य अथवा उपेक्षा का आश्रय लेकर, क्रमशः, नैष्कर्म्य से संबद्ध दौर्मनस्य अथवा सौमनस्य को छोड़ देना।
- * ‘तीन स्मृति-प्रस्थान जिनके सेवन से आर्य शास्ता, गण (अनुयायीवर्ग) का अनुशासन कर सक ता है’ – इसका आशय है कि हितैषी शास्ता द्वारा श्रावकों को धर्मोपदेश करने पर यदि श्रावक ध्यान न दें, अथवा कोई-कोई ध्यान दें और कोई-कोई ध्यान न दें, अथवा सभी ध्यान दें, तो तथागत पहली दो परिस्थितियों में न तो असंतुष्ट होते हैं, न संतुष्ट; और केवल तीसरी परिस्थिति में संतोष अनुभव करते हैं; पर तीनों परिस्थितियों में उपेक्षाभाव बनाए हुए स्मृति और संप्रज्ञान के साथ विहरते हैं। ये ही हैं तीन स्मृति-प्रस्थान।
- * ‘अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी’ – इसका आशय है कि अपने-अपने प्रशिक्षकों द्वारा दान्त (विनीत) किए हुए हाथी, घोड़े, बैल एक ही दिशा में भागते हैं, परंतु तथागत पुरुषों को दान्त करने वाले ऐसे सारथी हैं जिनके द्वारा विनीत किया हुआ आठों दिशाओं में भागता है। (भगवान ने एक-एक करके इन आठों दिशाओं का वर्णन करते हुए समझाया कि जब कोई नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का

सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरता है, तब वह होती है आठवीं दिशा।)

८. उद्देसविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को उद्देस-विभंग का उपदेश देते हुए कहा – “भिक्षु को वैसे-वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये जिससे उसका विज्ञान (चित्त) बाहर अ-विक्षिप्त रहे, और भीतर भी अ-संस्थित हो, उपादान न करने के कारण, उत्तेजना को प्राप्त न हो। ऐसा होने से आगे के लिये जन्म-जरा-मरण रूपी दुःख पैदा होने की संभावना नहीं रह जाती है।”

यह कहकर भगवान आसन से उठ कर विहार में चले गए। उनके चले जाने के पश्चात् भिक्षुओं को लगा कि भगवान संक्षेप में उपदेश देकर, बिना विस्तार से अर्थ का विभाजन किए, विहार में चले गए हैं। अतः उन्होंने शास्ता से प्रशंसित, और विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा संभावित (सत्कृत), आयुष्मान महाक च्वान को भगवान के कहे का विस्तार से अर्थ-विभाग करने के लिए अनुरोध किया।

आयुष्मान महाक च्वान ने भिक्षुओं को विस्तार से समझाया कि कैसे विज्ञान को बाहर विक्षिप्त अथवा अ-विक्षिप्त, और भीतर संस्थित अथवा अ-संस्थित कहा जाता है, और कैसे उपादान न करने से उत्तेजना होती है अथवा नहीं होती है।

आयुष्मान महाक च्वान ने कहा कि भगवान के संक्षेप में कहे भाषण का अर्थ मैं इस प्रकार विस्तार से जानता हूँ। यदि आप चाहो तो भगवान से भी इस बारे में पूछ लो, और जैसा वे कहें वैसा धारण करो।

वे भिक्षु भगवान के पास गए और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। भगवान ने उन्हें कहा कि महाक च्वान पंडित है, महाप्रज्ञावान है। यदि तुम मुझसे यही बात पूछते, तो मैं भी इसका इसी प्रकार व्याख्यान करता, जैसा कि महाक च्वान ने किया है। यही इसका अर्थ है, इसे इसी प्रकार धारण करो।

९. अरणविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

(१) न तो हीन, गंवारु, पृथग्जनों द्वारा सेवित, अनार्य, अनर्थयुक्त कामके सुख में लगना चाहिये, और न ही अपने आप को कष्ट देने वाले दुःखपूर्ण, अनार्य, अनर्थयुक्त अभ्यास में।

(२) इन दोनों अतियों को छोड़, तथागत ने मध्यम मार्ग का प्रज्ञापन किया है, जो उपशम-अभिज्ञा-संबोधि-निर्वाण के लिए है।

(३) उस्सादन (प्रसन्न करने) को भी जाने, अपसादन (अप्रसन्न, नाराज करने) को भी जाने। इन दोनों को जानकर न प्रसन्न करे, न नाराज; धर्म का ही उपदेश करे।

(४) सुखविनिश्चय को जाने, और इसे जान कर आंतरिक सुख में मग्न हो।

(५) रहस्यमय ढंग से बात न करे, मुंह सामने घटिया बात न बोले।

(६) धीरे-धीरे बोले, जल्दी-जल्दी नहीं।

(७) जनपद की निरुक्ति बीच में न डाले, समञ्जा के पीछे अतिधावन न करे।

– यह अरण-विभंग का उद्देश है।”

तदुपरांत भगवान ने अपने कहे को विस्तार से समझाया और यह भी बतलाया कि इनमें से कौन से धर्म उपघात-उपायास-परिदाह से युक्त होने के कारण ‘स-रण’, और कौन से धर्म उपघात-उपायास-परिदाह से रहित होने के कारण ‘अ-रण’ हैं। धर्मों का ‘स-रण’ होना मिथ्या मार्ग है, और धर्मों का ‘अ-रण’ होना सम्यक मार्ग।

अंत में भगवान ने कहा –“भिक्षुओ! ‘स-रण’ और ‘अ-रण’ धर्मों को जानो। ‘स-रण’ धर्म को जान कर, ‘अ-रण’ धर्म को जान कर, ‘हम अ-रण (दुःख-रहित) मार्ग पर चलेंगे’ – इस प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।”

१०. धातुविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान मगध देश में चारिका करते हुए राजगह जा पहुँचे और वहाँ रात्रि-निवास करने के लिए भार्गव कुंभकारके घर रुक गए। वहाँ पहले से ही पुक्कुसाति नाम का कुलपुत्र ठहरा हुआ था जो भगवान के ही नाम पर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ था।

आयुष्मान पुक्कुसाति ने भगवान को पहले कभी देखा नहीं था, अतः उन्हें पहचान नहीं पाया।

भगवान को हुआ कि यह कुलपुत्र मेरे ही नाम पर प्रव्रजित हुआ है, अतः क्यों न मैं इसे धर्मोपदेश करूं? तब उन्होंने उसे यह उपदेश दिया – “भिक्षु! यह पुरुष छः धातुओं, छः स्पर्शयतनों, अटारह मनोपविचारों, चार अधिष्ठानों वाला है, जहां स्थित इसके मान प्रवृत्त नहीं होते। मान प्रवृत्त न होने पर मुनि ‘शांत’ कहलाता है। प्रज्ञा के सम्बन्ध में प्रमाद न करे, सत्य की रक्षा करे, त्याग को बढ़ाए, उपशम का ही अभ्यास करे। – यह धातुविभंग का उद्देश है।”

इसके बाद भगवान ने इसका आगे विवेचन करते हुए भिक्षु को इसे धारण करने के लिए कहा।

तब आयुष्मान पुक्कुसाति बोल उठे – “अहो! मुझे शास्ता मिल गए, सुगत मिल गए, सम्यक संबुद्ध मिल गए।” फिर उन्होंने भगवान के पास उपसंपदा पाने के लिए उनसे याचना की और इस प्रयोजन के लिए पात्र, चीवर की तलाश में निकल गए। उस काल में किसी पागल गाय ने उन्हें मार डाला।

तब बहुत से भिक्षु भगवान के पास गए और उन्हें यह समाचार कह सुनाया, और यह भी पूछ लिया कि उस भिक्षु की क्या गति होगी। इस पर भगवान ने कहा – “भिक्षुओ! पुक्कुसाति कुलपुत्र पंडित, सत्यवादी, गहराईयों तक धर्म का आचरण करने वाला था, उसने मुझे धर्म के विषय में कोई कष्ट नहीं दिया। वह पांचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक हो, वहां देवलोक में निर्वाण पाने वाला है, उस लोक से लौटने वाला नहीं है।”

११. सच्चविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान बाराणसी में इसिपतन-मिगदाय में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि तथागत ने इसी स्थान पर चार आर्य सत्त्यों की देशना-रूपी धर्मचक्र को प्रवर्तित किया था जो श्रमण, देव, मार, ब्रह्मा, अथवा लोक में किसी से भी अ-प्रवर्तित नहीं किया जा सकता। चार आर्य सत्तय हैं – दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा।

फिर उन्होंने कहा कि सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान की संगति करो। ये पंडित हैं और स-ब्रह्मचारियों पर अनुग्रह करने वाले हैं। सारिपुत्त जन्म-दाता के समान है

और मोग्गल्लान जन्मे हुए कीदेखभाल करनेवाले के समान। सारिपुत्त सोतापत्ति का फल प्राप्त कराता है और मोग्गल्लान उत्तम-अर्थ (निर्वाण) तक ले जाता है। सारिपुत्त चार आर्य सत्त्यों की विस्तारपूर्वक देशना करने में समर्थ है।

भगवान के चले जाने के उपरांत आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को चार आर्य सत्त्यों के बारे में विस्तार से समझाया।

१२. दक्खिणाविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। वहां महापजापति गोतमी ने उन्हें अपने द्वारा काता, बुना एक नया धुस्सा-जोड़ा स्वीकार करने के लिये निवेदन किया, परंतु उन्होंने कहा – “गोतमी! इसे संघ को दे दे, संघ को देने से मैं भी पूजित होऊंगा और संघ भी।”

तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा कि आपकी मौसी महापजापति गोतमी आपकी क्षीर-दायिका रही हैं, और आपका भी इन पर बड़ा उपकार रहा है, जैसा कि आपके कारण ही यह दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा के विषय में संशय-रहित हुई हैं। अतः आप इनकी भेंट स्वीकार कर लें।

इस पर भगवान ने कहा – “आनन्द! कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के सहारे बुद्ध, धर्म, संघ का शरणागत होता है। परंतु आदर-सत्कार, भेंट-सेवा, कदाचार से विरत होना, आर्य सत्त्यों के विषय में संशय-रहित होना एक व्यक्ति का दूसरे के प्रति प्रत्युपकार नहीं कहलाता।”

तदुपरांत भगवान ने चौदह प्रकार की व्यक्तिगत दक्षिणाओं (दान) और सात प्रकार की संघ-गत दक्षिणाओं के बारे में बतलाया। उन्होंने चार प्रकार की दक्षिणा-विशुद्धियों की जानकारी भी दी।

५. सळायतनवग

१. अनाथपिण्डिकोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार क रते थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति बहुत बीमार और दुःखी था। उसने यह सूचना भगवान को भिजवाई और आयुष्मान सारिपुत्त को भी सूचित कर रते हुए अपने यहां आने के लिए कहला भेजा।

आयुष्मान सारिपुत्त आयुष्मान आनन्द को अनुगामी बना अनाथपिण्डिक के घर गए और उसका कुशलक्षेम पूछा। इस पर अनाथपिण्डिक ने कहा – “मुझे ठीक नहीं है, बड़ी दुःखमय वेदनाएं आ रही हैं जो जाने कानाम नहीं लेतीं, सिर में जोरों की पीड़ा है, तेज वायु पेट को काट रही है और शरीर खूब जल रहा है।”

यह सुन कर आयुष्मान सारिपुत्त ने अनाथपिण्डिक को चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया एवं मन – इन छः इंद्रियों, इनके विषयों, इनके विज्ञान, इनके संस्पर्श, इनके संस्पर्श से होने वाली वेदनाओं; (आकाश-धातु एवं विज्ञान-धातु सहित) छः धातुओं; पांच स्कंधों; आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन; इहलोक, परलोक; दृष्ट, श्रुत, घ्राण, जिह्वा तथा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अनुभूत, विज्ञात, प्राप्त, पर्येषित, अनुपर्येषित तथा मन द्वारा अनुविचारित के प्रति उपादान न करने और इनमें विज्ञान (चित्त) को न ठहराने का अभ्यास करने के लिए कहा।

ऐसा कहे जाने पर अनाथपिण्डिक रो पड़ा और कहने लगा कि मैंने ऐसी धार्मिक कथा पहले कभी नहीं सुनी।

आयुष्मान सारिपुत्त तथा आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़े ही समय के बाद अनाथपिण्डिक गृहपति ने शरीर छोड़ दिया और वह तुसित देवलोक में उत्पन्न हुआ।

२. छन्नोवादसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार क रते थे। तब

आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान महाचुन्द तथा आयुष्मान छन्न गिञ्जकूट पर्वत पर विहरते थे। उस समय आयुष्मान छन्न बहुत बीमार और दुःखी थे।

आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महाचुन्द आयुष्मान छन्न का कुशलक्षेम पूछने के लिए गए। वहां आयुष्मान छन्न ने कहा – “मुझे ठीक नहीं है, बड़ी दुःखमय वेदनाएं आ रही हैं जो जाने का नाम नहीं लेतीं, सिर में जोरों की पीड़ा है, तेज वायु पेट को काट रही है और शरीर खूब जल रहा है। मैं अपने आप को शस्त्र मार लूंगा, मैं जीना नहीं चाहता।”

यह सुनकर आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान छन्न को अपने आप को शस्त्र न मारने के लिए कहा, परंतु आयुष्मान छन्न बोले – “छन्न भिक्षु निर्दोष (पुनर्जन्म-रहित) शस्त्रघात करेंगे – आप इसे ऐसे धारण करें।”

तत्पश्चात् आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान छन्न ने कहा – “मैं चक्षु, चक्षुर्विज्ञान और चक्षुर्विज्ञान द्वारा जानने योग्य धर्मों को – ‘यह मेरा नहीं है’, ‘यह मैं नहीं हूं’, ‘यह मेरी आत्मा नहीं है’ – ऐसा समझता हूं। और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया और मन, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों के बारे में भी।

“और ऐसा समझने का कारण यह है कि मैं इन इन्द्रियों, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों में निरोध को देखता हूं।”

तदनंतर आयुष्मान महाचुन्द ने आयुष्मान छन्न को भगवान के उस सनातन उपदेश को भी मन में करने के लिए कहा जिसमें बतलाया गया है कि दुःख का अंत क्या और कैसे होता है। फिर आयुष्मान सारिपुत्त एवं आयुष्मान महाचुन्द वहां से चले आए। इसके थोड़े ही समय पश्चात् आयुष्मान छन्न ने अपने आप को शस्त्र मार लिया।

आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा भगवान से आयुष्मान छन्न की गति के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा – “जो इस काया को छोड़ दूसरी काया को ग्रहण करता है, उसे मैं ‘स-उपवर्ज्य’ कहता हूं। वह छन्न भिक्षु को नहीं था। ‘अन-उपवर्ज्य (पुनर्जन्म-रहित) हो छन्न भिक्षु ने अपने आप को शस्त्र मारा’ – इस प्रकार इसे धारण करो।”

३. पुण्णोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान पुण्ण ने उनसे प्रार्थना की कि मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें जिसे सुन कर मैं एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी होकर विहार करूं।

इस पर भगवान ने उन्हें कहा कि इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन करने से नंदी (तृष्णा) उत्पन्न होती है। नंदी के समुदय से दुःख का समुदय होता है। इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन न करने से नंदी निरुद्ध हो जाती है। नंदी के निरोध से दुःख का निरोध हो जाता है।

फिर भगवान ने उनसे पूछा कि मेरे इस संक्षिप्त धर्मोपदेश को सुन कर कौनसे जनपद में विहार करोगे? आयुष्मान पुण्ण ने सुनापरांत जनपद का नाम लिया।

भगवान ने जतलाया कि वहां के लोग तो बहुत चंड स्वभाव के होते हैं। परंतु जब आयुष्मान पुण्ण ने अपनी सहिष्णुता की पराकाष्ठा का परिचय दिया, तब भगवान ने उन्हें उपरोक्त जनपद में वास करने के योग्य बतलाया।

सुनापरांत जनपद में विहार करते हुए आयुष्मान पुण्ण ने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार किया और बाद में परिनिर्वाण-लाभ किया।

४. नन्दकोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय स्थविर भिक्षु बारी-बारी से पांच सौ भिक्षुणियों को उपदेश दिया करते थे।

अपनी बारी आने पर आयुष्मान नन्दक ने राजकारामजा कर भिक्षुणियों को प्रश्नोत्तर के माध्यम से उपदेश दिया। उन्होंने भीतर-बाहर के छः-छः आयतनों तथा छः प्रकार की विज्ञानकाया की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में चर्चा की। उन्होंने यह भी बतलाया कि सात बोध्यंगों की भावना करने से भिक्षु इसी जन्म में आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चेतो-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता है।

भगवान ने आयुष्मान नन्दक को अगले दिन भी भिक्षुणियों को उपदेश देने के लिए कहा। इस पर उन्होंने वैसा ही किया।

बाद में भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि नन्दक के धर्मोपदेश से भिक्षुणियां संतुष्ट हुई हैं, और परिपूर्ण-संकल्प भी। उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि उन पांच सौ भिक्षुणियों में जो सबसे पीछे हैं वे भी सोतापन्न हैं; मुक्ति के मार्ग पर अडिग और निश्चित रूप से संबोधि प्राप्त करने वाली हैं।

५. चूळराहुलोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने राहुल को आस्रवों के क्षय की ओर ले चलने को सोच, उसे दिवाविहार के लिये अन्धवन चलने के लिए कहा।

‘आज भगवान आयुष्मान राहुल को आस्रवों के क्षय की ओर ले चलेंगे’ – यह सोच, कई लाख देवता भी भगवान के पीछे-पीछे हो लिये।

अन्धवन में भगवान ने राहुल को इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों, इन संस्पर्शों के कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान-विषयकज्ञान की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में समझाया। फिर यह कहा कि इस प्रकार देखते श्रुतवान आर्य-श्रावक इन सभी से निर्वेद को प्राप्त होता है। निर्वेद को प्राप्त हो विरक्त होता है। विराग होने से विमुक्त होता है। विमुक्त होने पर ‘विमुक्त हूं!’ – यह ज्ञान होता है। फिर यह जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे आना नहीं है।’

तभी आयुष्मान राहुल का चित्त उपादान न कर, आस्रवों से मुक्त हो गया। और उन कई लाख देवताओं को विरज, विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ – ‘जो कुछ उत्पत्ति स्वभाव वाला है, वह सब निरोध स्वभाव वाला भी है’।

६. छछक्क सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को छः छक्कों का उपदेश दिया – (१) छः भीतरी

आयतन, (२) छः बाहरी आयतन, (३) छः विज्ञान-काय, (४) छः स्पर्श-काय, (५) छः वेदना-काय, (६) तृष्णा-काय।

फिर भगवान ने इनमें से प्रत्येक का विवरण दिया -

* भीतरी आयतन हैं - चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया तथा मन।

* बाहरी आयतन हैं - रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श तथा धर्म।

* विज्ञान-काय हैं - चक्षु द्वारा रूप में उत्पन्न होने वाला चक्षुर्विज्ञान; और फिर इसी प्रकार श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान तथा मनोविज्ञान।

* स्पर्श-काय हैं - चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञान की संगति से होने वाला स्पर्श; और फिर इसी प्रकार अन्य आयतनों तथा तत्संबंधी विज्ञानों की संगति से होने वाले स्पर्श।

* वेदना-काय हैं - उक्त प्रकार से जनित स्पर्श के कारण होने वाली वेदनाएं।

* तृष्णा-काय हैं - उक्त प्रकार से जनित वेदनाओं के कारण जागने वाली तृष्णाएं। तत्पश्चात् भगवान ने बतलाया कि इन सभी छवकों का उदयव्यय मालूम होने से ये हैं। जब कभी कोई इनको 'मैं', 'मेरे' और 'आत्म-भाव' से जानता है, तब वह सत्कायके समुदय की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा होती है। जब कोई इनको इस भाव से नहीं जानता है, तब वह सत्कायके निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा होती है।

तदनंतर भगवान ने समझाया कि सुखद वेदनाओं का अभिनंदन करने, उनमें आसक्त होने से राग-अनुशय चिपटता है; दुःखद वेदनाओं से संयुक्त हो क्रंदन करने से प्रतिघ-अनुशय चिपटता है। ऐसा व्यक्ति इन वेदनाओं के समुदय, अवसान, आस्वाद, दुष्परिणाम, निस्सरण को यथार्थतः नहीं जानता है, जिससे उसमें अविद्या-अनुशय चिपटता है। इन अनुशयों को दूर किए बिना और विद्या को जगाए बिना, इसी जन्म में कोई अपने दुःखों का अंत कर सके, यह संभव नहीं है। परंतु सुखद वेदनाओं का अभिनंदन न करने, इनमें आसक्त न होने से राग-अनुशय नहीं चिपटता है; दुःखद वेदनाओं से संयुक्त हो क्रंदन करने से प्रतिघ-अनुशय नहीं चिपटता है। ऐसा व्यक्ति इन वेदनाओं के समुदय, आस्वाद, दुष्परिणाम, निस्सरण को यथार्थतः जानता है, जिससे उसमें अविद्या-अनुशय

नहीं चिपटता है। इन अनुशयों को छोड़ और विद्या को जगा, इसी जन्म में कोई अपने दुःखों का अंत कर सके, यह संभव है।

अंत में भगवान ने कहा कि इस प्रकार देखते हुए श्रुतवान आर्यश्रावक छहों छक्कों में विराग को प्राप्त होता है। उसे यह बोध होने लगता है – ‘मैं विमुक्त हो गया!’ वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – ‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’

इस प्रवचन के कहे जाते समय साठ भिक्षुओं का चित्त आस्रवों से उपादान-रहित हो विमुक्त हो गया।

७. महासळायतनसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को बतलाया कि इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों और तज्जनित वेदनाओं को यथार्थतः न जानने, न देखने से इनमें आसक्ति हो जाती है, आसक्ति-प्राप्त के लिये भविष्य में पांच उपादान-स्कंधसंचित हो जाते हैं। इससे नया जन्म देने वाली तृष्णा बढ़ती है और कायिक एवं चैतसिक पीड़ा, संताप, परिदाह बढ़ने लगते हैं और वह व्यक्ति कायिक एवं चैतसिक दुःख अनुभव करता है।

भगवान ने आगे बतलाया कि इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों और तज्जनित वेदनाओं को यथार्थतः जानने, देखने से इनमें आसक्ति नहीं होती है, आसक्ति-रहित के लिए भविष्य में पांच उपादान-स्कंध अपचय (विघटन) को प्राप्त होते हैं। इससे नया जन्म देने वाली तृष्णा नष्ट होती है और कायिक एवं चैतसिक पीड़ा, संताप, परिदाह जाने लगते हैं और वह व्यक्ति कायिक एवं चैतसिक सुख अनुभव करता है।

भगवान ने आगे कहा कि ऐसे व्यक्ति के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग भावना के स्तर पर परिपूर्ण हो जाता है। इससे चारों स्मृतिप्रस्थान, चारों सम्यकप्रधान, चारों ऋद्धिपाद, पांचों इंद्रियां, पांचों बल तथा सातों बोध्यंग भी भावना के स्तर पर परिपूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के दोनों धर्म – शमथ और विपश्यना – जुड़े रहते हैं। यह व्यक्ति अभिज्ञा द्वारा जानने योग्य धर्मों को

जानता, छोड़ने योग्य धर्मों को छोड़ता, भावना योग्य धर्मों को भावित करता और साक्षात्कार करने योग्य धर्मों का साक्षात्कार करता है।

८. नगरविन्देय्यसुत्त

एक समय भगवान कोसल जनपद में चारिका करते हुए नगरविन्द नाम के ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। वहाँ के ग्रामवासी भगवान की मंगल-कीर्ति से खिंचे हुए उनके पास चले आए।

वहाँ भगवान ने उन्हें समझाया कि कि नश्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करना चाहिए और कि नकाकरना चाहिए। सत्कार करने योग्य श्रमण-ब्राह्मण वे होते हैं जो इंद्रियों द्वारा विज्ञेय विषयों में अ-वीतराग, अ-वीतद्वेष, अ-वीतमोह होते हैं, जिनका चित्त भीतर से शांत नहीं होता है और जो काया, वाणी तथा मन से सम-विषम आचरण करते हैं। सत्कार करने योग्य श्रमण-ब्राह्मण वे होते हैं जो इंद्रियों द्वारा विज्ञेय विषयों में वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-मोह होते हैं, जिनका चित्त भीतर से शांत होता है और जो काया, वाणी तथा मन से समचर्या करते हैं।

भगवान ने श्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार करने अथवा करने के कारणों पर भी प्रकाश डाला।

९. पिण्डपातपारिसुद्धिसुत्त

एक समय भगवान राजगृह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। वहाँ उन्होंने आयुष्मान सारिपुत्त की इंद्रियों को अत्यंत निर्मल और उनकी छवि को नितान्त शुभ्र देख कर पूछा कि आजकल अधिकतर वे कौन से विहार से विहरते हैं? उन्होंने उत्तर दिया – शून्यता-विहार से।

इस पर भगवान ने कहा कि शून्यता-विहार महापुरुष-विहार होता है, और फिर समझाया कि जो भिक्षु इस विहार से अधिकतर विहरना चाहे, उसे इस प्रकार सोचना चाहिए – “जिस मार्ग से मैं भिक्षा के लिए गांव में प्रविष्ट हुआ, जिस प्रदेश में भिक्षा के लिए घूमा, और जिस मार्ग से भिक्षा लेकर गांव से बाहर निकला – क्या वहाँ इंद्रियों द्वारा विज्ञेय विषयों में मेरे मन में छंद, राग, द्वेष, मोह अथवा प्रतिहिंसा का भाव जागा? यदि अपने को परखने पर मालूम हो कि ऐसा है, तो उन अकुशलधर्मों को दूर करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यदि मालूम

हो कि ऐसा नहीं है, तो उस भिक्षु को उसी प्रीति, प्रमोद के साथ, रात-दिन, कुशल धर्मों का परिशीलन करते, विहार करना चाहिए।”

तदनंतर भगवान ने ऐसी ही प्रक्रिया पांच कामगुणों, पांच नीवरणों, पांच उपादान-स्कंधों, इत्यादि के बारे में भी सुझाई।

अंत में भगवान ने कहा कि श्रमण-ब्राह्मण अतीत काल में ऐसे ही पिंडपात (भिक्षात्र) को परिशुद्ध करते थे, अब भी ऐसे ही करते हैं, और भविष्य में भी ऐसे ही करेंगे।

१०. इन्द्रियभावनासुत्त

एक समय भगवान गजङ्गला में सुवेळुवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि आर्य-विनय में अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कैसी होती है। उन्होंने कहा -

“इन्द्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने से भिक्षु को प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय उत्पन्न होता है। तब वह प्रज्ञापूर्वक जानता है - “मुझे यह प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय उत्पन्न हुआ है। यह संस्कृत, स्थूल तथा प्रतीत्य-समुत्पन्न (कारणसे उत्पन्न हुआ) है। उत्तम तो यही है जो विषयों के प्रति उपेक्षाभाव है।” तब उसको उत्पन्न हुआ प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय निरुद्ध हो जाता है, और उपेक्षाभाव टिका रहता है।”

फिर भगवान ने शैक्ष्य (जिसे अभी सीखना है, जो अभी अर्हंत नहीं हुआ) - प्रतिपदा की जानकारी दी। इसमें शैक्ष्य इन्द्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने से उत्पन्न होने वाले प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय से दुःखी होता है, घबराता है, घृणा करता है।

तदनंतर भगवान ने बतलाया कि कोई आर्य (अर्हंत) कैसे भावितेन्द्रिय होता है। ऐसा व्यक्ति अपनी इच्छानुसार प्रतिकूल में अ-प्रतिकूल-संज्ञी, अ-प्रतिकूल में प्रतिकूल-संज्ञी, प्रतिकूल एवं अ-प्रतिकूल में अ-प्रतिकूल-संज्ञी, अ-प्रतिकूल एवं प्रतिकूल में प्रतिकूल-संज्ञी, और प्रतिकूल एवं अ-प्रतिकूल दोनों को छोड़ स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी होकर, उपेक्षावान हो विहार करता है।

अंत में भगवान ने कहा - “शास्ता ने अनुकंपा करके इस धर्मोपदेश द्वारा

श्रावकोंके हित के लिए जो करना था, सो कर दिया है। अब ये रहे वृक्ष-मूल, ये रहे शून्यागार! ध्यान करो, आनन्द! मत प्रमाद करो; मत पीछे पछताने वाले होओ; तुम्हारे लिये यह हमारी सीख है।”
